अवगुन चित न धरो

(उपन्यास)

अवगुन चित न धरो

किरण सूद

राधाकृष्ण
नयी दिल्ली इलाहाबाद पटना

सच्चा रिश्ता
परिभाषा से परे है,
यह प्रयोग का
पर्याय नहीं है,
सिर्फ अनुभव का
बही-खाता भी नहीं है.

सच्चा रिश्ता
आत्मीयता का
मीठा एहसास है,
जिसमें कागज़ पर
लिपटी स्याही की
दीवार नहीं होती...
शर्तों और शिकायतों के लिए
कोई दरार नहीं होती...

धरा पर 'रब्ब' जैसा
सनशाइन
और
उनकी ऊर्जा से अनुप्राणित
कणिका के लिए
'प्यार' की बात
'प्यार' के साथ !

शुक्रिया ! सनशाइन !

साँच को आँच कहाँ...!

स्वार्थजनित रिश्तों की भीड़ में प्यार नाम की कोई 'शै' है भी क्या...? 'प्यार' या तो रूढ़ शब्द बन गया है या परस्पर आर्थिक लाभ के लिए भाव-तोल का आधारभूत पैमाना. मैं हैरान हूँ, क्या शादी के पंजीकरण के कानून को पारित कर हम स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में दरार को कंकरीट की तरह भरना चाहते हैं, या भारत में भी शादी को केवल अर्थतन्त्र की मूल इकाई के रूप में स्थापित करना चाहते हैं...?

'परिणय' जीवन की इतिश्री है क्या...?...या परिणय से जीवन की असली शुरुआत होती है?

'अवगुण मोरे चित्त न धरो' का आख्यान उस बिन्दु से शुरू होता है, जहाँ प्रायः प्रेम-कथा का सुखान्त दिखाया जाता है. मेरे लिए 'प्यार' शादी की रस्म होने तक खेला गया महज रोमांचक खेल नहीं है.

'कहा जाता है', प्यार का सच दो अपरिचितों के बीच घटित होता है. अपरिचय पद, पैसा या पारिवारिक स्तर के आधार पर सौदेबाजी की सम्भावना को कम कर देता है. प्यार तो नदी के उद्दाम वेग की तरह स्वतन्त्र है. अनुबन्ध के रूप में मोल-तोल करना 'कुछ' भी हो, 'प्यार' नहीं है. उसे शब्दों में बाँधकर 'हस्ताक्षर' से कैद नहीं किया जा सकता है. सात फेरों की रस्म उसे पुख्ता कर सकती है; इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सात फेरे 'प्यार' के लिए एकमात्र परिसीमन-रेखा हैं. सात फेरों की सार्थकता कानून, पंजीकरण या तस्वीरों के पुलिंदे में नहीं, मन के रिश्ते में है.

आपको ये शब्द महज दिखावा लग रहे हैं, तो अपने मन को टटोलिए...मानवीय रूप में हम जी रहे हैं, या सिर्फ जीने की रस्म अदायगी कर रहे हैं...?

यह आख्यान सच के धरातल पर घटित 'प्यार' एवं 'प्रतिबद्धता' का आख्यान है. मुझे विश्वास है कि आपने अपने आसपास प्यार की प्रतिबद्धता को निकटता से देखा होगा. व्यक्ति निजी जीवन में भिन्न और सच्चे रूप में अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्र हो, तो यथार्थ स्वतः सामने आ जाता है.

राजनीति के चश्मे को अलग रख सकें, तो मैं आपको निजी सच का साझीदार बनाने का साहस करूँ. मैंने श्री राजीव गांधी के राजनीति से परे मानवीय रूप में 'प्रतिबद्धता' के अर्थ को उनकी निर्मल दृष्टि में पढ़ा था. 'सुपर कम्प्यूटर' से विकसित भारत का सपना सँजोनेवाला वह 'दृढ़निश्चयी पुरुष' भावनात्मक स्तर पर कितना मजबूत होगा, जिसे राष्ट्र के सामने अपनी सुरक्षा

के दायरे बेमायने लगे. ऐसे व्यक्ति मरते नहीं हैं, सत्य-निष्ठा में जीवित रहते हैं. ऐसे व्यक्ति के प्रति श्रद्धा-भाव, दलीय राजनीति के कारण नहीं, मानवीय संवेदना में विश्वास के कारण जागता है. उनकी स्मृति को शतशः नमन !

'बसन्त' भी मृत्युपरान्त जीवित रहने के सच को साकार करता है.

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बसंत महज राजनीतिक चरित्र है. राजनीति का जीवन के हर पहलू में दखल किसी को राजनीति से अछूता नहीं छोड़ता है. इस अर्थ में हम सभी जीवन के किसी न किसी मोड़ पर आदर्श का पीछा करते हैं, कि समाज से गरीबी और दुःख नाम की चीज मिट जाए. कोई इसे किसी विचारधारा का नाम दे या न दे, जीवन की यह विसंगति उसे दोलायमान ज़रूर करती है. आदर्श समाज में व्यक्ति का व्यक्ति के रूप में सम्मान हो, यही अभीप्सा है !

मेरी कल्पना में, दुनिया उस दिन सभ्य एवं सुसंस्कृत होगी, जब स्त्री जंगल में भी सुरक्षित हो. 'प्रतिबद्धता' स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सच का मूलाधार है. यह नाता नर-मादा के पाशविक रिश्तों से ऊपर है. यहाँ ऐन्द्रिकता पाप नहीं, अपितु सौन्दर्य एवं शृंगार का प्रतिरूप है.

हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष संयोग में ब्रह्मानन्द की परिकल्पना की गई है. जीवात्मा की अखण्ड ज्योति सर्व दैदीप्यमान प्रकाश में विलीन होने की चिर पिपासा से विकल है. नदियों का संगम सुन्दर है, महानदी का सागर में समा जाना अपने लक्ष्य तक पहुँचना है. वहाँ उसका जल पीने लायक बेशक न रहे, वह समुद्र की गहराई में रत्नों का पोषण करता है.

चट्टानों से टकराती नदी की लहरें हार नहीं मानती हैं. न ही कोई पत्थर नदी के वेग को रोक सकता है. ऊर्जा की अजस्र स्रोत नदी जीवनदायिनी है. समस्त दोषों से परे पतित पावनी है.

दोष ढूँढ़कर सन्तोष पानेवाले लोग इन गहरे अर्थों को तभी समझ सकते हैं, जब वह मन के धरातल पर खिंची आड़ी-तिरछी रेखाओं में सौन्दर्य एवं संगीत का आनन्द लेने के लिए प्रतिबद्ध हों. ऐन्द्रिकता के रसास्वादन को पाप न मानकर उदात्तीकरण का श्रेष्ठ सोपान मानने के लिए उदारहृदयी हों.

सात्त्विक के जीवन के रहस्य की कुंजी ढूंढ़ लेना ही पाठक के सामने खुली चुनौती है. निश्चित रूप से कथानक शाश्वत सत्य पर आधारित है. कथा कल्पना के पुट के बिना सम्भव नहीं होती है. 'अवगुण मोरे चित्त न धरो' का किसी जीवित व्यक्ति से जुड़ जाना महज संयोग होगा.

चरित्रों का खिलना-खुलना और आपके दिल के नजदीक आकर बैठ जाना भी सहज हो, तो हम-आप मिलकर उस सुसंस्कृत समाज की कल्पना करें, जहाँ कोई किसी की सम्पत्ति को न्यासी की तरह सँभालने को तैयार हो, जहाँ राधा-कृष्ण के प्रेम की पवित्रता को केवल पूजा न जाए, जिया जाए.

यकीन जानिए, प्यार स्वतःस्फूर्त ऊर्जा है...

सृजन का आधार है, जीवन का अवलम्बन है...

जीने का जी चाहे तो समझ लें, आपकी आत्मा को 'प्यार' ने स्पर्श किया है. जी भर जिएँ और निर्भय होकर कहें...साँच को आँच कहाँ...!

—किरण सूद

भाग : एक

परिणय

एक

'अजब है कुदरत का खेल. कहॉ जन्म और कहॉ मृत्यु...!' सोचते-सोचते सुकर्मा के माथे मे सिकुडन पड गई. खयालो के भॅवर से निकलने के लिए वह उठी और खिडकी के पास जाकर खडी हो गई.

सॉझ का धुॅधलका और सूरज का सुनहरा रूप हमेशा से ही उसे आकर्षित करता है. उसने खिडकी खोल दी. ठण्डी हवा का झोंका सीधे उसके सीने से टकराया. उसने खीचकर स्वेटर को बन्द करने की कोशिश की. बटन टूट चुका था. वह मुडी और कुर्सी के हत्थे पर झूल रही शॉल को कन्धो के इर्द-गिर्द लपेट लिया. शॉल मे लिपटा हुआ एक कागज का टुकडा उसके पैरो के पास फडफडाने लगा.

सुकर्मा ने झुककर कागज को उठाया, खोलकर पढा और खिडकी के पास रखी स्टडी टेबल की दराज मे डाल दिया.

असमजस की आडी-तिरछी रेखाऍ उसके चेहरे पर खिच गई. उसने खिडकी बन्द की. पर्दा खीचा और बिजली जलाने के लिए स्विच पर हाथ रखते ही हमेशा की तरह उसे याद हो आया बसन्त का डायलॉग, 'तुम नहीं जानती हो कि तुम्हारे पास हमे देने के लिए क्या है ..?'

सकोच एव लज्जा से उसका चेहरा आज भी लाल हो गया. बिना सोचे ही उसने सफेद कबूतरो जैसे हाथो से अपना चेहरा ढक लिया खिडकी के पास रखी रॉकिग चेयर पर उसका हलका बदन झूलने लगा.

अकस्मात् फोन की घटी से स्मृति-शृखला पर वज्रपात्त हुआ. अनमने भाव से सुकर्मा ने फोन की ओर देखा, क्या करे वह? इस ऊहापोह मे से निकलना कभी सम्भव हो सकेगा क्या ? फोन बजते-बजते एक झटके से बन्द हो गया. सुकर्मा की सॉस मे सॉस आई. वह रसोईघर की ओर चली गई.

"पार्वती अम्मा, एक कॉफी दे सकेगी क्या ?" सुकर्मा की पुकार सुनकर अधेड उम्र की स्त्री भागी हुई चली आई.

"हॉ, बिटिया रानी, तुम बैठो, अभी लाए देते है. तबीयत तो ठीक है न

तुम्हारी ?"

"ठीक है, अम्मा ! आप तो नाहक फिक्र करती हैं. मेरी तबीयत को क्या होना है...अब ?" सुकर्मा ने पीठ घुमाकर तुरत-फुरत ऐसे उत्तर दिया, जैसे उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो!

अपने-आपसे भी छुपती घूम रही है वह आजकल.

रसोई से निकलकर सीढ़ियाँ चढ़ गई वह. बाथरूम में जाकर आँखों में ठण्डे पानी के छींटे मारे और गर्म पानी से पैर धोए. अकारण ही ब्रश भी कर लिया और फिर मशीनी पुर्जे की तरह सीधी चाल से स्टडी रूम में जाने के लिए दरवाज़ा खोला.

अपनी आँख के सामने सूरज को ओझल होते हुए देखने लगी सुकर्मा, दूर-दूर तक फैली हरीतिमा और बैंगनी रंग के पीछे से झाँकता केसरिया प्रकाश.

अवगुंठन नहीं है कोई. निरभ्र आकाश की तरह सब खुला है, स्व से ज्योतिर्मान और अन्य को प्रकाशित करने में क्षमतावान. फिर भी, एक शून्य है, जो भीतर-बाहर को घेरे हुए है. एक कोना उसका अपना, सिर्फ उसका; जिसमें उसके बच्चे भी भागीदार नहीं हैं और सत्य यह है कि उसके पति, बसन्त आज जीवित होते तो उनको भी यह कोना छूने का हक नहीं होता.

अपने इस विचार से वह खुद ही चौंकी. उसने अपने बाल माथे से पीछे किये और 'रॉकिंग चेयर' से उठ कर खिड़की में आकर खड़ी हो गई. मसूरी की इक्का-दुक्का बिजलियाँ दिखाई दे रहीं थी. देखते-ही-देखते कतार-दर-कतार रोशनी हो गई. इन बत्तियों को पहली बार देखकर वह उत्साहित हो गई थी, 'यहाँ तो हर रोज़ दीवाली होती है शायद.' तब उसने बसन्त से कुछ कहा नहीं था. इतना साहस ही कहाँ था कि वह मुँह खोलकर कुछ कहती. वह तो सिमटी हुई थी अपने-आप में, नई दुलहन के लाज-व्यवहार को ओढ़े हुए.

उस समय उसका कोई अपना कोना था क्या ? सोचकर मुस्कराई वह. उसकी माँ ने कहा था, 'पति तुम्हारा स्वामी है. हमने तुम्हें उसको सौंप दिया है, तुम्हें भी अपना सब कुछ उसे सौंप देना है ...!' उसके पास है ही क्या? ये बुन्दे, ये हार, कुछ कपड़े ! धीरे-धीरे उसे मालूम हुआ कि ये कपड़े, ये गहने उसके अपने हैं. इसके अतिरिक्त उसके पास कुछ है, जो उसके पति के लिए है—सोचते-सोचते सुकर्मा के चेहरे पर गुलाबी आभा फैल गई. उसने मुड़ कर पास रखे हुए लैम्प का बटन दबाकर रोशनी की. केसरिया रंगवाला यह लैम्प उसने कल ही खरीदा था. उसे घर का यह कोना खाली लगता था और अपने नये घर के एक-एक कोने को उसने स्वयं मेहनत से सुरुचिपूर्ण ढंग से

सजाया था.

उसने आँख उठाकर सरसरी निगाह से अपने कमरे की ओर देखा. साढ़े चार फीट चौड़ा, छः फीट लम्बा पलँग; उसने खास अपने लिए बनवाया था. छः-बाई-छः का पलँग उसे खाली लगता था. कोई कोना टीसता था रात-भर. बसन्त का न होना और अधिक महसूस होता था. लम्बे-चौड़े बदनवाले बसन्त की खुलकर सोने की आदत उसके लिए एक सुखद विकल्प देती थी कि वह उसके सुडौल कन्धे पर सिर रखकर सोए. उसके संक्षिप्त वैवाहिक जीवन की ये मधुरतम यादें उसके लिए जीने का सम्बल है.

इस समय उलझन थी, क्या तकिये में मुँह छुपाकर दुबककर सो जाए· अपने कोने में हमेशा के लिए? अपने लिए अलग कोई कोना होगा सोने के लिए, यह उसने कब सोचा था? उसे याद आ गया, अपना एक कोना, जिसे वह बसन्त को भी छूने न देती.

'सच ?' आश्चर्य से उसने अपने चेहरे को छुआ. अपने वक्ष पर दोनों हाथ समेट लिए, इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई उसमें कि आज वह अपने कोने की बात सोच सकती है! माँ ने कहा था, 'स्त्री का अपना अलग कुछ नहीं होता, सब कुछ पति का है, परिवार का है. अपने लिए कुछ छुपाकर रखने की कोशिश न करना!' सचमुच उसने सर्वस्व दे दिया था बसन्त को, फिर भी यह कोना है न उसका अपना, जिसे कोई नहीं जानता. दुनिया के लोग उसे सहानुभूति की नज़र से देखते हैं. दोस्तों-रिश्तेदारों ने एक दायित्व समझकर उसके साथ निबाह कर लिया. बच्चे कभ; प्यार से, कभी जिद से अपना स्वार्थ साधते रहे. इन सबके बीच प्रतिपल मरते-जीते सुकर्मा का एक कोना उसका अपना है, जो आज लावे की तरह फूट पड़ने को तैयार है.

वह खुद हैरान है कि उसके दिमाग में छोटी-छोटी बातों की याद आज भी सजीव है.

सुकर्मा को याद है, जब पहली बार उसने पहाड़ देखा था, वह चिहुँक उठी थी, 'पेड़ ही पेड़ और पेड़ों पर बर्फ.'

बसन्त ने उसके कान से मुँह सटाकर कहा था, 'यहाँ का तो रंग ही कुछ और है... देखती रहो और मुस्कराती रहो.'

बसन्त को सुकर्मा की आँखों का चमकीलापन बहुत भाता था. नई चीज़ देखकर यह चमक और भी बढ़ जाती थी. कार से उतरते ही सुकर्मा ने पहाड़ी जमीन के चिकनेपन को महसूस किया था. फिसलने के भय से उसने बसन्त का हाथ थाम लिया था. स्वागत के लिए आए बसन्त के दोस्तों ने इसे अँग्रेजी अन्दाज़ समझा. कौन जानता था कि सुदूर गाँव की यह षोडशी अँग्रेजी के

नाम पर सिर्फ वर्णमाला या गाय के निबन्ध या छुट्टी के लिए प्रार्थनापत्र लिखना ही जानती है. बसन्त ने शादी से पहले ही उसे समझा दिया था कि वह उसके दोस्तों के सामने कुछ भी न बोले. सुकर्मा ने आज्ञाकारी बच्चे की तरह एक भी शब्द न बोलने का मानो संकल्प ही कर लिया था.

साँझ ढले आयोजित प्रीतिभोज में बसन्त के दोस्तों को शराब के नशे में झूमते हुए वह हैरानी से देखती रही. ठण्ड के मौसम में सन्तरे के ठण्डे जूस को बेमन से घुटकती रही. जब उसके नन्दोई ने उसे नृत्य के लिए उकसाया तो वह बसन्त का हाथ पकड़कर झूमने भी लगी. उसकी पतली कमर की लचक को वहाँ उपस्थित सभी महिलाएँ द्वेषपूर्ण नजर से सराह रही थीं. कौन जानता था कि सुकर्मा सिर्फ दसवें दर्जे की छात्रा है. उसके सौन्दर्य से अभिभूत बसन्त ने उसे पूरे मन से स्वीकार किया था.

सुकर्मा को हैरानी थी कि सब महिलाएँ हँस-बोल रही हैं, उसे बोलने की इजाज़त क्यों नहीं है ? वह नहीं जानती थी कि उसका ग्रामीण लहज़ा बसन्त के लिए मुसीबत खड़ी कर देगा.

उसने दमघोंटू चुप्पी के साथ वह साँझ बिताई और कनखियों से बसन्त से पूछती रही, 'सब ठीक तो है न...?' बसन्त की झपकती आँखें उसे आश्वस्त करती रहीं. मन-ही-मन सुकर्मा बसन्त के प्यार की गिरफ्त को महसूस करती रही. बन्द गले के काले सूट में बसन्त का रंग और खिल रहा था. लम्बे कद के कारण वह आदमियों की भीड़ में अलग दिख रहा था. सीधे खड़े घने काले बाल उसकी लम्बाई को और बढ़ा रहे थे. बड़े-बड़े नयन और चौड़ा माथा उसके व्यक्तित्व को निखार दे रहे थे. मुस्कराने पर ठुड्डी का गड्ढा तनिक भर जाता और गालों में गड्ढे उभर आते. उसकी पुरुषोचित ऊर्जा से कौन स्त्री अप्रभावित रहती. सुकर्मा उस पर गिरती-पड़ती औरतों को देखकर तनिक असहज थी. वह आवाज़ देकर बसन्त को अपने पास बुलाना चाहती थी; या यूँ कहो कि इस भीड़ से दूर अकेले कमरे में बसन्त के साथ, सिर्फ बसन्त के साथ होना चाहती थी.

अचानक उसको कमरे के कोने में रखा बड़ा-सा आईना दिखाई दिया. वह चाहती थी कि वह बसन्त के साथ आईने के सामने खड़े होकर अपने-आपको देखे. 'मुझे हो क्या गया है ?' अपने-आप से पूछा उसने.

"दुलहन प्याज़ी रंग में खिल रही है," श्रीमती मधुर ने सुकर्मा के नज़दीक आकर कहा.

सुकर्मा ने अपनी साड़ी के पल्लू को हाथ में पकड़कर गौर से देखा और मन ही मन दोहराया, प्याज़ी रंग ? उसने सोचा, शायद पहाड़ पर प्याज का

रंग फर्क होता होगा, वह पूछना चाहती थी, किन्तु उसे तो बोलने की अनुमति ही नहीं है. उसके भीतर कुछ उमठ गया, पूछेगी नहीं, तो नया जानेगी कैसे? नया जानेगी नहीं, तो नया सीखेगी कैसे?

सुकर्मा को नहीं मालूम था कि बसन्त ने जब उसे कहा था, 'तुम्हें बहुत कुछ सीखना होगा,' तो उस समय ही उसके मन में बडी-बड़ी योजनाएँ थीं. पार्टी के बाद घर पहुँचते ही बसन्त ने उसे सामने बैठाकर बड़े बुजुर्ग की तरह कहा था, "कल स्कूल में तुम्हारा दाखिला होगा..."

"क्या?" चौंककर पूछा था उसने. जवाब में बसन्त ने उसे बाँहों में कस लिया था, "डर गईं क्या...?"

सुकर्मा ने कसमसाते हुए सोचा, 'वह क्यों डरे? गाँव भर के लोंगों को बुद्धु बनाती थी वह... उसे याद आया कि पहली बार जब बसन्त उसे मिला था तो वह पेड़ पर चढ़कर आम तोड़ रही थी. नीचे संध्या आम चुन रही थी.

माँ ने कहा था, 'अचार के लिए आमी चुन लाओ.'

सुकर्मा ज़मीन पर गिरी आमी क्यों चुनती भला? वह तो गिलहरी की तरह आम के पेड़ पर एक ही फलॉग में चढ़ गई और संध्या के फैले आँचल में आम फेंकने लगी. संध्या उसकी चचेरी बहन थी. उसकी सगाई हो चुकी थी. दोनों मिलकर शादी के सपने बुनती थीं. चाहे-अनचाहे सुकर्मा भी मन-ही-मन अपने भावी पति की तस्वीर उकेरा करती थी. 'साँवला-सलोना कोई अजनबी,' गुनगुनाते हुए उसने एक आम नीचे की ओर फेंका तो सवाल उसकी तरफ उछला, "कौन है ऊपर...?"

सुकर्मा ने पत्तों की ओट में मुँह छुपाते हुए नीचे की ओर देखा तो संध्या के स्थान पर खडा था गोरा-चिट्टा एक अजनबी. नीली कमीज में उसका उजला रंग और अधिक खिल रहा था. पैन्ट के चौड़े पहुँचे में छरहरा बदन और अधिक दुबला दिख रहा था. सुकर्मा को उसके घण्टेनुमा पहनावे पर हँसी आ गई.

बसन्त ने एक कदम आगे बढ़ाया और गहरे हरे पत्तों के बीच देखा, लाल गालों वाला गोरा चेहरा, कजरारी आँखें और छोटे-छोटे दो पैर. बसन्त देख ही रहा था कि सुकर्मा ने कूद मारी; पेड़ के चौड़े तने के पीछे छुपी संध्या का हाथ थामा और टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर पलक झपकते ही दोनों गायब हो गईं.

बसन्त ने दाहिना हाथ खोलकर आमी को देखा; फिर हाथ की लकीरों को पढ़ा और याद किया कि राम-नामी तौलिए वाले पण्डितजी ने बताया था कि उसकी दुलहन बहुत सुन्दर होगी. सोचते-सोचते वह बुआ के घर की ओर

वापस चल दिया.

"बुआ...!" बुआ के बाहर आने से पहले ही बसन्त की नज़र छत पर रस्सी कूद रही लड़की पर पड़ी. बसन्त का कुँवारा मन रस्सी घुमाने की उस लय में मानो नाच उठा था. पतली कमर पर झूलती लम्बी चोटी का नितम्बों की गोलाई पर नर्त्तन बसन्त कभी भूल नहीं सका. वह तीन छलाँग में छत पर पहुँच गया. वही कजरारी बोलती आँखें बसन्त को गिरफ्तारी का वॉरण्ट दे गई. चेहरे का लावण्य उसके दिलोदिमाग पर कुछ इस तरह छाया कि उसने बिन सोचे-समझे छत से ही ऐलान कर दिया, "बुआ...! हम इसी लड़की से ब्याह करेंगे..."

बुआ ने घूरा था उसे, "चुप रह, नाशुक्रे ! तुझे मालूम है, किसकी बेटी है वह?"

सुकर्मा सन्नाटा खा गई थी. गाल लाल और कान गर्म हो गए थे. उसकी ओर टकटकी लगाकर बसन्त ने घोषणा की, "जिसकी भी हो, कह देना उनसे–हम भी ठाकुर हैं, बारात का बिगुल बजवा लें वरना..."

"वरना क्या...?" डर गई थी बुआ.

"कुछ नहीं, ठाकुर हैं हम, बुआ! चोर-उचक्के तो नहीं हैं."

बुआ की साँस में साँस आई.

"अपनी पर आ जाएँ तो पृथ्वीराज भी बन सकते हैं." बसन्त ने बुआ को कन्धों से थाम लिया था.

"क्या... क्या...!" बुआ का स्वर रुँध गया था.

सुकर्मा रस्सी पटककर भाग गई.

बसन्त की जिद के आगे किसी की एक न चली. जमींदार साहब ने ठोक-बजाकर बसन्त की जाँच-पड़ताल की. बैंगलोर में रसायन विज्ञान में एम.एस-सी. करने के बाद कुछ वर्ष मुम्बई में शोधकार्य किया. आजकल फैक्टरी में रसायन-विशेषज्ञ की हैसियत से नौकरी कर रहा था वह. घर में शोध के लिए प्रयोगशाला बनाई हुई थी उसने. अच्छा कमा रहा था. घर में डेढ़ सौ एकड़ जमीन थी, देखभाल की कमी के कारण खेती की भारी-भरकम आमदनी नहीं थी तो भी अकेले बेटे के लिए धन-अनाज की कमी तो उम्र भर नहीं होगी. तसल्ली हो जाने के बाद जमींदार साहब ने 'हाँ' कर दी.

अब एक ही अड़चन थी सुकर्मा की उम्र. बसन्त इन्तजार के लिए तैयार नहीं था. उसने तो बुआ के गाँव में डेरा ही डाल दिया.

"जब तक ब्याह की तारीख नहीं सुधवाओगे, हम तो यहीं रहेंगे."

आखिर सोलह बरस आते-न-आते सुकर्मा शौक से दुलहन बन गई.

गोरी कलाइयों में चूडियॉ खूब सजीं और बसन्त के परिवार ने नाजुक-सी दुलहन को सिर-हाथों पर लिया. बसन्त के पैर जमीन पर नहीं थे और उसने सुकर्मा को अपने गाँव की ज़मीन का खुरदुरापन महसूस नहीं होने दिया. जीवन में एक ही रंग था–प्यार और सिर्फ प्यार.

बसन्त सुकर्मा से दस बरस बडा था. बैंगलोर में पढ़ाई के दौरान सभी सहपाठियों ने लड़कियों के किस्से सुनाए. चुम्बन-आलिंगन की कला पर व्याख्यान दिए. बसन्त प्यार की गहराई को महसूस करना चाहता था. इसीलिए गली-सड़क पर सिक्कों की तरह उछलते प्यार की मिथ्या बातें उसे आकर्षित नहीं कर सकीं.

उसकी सहपाठी लडकियाँ भी कहती थीं, 'बसन्त के साथ वह जंगल में भी सुरक्षित है. बसन्त उनकी तरफ ऑख उठाकर गौर से देखेगा भी नहीं, छूना तो दूर की बात है.'

मुम्बई में रागिनी ने बसन्त पर मन-प्राण न्यौछावर करने की कसमें खाईं. एक दिन रागिनी ने शादी की जिद पकड़ ली. नींद की गोली खाकर जान देने की धमकी दी. बसन्त के दृढ़ निश्चय में दरार नहीं आई. वह तो मजबूती से डटा रहा. वह दोस्तों के सामने यही वाक्य दोहराता रहा, 'नहीं, मैं शादी के नाम पर जिन्दगियों से खिलवाड नहीं कर सकता हूँ. क्षणिक आवेग प्यार नहीं है.' उसकी बातें दोस्तों की समझ से परे थीं.

मूड में आकर वह प्रवचन-सा सुना देता, 'प्यार तो ऊसर में भी अंकुर पैदा करने की क्षमता का उद्घोष है. प्यार नैसर्गिक रूप से स्वत:प्रसूत होता है. प्यार हो जाता है अकस्मात्–पहाड के कठोर सीने से निकलते झरने की तरह कोमल, शीतल और तरंगों सा उन्मादित, किसी भी बंधन और बॉध से परे, जा मिलता है अपनी प्रेमिका को. इसके लिए उसे पहले से बने रास्ते की तलाश नहीं होती है, वह तो अपना रास्ता खुद बनाता है ; रास्ता ऊबड-खाबड़ हो तो क्या? हरी काई-सा चिकना हो, तो भी क्या?'

सुकर्मा के प्रति बसन्त के भीतर प्यार के अंकुर ने सिर उठाया. उसने प्यार से उसे सहलाया और परिणय की सीढ़ी को सफलतापूर्वक पार कर लिया.

अब समय था कठिन परीक्षा का. 'दाम्पत्य में भी प्रेम बना रहे, तो जानें?' दोस्तों की सवालिया निगाहें तीन दिन में ही उठने लगी थीं.

श्रीमती मिश्रा ने भोली सुकर्मा से जान लिया था कि सुकर्मा केवल दसवीं की परीक्षा ही दे पायी है. यह बात जंगल की आग की तरह उस पहाड़ी नगर में फैल गई. साँझ होने से पहले ही किसी ने साँकल खटखटाई.

"जीऽऽऽ आई." घाटी में आवाज गूँजी.

"एक सूरज उधर डूब रहा है और बसन्त के घर में सूरज उग रहा है." श्रीमती मधुर ने टिप्पणी की. कई लोगों के हँसने की आवाज से भयभीत सुकर्मा हिरणी की तरह भागते हुए शयन-कक्ष की अलमारी की ओट में छिप गई.

बसन्त घर में नहीं था. वह नहीं जानती थी कि वह अब क्या करे. आज सुबह ही तो उसे बसन्त ने फोन करना सिखाया है. उसकी मेहँदी सजी पतली-पतली अँगुलियाँ फोन के डायल में घूमने लगीं; जल्दी-जल्दी में उसकी अनामिका का नाखून टूट गया. वह तो फफक-फफक कर रोने लगी. महिलाएँ घबरा गईं. श्रीमती मिश्रा ने फोन करके बसन्त को घर बुलाया.

बसन्त ब्रीफकेस थामे सुकर्मा के समीप आया, "क्या हुआ सुकर्मा...?" लोगों की उपस्थिति से अनजान उसने सुकर्मा के माथे को चूमा. पलक झपकते ही सुकर्मा का सिर बसन्त के चौड़े सीने में छिप गया. महिलाएँ बरामदे से जाने ही वाली थीं कि बसन्त को चेत हुआ. उसने प्यार से सुकर्मा को समेटते हुए कहा, "आएँ, बैठें आप." और बाहर की ओर देखते हुए आवाज लगाई, "श्याम सिंह, जल्दी आओ! देखो, मैडम लोग आए हैं. आकर चाय बनाओ."

वे सब महिलाएँ चाय पीकर वापस चली गईं. सुकर्मा के पेट में डर की तरंगें छोड गईं. रह-रहकर सुकर्मा की सिसकियाँ पेट से फूट पडतीं. आधी रात के बाद ही वह हिचकियों के बीच बसन्त को बता सकी कि श्रीमती मिश्रा ने उसे 'बेटा, बेटा' कहकर जान लिया था कि वह उनके जैसी पढी-लिखी आधुनिका नहीं है. बसन्त को अपनी योजनाएँ याद आईं, उसने कहा, "तो क्या? सब ठीक हो जाएगा." तब कहीं जाकर सुकर्मा की आँसू-भरी बरौनियों पर उसके होंठ जुड़े. वह आँख से उसे देखना चाहता था. होंठों से पी जाना चाहता था, हाथों से महसूस करना चाहता था. उफनते ज्वार सी लहरें उसकी मुट्ठियों में आ-आकर फिसल रही थीं. वह डूब जाना चाहता था—उस उफान में...सुबह हो गई इतनी जल्दी!

सुकर्मा ने आँखें खुलते ही आँखें बन्द कर लीं. बसन्त को हँसी आ गई. सुकर्मा ने झुककर उसके पैर छुए. साड़ी की चुन्नट ज़मीन पर थी और पल्लू कन्धे पर, मुँह के आगे रजाई; गोरे पैर ठंडे फर्श से दो इंच उठने को आतुर... बसन्त ने रजाई फैलाकर उसे अपनी बाँहों में उठाया और दोनों रजाई पर बैठ गए. सुकर्मा उसके सीने में मुँह छुपाए थी और किसी भी तरह मुँह ऊपर उठाना नहीं चाहती थी. उसने उसके बालों पर हाथ फेरा, माँग चूमी और अखबार लेने के लिए बाल्कनी में चला गया. सुकर्मा शीशे से शरमाती रही...

दो

आँख झपकते दो-चार दिन में दिनचर्या का ढर्रा धुरी पर आया. बसन्त अपने काम पर चला गया. यार्न की फैक्टरी में रसायन-विशेषज्ञ है वह. आँख अधमुँदी-सी रहती दिन भर ; किन्तु शरीर में अजब उत्साह है. काम के लिए न जाने कितने सारे ख्वाब जाग उठे हैं अचानक. सुकर्मा को सारे सुख देगा वह. इतनी नाजुक है वह. उससे देखा नहीं जाता कि वह दिन-भर काम करे. घर में एक नौकर तो होना ही चाहिए. इतनी सुन्दर है वह. आस-पास के सब लोग झाँकते रहते हैं उनके घर की तरफ. एक बडा घर तो होना ही चाहिए, जिसकी ऊँची दीवारें हों, ऐसा घना बेलों और पेडों का झुरमुट, जो सुकर्मा को छुपाए रखे. और बसन्त को याद आ गई, आम के पत्तों के पीछे से झाँकती सुकर्मा की बडी-बड़ी आँखें.

उसका तो सच में, मन नहीं लग सकता है दो कमरों के फ्लैट में. ठीक ही तो कहती है वह, "जब मैं सामने पहाड़ों का फैलाव देखती हूँ, भागकर चढ़ जाना चाहती हूँ पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर." पूछ रही है, "यहाँ आम नहीं होते क्या ?"

बसन्त ने कहा, "पगली कहीं की. नवम्बर में आम ढूँढ़ रही है." बसन्त ने सोचा, 'अभी तो आम नहीं हैं पेडों पर, जब बौर आएगा, आम-लीची पर कोयल कूकेगी, तो कैसे बाँधकर रखेगा वह सुकर्मा को? बाँधकर रखना सही भी नहीं है. पिंजरा सोने का हो तो भी बुरा लगता है. सुकर्मा ही क्या, कोई भी पिंजरा तोड़कर भाग जाने की कोशिश करे तो गलत नहीं होगा.' बसन्त को घबराहट से पसीना आ गया, नहीं, वह सुकर्मा के बिना एक पल भी नहीं रह सकेगा.

अपनी जाँच को अधूरा छोड़कर वह अपने घर आ गया. सुकर्मा सफाई करने में लगी थी. उसके आते ही घर चमक गया है. कितनी जल्दी सीख गई है वह—शहर के तौर-तरीके. पर्दे-कुशन, चम्मच-काँटे, सबके अर्थ और उपयोग समझ में आने लगे हैं उसे. होशियार है सुकर्मा, स्वाभिमानी भी. बसन्त चाहे,

तो भी उसे चारदीवारी में कैद स्त्री नहीं बना सकता है. यह बात पन्द्रह दिन में ही समझ में आ गई है बसन्त को. वह उसके दोस्तों के सामने चुप रहती है, उनकी कोई गलत बात सहना उसके लिए गवारा नहीं है. उनके जाते ही बात-बात पर रामायण-महाभारत की कहानी के उद्धरण सुनाती है. न जाने कैसे गीता के उपदेश भी कण्ठस्थ हैं उसे. जब वह गीता के निष्काम कर्मयोग की बात करती है, तो योद्धा नज़र आती है. आँख के तरकश से फूटती चिंगारियाँ अग्निबाण से कम हैं क्या? इस आग को केवल बसन्त का प्रेम ही बाँधकर नहीं रख सकता है. उसे इस आग को दिशा देनी होगी. दिशा, हाँ! बसन्त ने सोचा, 'सुकर्मा को किसी रचनात्मक काम में व्यस्त रखना होगा.'

"सुकर्मा, आप कढ़ाई करना जानती हैं क्या?" बसन्त ने पूछा.

उसने हैरानी से बसन्त की ओर देखा और 'न' में सिर हिला दिया.

"स्वेटर बुनेंगी क्या?"

फिर 'न' में सिर हिला और सवाल उछला, "क्यों...?"

"नहीं, यूँ ही!"

"मँझली भाभी से कहेंगे, बुन देंगी स्वेटर आपके लिए."

अपने दोनों के बीच किसी तीसरे का जिक्र बसन्त को अच्छा नहीं लगा.

"नहीं, भई, हमें अपने लिए स्वेटर नहीं चाहिए. हम तो..." कहते-कहते चुप हो गया बसन्त. इस नादान को कैसे समझाएँ कि वह उसे व्यस्त रखने के लिए काम ढूँढ़ रहा है. यदि वह पूछेगी कि 'क्यों व्यस्त रहे वह...' तो क्या जवाब देगा?

बसन्त ने दोनों हाथों को खोलकर देखा. दोनों हाथ जोड़कर अर्द्धचन्द्र देखने की आदत-सी हो गई है उसे. बाहर सूरज की धूप फैली थी और अन्दर उलझन का धुआँ... 'आज पुस्तकालय से कुछ उपन्यास ले आता हूँ सुकर्मा के लिए...सुकर्मा तो इतनी पढ़ी-लिखी है ही नहीं!' झटका लगा बसन्त को. बसन्त की सोच से अनजान सुकर्मा दो कप चाय ला रही है. बसन्त ने पूछा, "सुकर्मा! आप आगे पढ़ना चाहेंगी?"

चाय छलक गई अचानक. सुकर्मा सहम गई. बसन्त एकदम उठा. पास ही रखे मेज पर चाय रखकर उसने सुकर्मा को आलिंगन में ले लिया. कवच जैसे स्पर्श से सुकर्मा सुरक्षा-भाव से भर उठी. बसन्त ने चुम्बन लेकर उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "डरने की कोई बात नहीं है. सुकर्मा, हम जानते हैं कि आप बहुत होशियार हैं. सब कुछ तो आता है आपको. यूँ ही, सोचा कि दिन-भर अकेले रहते हुए खालीपन से उदास हो जाएँगी आप, तो क्यों न आगे पढ़ लिया जाए."

"जीSSS !" कहकर सुकर्मा अपने-आपमें सिमट गई. वह शादी से पहले भी पढ़ना चाहती थी. आठवीं कक्षा में प्रथम भी आई थी वह. स्कूल से आने के बाद दिन कैसे गुजरता था, मालूम ही नहीं होता था. मन चाहे तो घर का काम कर लेती थी या संध्या के साथ गिट्टे खेलकर या छत पर रस्सी कूदकर शाम गुजार लेती थी. अब यहाँ पढ़ाई कर सकेगी क्या? स्कूल... शहर का स्कूल कैसा होता होगा...? उसकी आँखों में उत्सुकता जागी.

"यहाँ से स्कूल कितनी दूर है?" सुकर्मा ने पूछा.

बसन्त मुस्करा दिया ; यानी कि सुकर्मा पढ़ने के लिए तैयार है. "इन सब बातों की चिन्ता आप न करें. वह सब इन्तजाम करने के लिए हम हैं न आपके साथ !... और हम भी पढ़ाई में मदद देंगे अपनी रानी को." सुकर्मा के बालों की लट को अँगूठे पर लपेट लिया उसने.

सुकर्मा भौचक्क थी. नहीं जानती कि वह खुश हो या नाराज़. अजीब है यह व्यक्ति. ऐसे तो देवता होते होंगे शायद. उसके भाई तो कभी भी उसकी भाभी को स्कूल न जाने दें--सोचते-सोचते सुकर्मा सो गई, बसन्त की बाँहों में.

उस रात बसन्त सो नहीं सका; जागती आँख से सपना देखता रहा. वह हमेशा से चाहता है कि सुकर्मा पढ़े. उसने सुकर्मा को केवल पत्नी के रूप में नहीं चाहा है, वह सच्चे अर्थ में उसे सहधर्मिणी बनाना चाहता है. ज़िन्दगी का साझीदार होने के लिए सुकर्मा का पढ़ना सहायक ही होगा. सुकर्मा पढ़-लिख लेगी, तो ज्ञान की दीप्ति से और खिल उठेगी. स्मार्ट... हाँ, वह स्मार्ट भी हो जाएगी.

'पति का सामाजिक स्तर पत्नी से ही जाना जाता है.' इस सुनी-सुनाई बात ने न जाने कब और कैसे साँप के फन की तरह सिर उठा लिया. बसन्त उसी रौ में सोचता रहा, 'जिस पुरुष को अच्छी पत्नी न मिल सके, वह और भला क्या पाएगा जिन्दगी में? किसी भी पुरुष का असली मूल्य उसकी पत्नी की खुशी से ही आँका जा सकता है. कोई बाहर की दुनिया में कितना भी ऊँचा पद सँभाले हो, कितना भी रईस हो, लम्बी गाड़ी में घूमता हो, बच्चों को अच्छे स्कूल में भेजता हो, उसकी पत्नी खुश न हो तो गृहस्थी की बेल तो सूख जाएगी न! जीवन में रस न हो तो सफलता या उपलब्धि का क्या करना?' बसन्त के होंठ अपने-आपसे बात कर रहे हैं.

बसन्त ने सुकर्मा को प्यार से देखा. अपनी पसलियों पर उसके वक्ष का दबाव महसूस किया और हाथ रख दिया खुली पीठ से उभरते उसके उजले सौन्दर्य पर.

तीन

आँख खुली तो दीवार के ऊपरी हिस्से में बने गोल झरोखे से ढलते सूर्य की किरणें छनकर आ रही थीं. सफेद दीवार पर अजीब-सा पीलापन उग आया था. सुकर्मा अँगडाई लेना चाहती है. शादी के बाद उसने यह स्वाभाविक प्रक्रिया न जाने क्यों छोड़ दी है? आँख खुलते ही एक झटके में उठ जाना, अब उसकी आदत बन गई है. बसन्त अच्छा है, उसको बहुत प्यार करता है, उसका ध्यान रखता है, अब तो उसे आगे पढ़ाना भी चाहता है, फिर भी वह उससे डरी-सी रहती है.

शायद माँ ने या चारों तरफ के माहौल ने उसके अन्दर एक भय भर दिया है. गलती हो जाए तो डरे कोई, यहाँ तो डर के कारण गलती पर गलती हो रही है, हर पल दहशत में जी रही है वह.

किसी फलते-फूलते पौधे को उखाड़कर दूसरी जमीन पर लगाया जाए, तो वह एकदम मुरझा जाता है. नई आबोहवा के अनुसार ढलने में कुछ वक्त तो लगता है न ? सुकर्मा ने सोचा, सब ठीक हो जाएगा. पढ़ेगी तो उसे सब बातें समझने में आसानी होगी. बसन्त को कभी भी उसे कम पढ़ा लिखा होने के कारण शर्म नहीं महसूस होगी.

बसन्त को बुरा लगता होगा कि उसकी पत्नी कम पढ़ी-लिखी है. तभी तो वह उसे पढ़ाना चाहता है. ठीक है, बसन्त की खुशी में ही उसकी खुशी है. वह पढ़ेगी, ज़रूर पढ़ेगी–सोचते-सोचते उसने गैस पर दूध रखा और कॉफी बनाई. पीछे से अकस्मात् बसन्त ने आकर उसे चौंका दिया. एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए दोनों अपना-अपना कॉफी का प्याला उठाए बाल्कनी में आ गए.

बसन्त ने उसे गौर से देखा. स्कूल में वह और लड़कियों के साथ अलग तो दिखेगी. वह है ही इतनी सुन्दर. शहर की लड़कियाँ इतनी स्वस्थ तो कभी दिखती ही नहीं हैं. शुद्ध घी, दूध और खुली हवा का असर है या सीधे-सच्चे जीवन का! सुकर्मा की देह स्वास्थ्य के पैमाने पर एकदम सही सिद्ध होती

है. उजला बेदाग रंग, चेहरे में अद्‌भुत चमक. ढलते सूरज की किरणों को कैसे परावर्तित कर रही है उसकी काजल-खिंची पानीदार आँखें ! शरीर में घुमाव ऐसे कि अजन्ता-एलोरा की मूरत हो जैसे. शहर की लडकियों में इतनी गोलाई होती ही नहीं है. अकसर वह अधिक खा-खाकर बेडौल होतीं हैं या अल्पाहार से अत्यधिक दुबली होती हैं. ऊपर से मेकअप की परतें और नकली मुस्कानें, टेढ़े होंठ करके तीखी आवाज़ में बोलना और अँग्रेजी के ज्ञान को बघारने की कोशिश करते-करते जुबान का लड़खड़ाना.

सुकर्मा तो सिर्फ काज़ल और सिन्दूर से ही खिल उठती है और गिलहरी की तरह छलाँगें मारती उसकी चढ़ती उम्र बिनबोले बोलती है. बसन्त ने सोचा, 'स्कूल में सिन्दूर लगाकर जाना तो सही नहीं होगा.'

"सुकर्मा, आप दो चोटी नहीं करतीं क्या?" बसन्त ने पूछा.

"करती हूँ, कभी-कभी दो चोटी–माँ तो जूडा भी बना देती थी पुरानी हिरोइन जैसा." फिल्मों की जानकारी भी है सुकर्मा को. यह जानकर बसन्त को खुशी हुई.

"अच्छा... तो आओ, आपकी दो चोटी बना दें." बसन्त ने जेब से अपना कंघा निकाला.

"इतनी छोटी कंघी से हमारे बाल सॅवारेंगे आप...?" वह खिलखिला कर हँस दी.

"क्यों?... अच्छा, आप जाएँ तो जरा, अपना कंघा लाएँ अन्दर से."

"जी !" शरमाती-बल खाती सुकर्मा भीतर चली गई. कंघा लेकर बाहर आई तो उसके बाल उसकी पीठ पर लहरा रहे हैं. "इधर आओ, पीछे घूमो तो." बसन्त पास आकर खड़ा हो गया.

"सुकर्मा!" धीमे-से कान में कहकर बसन्त ने उसके हाथ से कंघा लेकर सुकर्मा को अपने सामने खड़ा कर लिया. 'केशराशि स्त्री की महती सम्पदा है.' बसन्त ने सोचा. बालों से ही तो व्यक्ति के स्वास्थ्य की पहचान होती है, उसके दिमाग में रसायन शास्त्र के सूत्र घूमने लगे. वह डॉक्टर होता तो सभी स्त्रियों को ऐसे विटामिन्स जरूर दे देता जिससे उनके बाल स्वस्थ हों. अभी भी क्या बिगड़ा है? वह रसायन विज्ञान जानता है. कोई तेल खोजना चाहिए उसे बालों के स्वास्थ्य के लिए. गंजापन ठीक कर देगा वह चुटकियों में. खूब बिकेगा. हिन्दुस्तान में तो बहुत गंजे हैं और चाहे कोई फैशन में बाल कटा ले, फिर भी हर एक के मन में कहीं यह इच्छा जरूर छिपी होती है, 'काश! मेरे बाल घुटनों तक लम्बे होते!'

ठीक है, वह ऐसे तेल को ढूँढ़ ही निकालेगा. पैसे भी आएँगे खूब. पैसे,

हाँ, पैसे उसे चाहिए भी. पिताजी ने उसे विज्ञान पढ़ाकर इस लायक तो बना ही दिया है कि वह नई खोज की बात सोच सके.

...और क्यों न करे वह नई खोज? अपने परिवार में वह अकेला है, कुटुम्ब तो बडा है. वह अपनी तीनों चचेरी बहनों–कुन्ती, राधा और वर्षा–की शादी धूमधाम से करेगा. उसके लिए ढेर सारे पैसे की तो जरूरत है न...! खयालों के साथ-साथ कंघा भी चलता रहा सुकर्मा के बालों पर. वह नहीं जानता था कि उसने सुकर्मा के बाल उलझा दिए हैं. अब सुकर्मा बीच-बीच में धीमे से 'उई' कर रही थी. वह होंठ दबाकर दर्द पी रही है. प्यार से कहा उसने, "मैं खुद करूँ क्या दो चोटी ?"

"हाँ, ठीक है." बसन्त ने कहा.

कंघा देने के लिए सुकर्मा की ओर आँख उठाई तो देखा, सामने की बालकनी पर पाँच-छ: औरतें झुरमुट बनाकर खड़ीं थीं.

श्रीमती कपूर ने तरकश चलाया, "वाह रे, कृष्ण की राधा...!"

बसन्त अपनी राधा का हाथ पकड़कर अन्दर ले गया. पीछे से हँसी के फव्वारे सुनाई दिए; यानी कि पत्नी से प्रेम करना भी अपराध है. इन औरतों को सही मायने में प्यार नहीं मिला होगा. इसीलिए दूसरों पर तानें कसती हैं 'कुण्ठित आत्माएँ'. बसन्त बुदबुदाया. उसे गुस्सा कम आता है. ऐसी बातों पर भी गुस्सा न करे, यह तो हो नहीं सकता. गुस्सा करने से कोई हल तो मिलेगा नहीं. ये खाली औरतें खाली-पीली बात का बतंगड़ बना देंगी. सुकर्मा स्कूल कैसे जाएगी? वह किताबों का बस्ता लेकर, दो चोटी बनाकर, काले जूते और लाल जुराब पहनकर बाहर निकलेगी तो हर घर के झरोखे में घूरती आँखें होंगी.

'यह तो अजीब उलझन है!' बसन्त सिर के नीचे हाथ दबाकर बिस्तर पर लेट गया. दृष्टि दीवार पर ऊँचे बिन्दु पर टिका दी उसने. सुकर्मा दो चोटी बनाकर प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में उसके सामने खड़ी मुस्करा रही है.

"बहुत अच्छी लग रही हो बैठो." बसन्त की टाँगों के पास खाली पलँग पर सुकर्मा बैठ गई.

"सुकर्मा, हम मसूरी में घर ले लेते हैं. वहीं रहेंगे."

"क्यों...?" सुकर्मा ने पूछा.

"वहाँ स्कूल बहुत अच्छे हैं." औरतों की बात बनाने की बात नहीं कही उसने.

"जी... और आपका काम ?"

"मैं रोज़ देहरादून आ जाऊँगा."

"जी, रोज़ आने-जाने में मुश्किल होगी आपको."

"कोई बात नहीं, कुछ ही साल की तो बात है."

"जीऽऽऽ," कहकर वह खाना बनाने के लिए रसोईघर की ओर चली गई. पीछ-पीछे बसन्त भी गुनगुनाते हुए वहीं पहुँच गया. सुकर्मा कड़ाही में प्याज भूनते हुए अजीब लय में नृत्य करती हुई गुडिया-सी प्रतीत हो रही है. बसन्त के जिस्म में भी थिरकन जाग रही है...

चार

अगले दिन, सुबह ही, छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र देकर बसन्त मसूरी चला गया. वहाँ जाकर स्कूलों में बात की. पहले तो 'न' ही मिली, कठोर 'न'. दिन दुनी और रात चौगुनी जनसंख्या बढानेवाले इस देश में स्कूल में प्रवेश पाना कौन-सा आसान है. किन्तु बसन्त तो कृतसंकल्प था. उबला अण्डा और टोस्ट खाकर मसूरी के दूसरे कोने में स्थित एक नए स्कूल में पहुँचने के लिए तेज कदमों से चलने लगा. एक पैर में जूता काट रहा है, बसन्त दर्द और थकान को भुलाकर चलता रहा. आखिर उसको मेहनत का अच्छा परिणाम मिला. 'हाँ' कह दिया प्रिंसिपल श्रीमती सलारिया ने और आश्वासन दिया कि अँग्रेजी के लिए अलग से 'ट्यूशन' दी जाएगी.

बसन्त ने गांधी द्वार से बस पकड़ी और भागते-दौडते घर पहुँचा. वह अजीब उत्साह से भरा था. सुकर्मा उसके लाल गाल और उड़े बाल देखकर स्तब्ध थी.

"हमारी सुकर्मा अबं पढने जाएगी." ऊँची नासिका पर चिकोटी काटी बसन्त ने.

'उई' कहकर सुकर्मा मुड़ी और रसोई में पहुँच गई. उसने गर्म पानी रखा हुआ था. पलक झपकते चाय के दो प्याले और आलू-प्याज के पकौड़े ले आई. चाय पीकर बसन्त कपड़े बदलकर सो गया और सुकर्मा खाना बनाकर उसके जागने की प्रतीक्षा करते-करते स्वयं भी सो गई.

सुबह दोनों एक दूसरे को देखकर खूब हँसे. बेसुध सो जाना भी एक अद्भुत सुख है. ऐसी नींद भी तो उसी को नसीब है, जिसके पास प्रेम की पूँजी है, सुरक्षा का आश्वासन है और अकेलेपन का हौआ नहीं है.

बसन्त ने साँकल खोलकर अखबार उठाया, "अरे युद्ध...भारत-पाक युद्ध शुरू हो गया है."

सुकर्मा को कुछ समझ नहीं आ रहा है. बसन्त उसे समझाता रहा, बंग-बंधु मुजीबुर्रहमान का संघर्ष, ढाका में गोली का चलना, याह्या खाँ का

सैनिक अत्याचार और अब युद्ध.

तैयार होकर बसन्त काम पर गया. वहाँ ऊन के धागे की संपूर्ति कम होने के कारण काम कम हो गया. बसन्त पर प्रबन्धन के काम का बोझ कम हो गया. इस खाली वक्त में उसने अपनी प्रयोगशाला में कुछ प्रयोग किए और अपने मित्रों की मदद से मसूरी में घर ढूँढ़ा. सुकर्मा तो नया घर देखकर बहुत खुश थी.

"मसूरी तो देहरादून से भी ज्यादा सुन्दर है..." सुकर्मा ने कहा.

"नहीं, मेमसाहब! आप इस समय दून घाटी की बत्तियों का ही सौन्दर्य देख रही हैं."

"अच्छा, बताओ, हमारे घर की रोशनी कौन-सी है?" सुकर्मा ने पूछा.

"यह रही." बसन्त ने सुकर्मा की ओर इशारा किया. ब्लैक-आउट का सा:यरन होते ही दून घाटी अँधेरे में खो गई. सुकर्मा भय से सिमटकर खुद ही उसकी बाँहों में आ गई और दोनों नए घर की खाली दीवारों को छूते-टटोलते जमीन पर बिछे बिस्तर पर एक-दूसरे में डूब गए.

सुबह दोनों ने मिलकर देहरादून से आया सामान सुव्यवस्थित किया. बसन्त ने घर के एक कोने में अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला बना ली. सुकर्मा ने नियम से स्कूल जाना शुरू कर दिया. बच्चों के साथ बैठने में तनिक संकोच तो हुआ, पढने की खुशी उससे कई गुना अधिक है. बसन्त हर रोज उसे स्कूल छोडते हुए देहरादून की बस मे बैठ जाता और साँझ लौटकर सुकर्मा को लेते हुए घर पहुँचता.

कुछ ही दिनों में स्कूल शीत-अवकाश के लिए बन्द हो गया. सुकर्मा की पढाई दोगुनी गति से शुरू हो गई. रोज शाम को सुकर्मा को स्कर्ट पहनकर पढ़ने बैठना होता था. धीरे-धीरे बसन्त ने उसकी सारी हिचकिचाहट दूर कर दी. पहले दिन तो स्कर्ट पहनकर वह पेट में टाँगें घुसाकर ज़मीन पर बैठ गई थी. खड़ी होने का नाम ही नहीं ले रही थी. टपा-टप आँसुओं से बसन्त की सारी कमीज भीग गई है. अब तो मालरोड पर एक चक्कर भी लगा आते हैं दोनों, उसी तरह अध्यापक-छात्रा के भेष में.

अब दोनों को अपने रिश्ते के नये मायने मिल गए हैं. देह से परे मन का सम्बन्ध स्थापित हो रहा है. दोनो एक-दूसरे मे अपना भाग्य-निर्माता देख रहे हैं.

प्रेम क्या है? यही तो कि प्रेम करनेवाले परस्पर अवरोध का नहीं, विकास का माध्यम बनें. एक-दूसरे पर नियन्त्रण का रस्सा नहीं, संवाद का रेशमी सूत्र बाँधें. प्रेम है सहज एवं स्वतःस्फूर्त ऊर्जा, जिससे दोनों एक-दूसरे

के प्रति निकटता की चाह महसूस करते हैं. हर दिन निकट से निकटतर होते जाते हैं. सुकर्मा एवं बसन्त के दाम्पत्य की नींव सही है, यह बसन्त का वैज्ञानिक दिमाग समझता है. सुकर्मा का स्नेहिल आँचल इस रस-फुहार से प्रतिपल सुगन्धित हो रहा है. पहाड़ों की चोटियों पर, नीचे घिर आए मेघमालाओं में, दूर-दूर तक फैली हरी वादियों में संगीत सुनाई देता है उन दोनों को.

अपने जीवन में सुख हो तो सुख ही सुख है चहुँओर !

युद्ध के दौरान भी उनके निजी जीवन में आनन्द के छोटे क्षण हैं. नित नया सीखने का उत्साह है और नया सीखने की उपलब्धि का सन्तोष है. अब सुकर्मा अखबार की खबरें जानने को उत्सुक रहने लगी है. हर रोज सुबह युद्ध की खबरें पढकर सुनाता है बसन्त. धीरे-धीरे सुकर्मा ने खुद भी अखबार पढ़ना शुरू कर दिया.

सोलह दिसम्बर को बसन्त खुशी से झूम उठा, जब सुकर्मा ने पाक सेनाओं द्वारा घुटने टेकने की खबर सुनाई.

"शुक्र है! युद्ध थम गया, खत्म होंगे ब्लैक आउट और काम कम होने का खालीपन." बसन्त का माथा हर भारतीय की तरह गर्व से उन्नत है. पाक सेनाओं ने समर्पण किया है. 'भारतीय उपमहाद्वीप' पर नया देश उभरकर आ रहा है, बांग्लादेश. एक राहत की सॉस ली बसन्त ने, "चलो, एक और सीमा पर तो भारत को एक पडोसी मित्र-देश मिला." इन्दिरा गांधी की जय-जयकार हो रही है और बसन्त सुकर्मा को गोद मे उठाकर चक्कर लगा रहा है—कमरे के बीच मे. सुकर्मा ने शान्ति की खबर दी और खुद पढकर बताया. यह अच्छा चिह्न है. सुकर्मा मे जल्दी सीखने की क्षमता है, बसन्त इस बात से भी गर्वभाव से अभिभूत था.

बसन्त की स्वप्न-शृंखला तेजी से आगे बढ़ रही थी. चाचाजी को इतने पैसे दे देगा कि तीनों बहनों की शादी हो जाए. फिर विदेश चला जाएगा, सुकर्मा के साथ. धन और यश, दोनों ही की आकांक्षा बसन्त को दौड़ने के लिए धक्का दे रही थी, तेज़, और तेज; जैसेकि आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक खिंची विद्युत-रेखा कह रही हो, 'बढो, आगे बढ़ो तुम, जीतो; तुम्हारे साथ सुकर्मा है. तुम्हारे हाथ में बल है, मन में प्यार, और क्या चाहिए तुम्हें? बढ़ो, आगे बढ़ो, गगन के तारे छू लो, चॉद की शीतलता चूमो, सूर्य की ऊर्जा ग्रहण करो.'

नवस्फूर्ति से गतिमान बसन्त अपने काम पर जाने के लिए बस में बैठ गया. सुकर्मा घर का काम निपटाकर पढने बैठ गई. उसे पढाई में आनन्द

आने लगा है अब.

नई किताबें भी दे दी है, श्रीमती सलारिया के द्वारा भेजी हुई शिक्षिका ने. वह हर रोज तीन से पाँच बजे तक सुकर्मा को पढाने के लिए आती है. उसका नाम उदिता है. लगभग तीस वर्ष की उम्र होगी. पतला-छरहरा शरीर. गोरा रग और सपाट चेहरा. न मुस्कान, न गुस्सा, परन्तु कभी-कभी झुँझलाहट दिखाई देती है. सुकर्मा उसके बारे में और कुछ भी नहीं जानती.

पढाई के बाद दोनों संग चाय पीती हैं. उदिता के जाने के बाद सुकर्मा बसन्त की प्रतीक्षा में बाहर ही खडी रहती है. लगभग साढे छः बजे बसन्त घर पहुँचता है. सुकर्मा के लिए जैसे दिन में दो बार सूरज उगता हो. अपने प्रियतम को देखते ही वह नई ऊर्जा से भर उठती और कब उसके कन्धे पर सिर रखकर सपनों में खो जाती, उसे खुद भी मालूम नही है.

नदी का स्रोत कौन देख सकता है, बरखा की बूँदों से नदी बन गई है या ग्लेशियर के पिघलने से. कौन जाने ? लोग तो जानते है कि नदी है बस, है तो है; अँजुली भर जल पिओ, तृप्त हो जाओ और स्वयं भी रस की धार बन जाओ...

ऑखो में उगते इन्द्रधनुषी रंगों के सम्मोहन मे जीवन के असली रंग खो गए थे. आस-पास के लोग कयास लगाने लगे कि बसन्त और सुकर्मा का रिश्ता क्या है'? बस्ते को कधे पर लटकाए स्कूल की यूनिफॉर्म में दो चोटी वाली सुकर्मा अपनी उम्र से छोटी लगती थी और जिम्मेदारी को अपनी बलिष्ठ पीठ पर उठाए बसन्त सुकर्मा से दस वर्ष से भी अधिक बडा दिखता था. घर मित्रों की मदद से लिया था—बार्लोगंज की सुनसान सडक पर पुराना बँगला. किसी अंग्रेज ने इसे अपनी दूसरी पत्नी के लिए बनवाया था, जो कभी भी यहाँ आकर नहीं रही. उसका मन बिहार के बडे घर म ही लगता था.

अंग्रेज वृद्ध की मृत्यु के बाद उनके नौकर ही इस सम्पत्ति के मालिक बन गए हैं शायद. बसन्त को इस लम्बी कहानी से कोई मतलब नहीं था. उसने तो अपने मित्र को तीन महीने का अग्रिम किराया देकर चाबी ले ली थी.

बसन्त बडे घर में मालिक की तरह निश्चिन्त होकर रहने लगा. हिन्दुस्तान के किसी कोने में कोई दो विपरीतलिंगी वयस्क साथ रहे, सिन्दूर-बिन्दी का कोई चिह्न न हो और प्रेम की पींगे भरते मन-प्राण जिस्म की सीमा लाँघते नजर आएँ, तो आस-पडोसवाले बिन कहे-पूछे चिन्ता करने लगते हैं. 'पर्यटन-स्थल पर जो न हो, सो कम है.' पहली टिप्पणी उछलकर खिड़की से भीतर आई, तो बसन्त ने निर्णय किया कि वह ध्यान रखेगा. पर्दे खींचकर ही सुकर्मा

को छुएगा. सुकर्मा के सहज प्यार को रोकने का दु:साहस वह कैसे करे? हिरणी-सी खुली आँखों में गुलाबी डोरे लिए वह कभी उसके कन्धों पर झूल जाती और कभी गोद में बैठने को आतुर हो उठती. बसन्त को समुद्र में उठता ज्वार अद्‌भुत सुख देता. हवा के संग उठती-गिरती तरंगों में डूबने की लालसा वह भी कब रोक सका?

प्यार तो खुशबू की तरह महकता है चहुँओर. फिर यहाँ तो कोई अपराधबोध भी नहीं है. नदी के नैसर्गिक बहाव को आस-पास की घूरती चट्‌टानी आँखें भी नहीं रोक पाईं. माल रोड़ पर घूमते हुए 'दो जिस्म एक प्राण' की छटा बिखेरते हुए इस युगल को देखकर अधेड उम्र के लोग सवालिया नज़र से घूरने लगे. दुकानदार शाम की चौपाल में इन दोनों का जिक्र करना न भूलते. चौराहों पर खड़े सिपाही के भी कान खड़े हो गए. बात थानेदार तक पहुँची तो बिना किसी दर्ज़गी के तहकीकात शुरू हो गई.

बसन्त और सुकर्मा इस सब कार्यवाही से अनभिज्ञ अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी जी रहे थे. सुकर्मा का मन स्कूल में लगने लगा था. सब लोग उसकी सरलता को सराहते थे. स्कूल के स्थापना-दिवस पर 'आषाढ़ का एक दिन' का मंचन हो रहा था. उसे कालिदास की प्रेयसी की भूमिका में देखकर तो बसन्त भावविभोर हो गया. उस दिन तो उससे सुकर्मा को चूमने का अपराध सबके सामने हो गया. श्रीमती सलारिया की कठोर आवाज के सामने बसन्त ने स्वीकार किया, "सुकर्मा मेरी पत्नी है."

"आई एम प्रांउड ऑफ यू, मि. बसन्त. भारत में सभी पति अपनी पत्नी को इतने खुले दिल से पढ़ाने को तैयार हो जाएँ, तो भारत का भविष्य बदल जाए." सुकर्मा की पीठ थपथपाते हुए श्रीमती सलारिया कह रही थीं.

बसन्त ने झुककर उनके पैर छुए. सुकर्मा भी झुक गई. दोनों की साँसें एक हो गईं. संकोच से दोनों सिमट गए; जैसेकि आज ही शादी हुई हो उनकी!

वह साँझ उनके जीवन को नए मायने दे गई. बसन्त को कालिदास के 'ऋतु संहार' की याद आ गई. उसने उठकर पुस्तकों के ढेर में से कालिदास ग्रन्थावली ढूँढ़ने की कोशिश की और न मिलने पर बच्चन की 'मधुशाला' निकाली और सुकर्मा के लिए सस्वर पढ़ा :

"तारक मणियों से सज्जित नभ, बन जाए मधु का प्याला,
सीधा करके भर दी जाए, उसमें सागर-जल हाला."

सुकर्मा के लिए दैहिक सुख का नया वातायन खुलने लगा. बसन्त कवि की दृष्टि से प्रेम को समझता है, यह तो उसने आज ही जाना.

"नो वण्डर, यू आर मैजिकल." उसकी छाती के रोयें को कनपटी पर

महसूसते हुए ऑखें बन्द कर लीं सुकर्मा ने. बसन्त धीमे स्वर में पढ़ता रहा :

"जितनी दिल की गहराई हो, उतना गहरा है प्याला;
जितनी मन की मादकता हो, उतनी मादक है हाला."

'भारत में प्रेम को भोगना पाप नहीं है.' सुकर्मा ने पहली बार जाना. उसके मन में बाल-सुलभ जिज्ञासा जागी, "प्यार को पाप क्यों कहते हैं?"

"प्यार पाप नहीं है, मर्यादाहीन व्यवहार पाप है. बिना प्यार के देह को भोगना पाप है. फिर चाहे वह शादीशुदा जोडे का प्यार ही क्यों न हो..." बसन्त ने कहा.

'...और प्यार हो, शादी न हो, तो...?' सुकर्मा का सवाल था.

"प्यार अपने-आप में सत्य एवं शिवत्व का भाव है. वह तो नदी की तरह पावन है सदा. चाहे कोई उसे गंगा की तरह पूजे या न पूजे." बसन्त ने दार्शनिक की तरह समझाते हुए कहा.

सुकर्मा को बसन्त की बात पूरी तरह समझ नहीं आई. वह तो शादी को केवल बच्चों को जन्म देने के लिए किया गया संस्कार मानती है. उसके लिए बच्चों को जन्म देने के लिए देह को भोगना ठीक है; वरना सब पाप है. यही बात पूछने के लिए उसने सिर उठाया, तो देखा, बसन्त सो चुका है. उसने उसका चश्मा उतारकर मेज पर रखा. कम्बल को सीने तक सरकाया और अपनी किताब उठाकर पढना शुरू किया :

"... शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्"

प्यार के दैहिक रूप का इतना सुन्दर चित्रण उसकी कल्पना से परे है. वह हिरणी के नख-शिख वर्णन में अपने को महसूसती रही. कितना भरोसा होगा हिरणी को अपने प्रियतम पर! हिरणी अपनी कोमल ऑख को हिरण के सींग से साफ करवाते हुए भयभीत नहीं है.

आत्ममुग्धा नायिका की तरह सुकर्मा पढती रही... बीच-बीच में उड़ती नज़र से बसन्त को निहारती रही.

ऐन्द्रिक सुख का नया अर्थ मिल गया है उसे. सुबह होते ही उसके होंठ बसन्त की नाभि को गुदगुदा गए. बसन्त की बच्चों जैसी किलकारी से घाटी गूँज गई. अगले ही क्षण सुकर्मा ने अपने अधरों पर उष्णता को जिया. बसन्त ने सुकर्मा की आँख में अपने आपको खोजते हुए कहा :

"मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए."

दुश्यन्त कुमार की क्रान्तिकारी पंक्तियॉ सुकर्मा की समझ से परे थीं.

उस दिन सुकर्मा का स्कूल तो बन्द था. बसन्त ने भी छुट्टी ले ली. दोनों

चाय की चुस्कियाँ लेते रहे दिन-भर. सुकर्मा के चेहरे पर संतृप्ति की नई दीप्ति दिख रही है.

'यह कवि की कविता का करिश्मा है.' बसन्त ने सोचा. जीवन के कलात्मक पक्ष को वर्जनाओं से निषिद्ध क्यों समझा जाता है? उसे याद आया, बैंगलोर में कला-प्रदर्शनी में निर्वस्त्र कलाकृति देखकर उसके सहपाठी अजब जिज्ञासा से भर गए थे. तब बसन्त ने ही कला की सराहना के शब्द कहकर माहौल को सहज बनाया था.

उसके पिता ने बसन्त को यौवन की देहरी पर कदम रखते ही 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' पढ़ने के लिए दिया था. तभी से उसने प्यार के अर्थ को सैद्धान्तिक रूप से समझना शुरू कर दिया. देह उसके लिए पाप की गठरी नहीं, अपितु विधाता की सुन्दरतम संरचना है. यही कारण है कि उसने अपने शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना शुरू कर दिया. बसन्त ने खुराक के साथ व्यायाम की नियमित दिनचर्या में कभी ढील नहीं आने दी. बसन्त ने अपनी सुडौल देह-यष्टि पर उड़ती नजर डाली और सुकर्मा की केशराशि को अपने पेट से हटाते हुए कहा, "साँझ हो रही है, चलो थोडा बाहर घूमकर आते हैं."

"उस छोटी पुलिया पर चलेंगे आज...!" सुकर्मा ने उचककर कहा.

"हूँ... क्या?" बसन्त की आँखें श्वेतवसना सुकर्मा के वक्ष पर टिक गई. निश्चित रूप से, आज सुकर्मा कुछ और तरह की दिख रही है. भरी-भरी-सी गगरी की तरह; यह मन की स्वतन्त्रता का प्रभाव है. बचपन से निषिद्व क्षेत्र में खुलकर प्रवेश करने का मनोभाव; या यूँ कह लीजिए, अपराध-बोध से मुक्त हो जाने का भाव.

अचानक बसन्त को अपनी गलती का एहसास हुआ. उसने ब्याह के पूर्व सुकर्मा से कभी पूछा ही नहीं था कि क्या वह उसे चाहती है ?

उसने अपने माथे से लट हटाते हुए राहत की साँस ली, आज उसे विश्वास हुआ है कि सुकर्मा भी उसे प्यार करती है.

लम्बी साँस लेकर बसन्त ने उसकी टाँग पर पैर का अँगूठा घुमाकर कहा, "ठीक है, चलो, आज वहीं चलते हैं."

सुकर्मा एक झटके से उठी और नहाकर तैयार हो गई.

बसन्त ने उस छोटी पुलिया पर जाने की अनुमति के लिए चौकीदार से बहुत मिन्नत की. चौकीदार ने कहा, "यह पुलिया स्कूल के बच्चों के लिए डाइनिंग हॉल तक जाने का रास्ता है. वहाँ बाहर का कोई व्यक्ति नहीं जा सकता है."

आखिर वे दोनों देवदार के पेड़ों की सरसराहट को सूँघते हुए घर लौट

आए. हवा में ठण्डक बढ़ चुकी है. बसन्त ने फायर-प्लेस में लकड़ियाँ सुलगाईं और सुकर्मा ने चिकन-बिरयानी तैयार की. देर रात तक बसन्त अपनी प्रयोगशाला में काम करता रहा. सुकर्मा बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई सुनते-सुनते सो गई.

सुबह की भागमपेल में दोनों एक-दूसरे को धकियाते हुए दरवाज़े से बाहर निकल रहे थे कि सड़क के छोर पर पुलिस की गाड़ी दिखी. दो व्यक्ति उनके घर की पगडण्डी पर आ रहे हैं. बसन्त ने सोचा, 'अब इन्हें भी अपनी शादी की तस्वीर दिखानी होगी.'

वह घूमकर घर के दरवाजे को बन्द कर रहा था कि पीछे से आवाज़ सुनाई दी, "भाई ! जरा रुको, हम आ रहे हैं."

"बताएँ, मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ? जल्दी कीजिए, मेरी पत्नी का स्कूल जाने का समय हो रहा है." उन दोनों ने स्कर्ट में खड़ी सुकर्मा को घूरकर देखा. सुकर्मा घर के भीतर चली गई.

"दरअसल हमें इस घर के बारे में पूछताछ करनी है. आप यहाँ कब से रह रहे हैं?"

"पिछले आठ महीने से..." कहकर बसन्त ने प्रश्नवाचक नज़रों से उन दोनों को देखा.

"इस घर की वसीयत का झगड़ा है. आपका मैसन साहब के साथ क्या रिश्ता था?" अफसराना अन्दाज में सवाल उछला.

"जीऽऽऽ...? कुछ नहीं, हम तो किराएदार हैं."

"ओह, आई सी." वे दोनों अन्दर आकर बैठ गए. सुकर्मा ने अपना बैग उतारकर कुर्सी पर रखा और स्टोव जलाकर चाय का पानी रख दिया.

वे तो चाय पीकर चले गए और उन दोनों के लिए एक और छुट्टी का बन्दोबस्त कर गए. दोनों खिलखिलाकर हँसे और हाथ पकड़कर नए घर की तलाश में चल दिए.

साँझ ढले वे दोनों 'चार दुकान' में ऑमलेट खा रहे हैं और कॉफी पी रहे हैं. सामने की मेज पर दो अंग्रेज औरतें सब्जी के बढ़ते दाम पर बहस कर रही हैं. उनकी छोटी लड़की हिन्दी फिल्म का गीत गाने की कोशिश कर रही है. सुकर्मा की आँखों में उमगती उत्सुकता को देखकर बसन्त ने बताया, "आजादी के बाद बहुत से अंग्रेज यहीं लाँढौर में बस गए हैं. उनके बच्चे यहीं के स्कूलों में पढ़ते हैं. वे हिन्दी बोलना सीख गए हैं."

सुकर्मा ने अपना सामान्य ज्ञान बढ़ने की खुशी में एक और कॉफी की फरमाइश की. बसन्त ने पास की दुकान से दो फोन किए. घर बदलने में मदद

के लिए फैक्टरी से दो आदमी बुलाए.

नए घर में पँहुचते ही उसने पड़ोस में सुकर्मा का अपनी पत्नी के रूप में परिचय दिया. वह फिर से सवालों के घेरे में घिरना नहीं चाहता है. शादी की बड़ी-सी तस्वीर सामने की दीवार पर टाँग दी.

"बाल्कनी में चिक लगवा लेंगे." बसन्त ने कहा.

सुकर्मा ने 'न' में सिर हिलाया, "नहीं...! सामने का जंगल कितना अच्छा है! ऊँचे पेड़ों के नीचे आदमी का बौनापन! हवा की सरसराती आवाज और मीठी ठण्ड...! ऐसे ही रहने दो न खुला-खुला...!"

बसन्त ने हैरानी से सुकर्मा के बदलाव को पढा. उसके शरीर के खुलेपन के साथ मन के खुलते वातायन की शीतल शान्ति को अपनी आत्मा में उतरने दिया. वह बाल्कनी में रखी आरामकुर्सी पर ऑख बन्द करके बैठ गया. सुकर्मा छोटे मोढ़े पर बैठकर मटर छीलने लगी. मटर के छिलके फेंकने के लिए उठी, प्लेट सन्न करके फर्श पर गिरी; मटर बाल्कनी में बिखर गए.

सुकर्मा प्लेट के टूट जाने से डर गई. ऑखों की कोर से आँसू ढलकने लगे गोरे गालों पर. बसन्त ने प्लेट के टूटे टुकड़ों को एक तरफ रखा और सुकर्मा के आँसू पोंछे. "पगलीऽऽ...!"

सुकर्मा सँभलने की कोशिश कर रही है.

पड़ोस से श्रीमंती वर्मा आ गईं, "क्या हुआ...? क्या टूट गया...? अभी छोटी उम्र है. कोई बात नहीं, बेटा, डॉटो नहीं उसे. धीरे-धीरे सीख जाएगी."

बसन्त हैरानी से उन्हें देख रहा है. उन्होंने सुकर्मा के साथ बैठकर मटर इकट्ठे किए और अधिकारपूर्वक कहा, "आज शाम खाने के लिए हमारे घर आना. रमा का जन्मदिन है."

बसन्त-सुकर्मा के 'हाँ या न' कहने से पहले ही वह चली गई. बसन्त-सुकर्मा की आँखें आपस में मिली, सहज ही हँसी का फव्वारा फूट पडा.

यह ज़िन्दगी भी अजब है...कैसा-कैसा होता रहता है...रोज़ नया-नया सब कुछ. दोनों बाथरूम में एक-दूसरे से पहले जाने के लिए दौड़े और आपस में उलझ गए.

पाँच

"अपने-आपको मिठाई की तरह मत परोसो, रमा!"

सुकर्मा की आवाज़ सुनकर बसन्त ने हैरानी से पर्दा हटाकर देखा.

"दीदी! मै सात्त्विक से प्यार करती हूँ." रमा ने कहा.

"सो तो ठीक है, प्यार का अर्थ देह-प्रदर्शन नहीं है, यह अच्छी तरह समझ लो."

"दीदी! मै क्या करूँ, सात्त्विक तो अपनी किताब में आँख गड़ाए रहता है, या घडी के पुर्जों को घूरता रहता है. मेरी तरफ तो देखता ही नहीं है."

सुकर्मा ने अपनी शॉल रमा के चारों ओर लपेटते हुए कहा, "तुम भीतर चलो."

खिड़की की ओट में खडा बसन्त हड़बडाकर शयनकक्ष में चला गया. दो महिलाओं की बातें छुप-छुपकर सुनना एक बात है, उनका सामना करना दूसरी बात. वह सुकर्मा की वैचारिक परिपक्वता से हैरान है. प्यार के फलसफे पर उसका भाषण जारी रहा, "रमा! यदि सात्त्विक तुम्हारी तरफ देखता भी नहीं है, तो तुम्हारे लिए अपने-आपको सँभालना और भी जरूरी है. यह प्रकृति का नियम है कि नर का मादा की ओर स्वाभाविक आकर्षण होता है. यदि कोई पुरुष किसी स्त्री की ओर आकर्षण से बच रहा है, तो ज़रूर कोई खास कारण होगा. स्त्री का पुरुष के पीछे भागना प्रकृति के मूल नियम के विरुद्ध है."

रमा की सिसकियों की आवाज तेज हो गई. सुकर्मा रसोईघर से पानी का जग लाई. गिलास में पानी उँड़ेलने की आवाज बसन्त को हिला रही थी. वह तो सुकर्मा को हमेशा नासमझ लड़की समझता रहा. इसके विपरीत सुकर्मा बडी-बडी बातें जानती-समझती है.

रमा के रुँधे गले से आवाज आई, "दीदी! मैंने पहल नहीं की थी. उसने ही मुझसे मार्क्स की किताब ली थी, अपनी मुझे दी थी...यह देखो."

सुकर्मा ने किताब को हाथ में पकड़ा. गौर से देखा, उस पर अंकित नाम

को पढ़ा, 'कॉमरेड सात्विक देसाई, मुम्बई.'

"तुम उसके बारे में और क्या जानती हो?"

"कुछ नहीं. अभी तीन महीने पहले ही तो आया है यहाँ. सौदामिनी के बड़े भाई का दोस्त है. उसी ने सामने वाले ऋषिदा के यहाँ नौकरी दिलाई है. उसके हाथों में घड़ी ठीक करने का हुनर है."

"तुमने उसे कैसे जाना?"

"सौदामिनी मेरी दोस्त है, मेरे साथ पढ़ती थी. उसने परिचय कराया था. मैंने भी अपनी घड़ी दे दी उसे ठीक करने के लिए."

"तुम्हारी घड़ी खराब थी क्या?"

"नहीं, दीदी!"

"ओह, अब समझी."

बसन्त हैरान था, कैसे पुलिस की तरह सवाल-जवाब करके सच उगलवा लिया है सुकर्मा ने! उसको शाबाशी देने का जी चाहा. 'सुकर्माऽऽ,' आवाज़ गले में ही घुट कर रह गई. इस समय चुप रहना चाहिए.

'देखें, सुकर्मा अब क्या करेगी?'

सुकर्मा ने रमा को चाय का कप थमाया और प्यार से समझाया, "तुम धीरज धरो, मैं तुम्हारे भाई साहब से कहती हूँ कि सात्विक के बारे में पता लगाएँ."

रमा किसी पुरुष के पास अपना रहस्य पहुँचने के भय से काँप गई.

"नहीं, दीदी! भैया से कुछ नहीं कहना."

बसन्त आईने में खुद को देखकर मुस्करा दिया. पौरुषीय अहम् के चिह्न साफ नज़र आ रहे हैं.

"अरे! हम कौन उनको तुम्हारी बात बता रहे हैं. हम तो अपने तरीके से पूछेंगे."

'अच्छा जी, हमसे चालाकी करेंगी अब?' बसन्त ने अपनी मूँछें छूते हुए सोचा.

रमा को विदा करके सुकर्मा ने अपने लिए दूसरी शॉल निकाली और रसोई में चली गई. बसन्त का धैर्य टूट रहा था. वह भी पीछे-पीछे रसोई में आ गया, "कौन आया था?" जान-बूझकर बसन्त ने पूछा.

"कोई नहीं, रमा थी."

"कुछ खास बात...?"

"नहींऽऽऽ." पीठ घुमाए बिना सुकर्मा ने कहा.

बसन्त ने जाकर उसके जूड़े की पिन निकाल दी. वह जानता है कि इस

बात से सुकर्मा को झुँझलाहट होतीं है. ऐसा करने पर वह हमेशा मुड़कर उसके सीने में दो मुक्के मारती थी और फिर उसके कन्धे पर सिर रख देती थी. आज उसने ऐसा कुछ नहीं किया. उसने नीचे झुककर पिन उठाई और बालों को गाँठ लगाने के लिए बाँहें ऊपर उठाईं.

बसन्त ने गुदगुदी कर दी. हँसी रोकते हुए सुकर्मा ने कहा, "न करोऽऽ जीऽऽ..."

बसन्त इस बदले रुख से हैरान हो गया. उसे रमा पर चिढ़ हो आई. 'मेरी सीधी-सादी सुकर्मा को बदल दिया है रमा की बातों ने.' सोचते-सोचते वह प्रयोगशाला में चला गया.

सुकर्मा के चेहरे पर उधेड़बुन की लकीरें खिंचती रहीं. 'रमा के पिता भारतीय सर्वेक्षण विभाग में अधिकारी हैं और सात्त्विक साधारण घड़ीसाज के यहाँ छोटा-सा नौकर. कैसे हो सकता है यह रिश्ता...? रमा को समझाना होगा.'

सुकर्मा इतनी वर्ग-भेदी है, यह उसे खुद भी नहीं मालूम था. वही बात जाकर उसने बसन्त से कह दी. बसन्त ने तनिक चिढ़कर कहा, "ब्याह दो व्यक्तियों में होता है. पैसे की थैलियों या वर्गीय ठप्पों का क्या फर्क पड़ता है !"

"नहीं, हमारा यह मतलब कतई नहीं है. हम कौन यहाँ जमींदारी कर रहे हैं ?"

"क्याऽऽऽ?" बसन्त सीधे आक्षेप से आहत हो उठा.

"अरे ! हम कौन यहाँ हवेली में रह रहे हैं?"

"आप परेशान हैं क्या...?" बसन्त तिलमिला उठा.

"अरे नहीं ! हम अपनी बात नहीं कर रहे हैं. हम तो कह रहे हैं कि हम भी तो यहाँ परदेस में दो कमरों के मकान में रह रहे हैं. सात्त्विक के छोटे कमरे से उसकी असलियत का अनुमान तो नहीं किया जा सकता है न...? आप जरा पता करें कि वह कौन है? कहाँ से आया है? उसके पिता क्या करते हैं?"

"क्यों, हम क्यों पता करें? हमारी कोई दिलचस्पी नहीं है उसमें."

"ओफ्फो ! हमारी कौन-सी व्यक्तिगत दिलचस्पी है? हम तो रमा की खातिर पूछ रहे हैं. रमा उससे ब्याह करना चाहती है."

"अच्छा, तो बात यहाँ तक बढ़ गई है ! हम दाल-भात में मूसल क्यों बनें ? तुम्हें भी ज्यादा ज़रूरत नहीं है, दूसरों के मामले में नाक घुसाना अच्छी बात नहीं है."

बसन्त के आदेशात्मक स्वर से सुकर्मा तनिक हिल गई. अपने-आपको सँभालते हुए उसने बसन्त का हाथ पकड़ा और प्यार से कहा, "देखो, लड़की ही तो है वह. हमें उसकी मदद करनी चाहिए."

बसन्त ने सवालिया निगाह से देखा.

"आप समझ रहें हैं न ? वह अपनी माँ से तो ऐसी बात कह नहीं सकती है. मुझ पर विश्वास किया है उसने. आप मेरी खातिर सात्त्विक के बारे में जानकारी हासिल करें न!" मिन्नत करते हुए बसन्त के घुटने पर सिर रख दिया.

बसन्त को दया-सी आ गई. सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "ठीक है...वैसे हम जानते हैं उसे. वह मूल रूप से अहमदाबाद का निवासी है. बम्बई में चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट की पढ़ाई शुरू की थी. मन की ऊहापोह में पढ़ाई आधे में छोड़ दी. वहाँ आर्ट कॉलेज में ग्राफिक डिज़ाइनिंग का कोर्स करना शुरू किया. उसके बाबा उससे नाराज़ हो गए, उनको खुश करने के लिए उसने निर्यात का कारोबार सँभाल लिया. कपड़े की मिलें हैं उनकी. खानदानी रईस परिवार में किसी चीज़ की कमी नहीं है. सात्त्विक का ही घर में जी नहीं टिकता."

"क्यों..?" सुकर्मा ने पूछा.

"क्योंकि वह साम्यवादी विचारधारा का हो गया है."

"तो इसमें कौन-सी बुरी बात है? हम सभी को तो मार्क्स की बातें अच्छी लगती हैं."

"सो तो ठीक हैं. हमने भी किताब पढ़ी है. मार्क्स-लेनिन की बातें अच्छी भी लगती हैं हमें. आपस में लाल-सलाम कहने में भी परहेज़ नहीं है. मन के द्वन्द्व से हम सब गुज़रे. अमीरी के सुख भोगना और गरीबों के दिन बदलने की बात करना अपने-आप में कठिन है. बार-बार गिल्ट से घिर जाते हम. अपने-आप से लड़ते हुए बात-बात में अपनों से उलझते रहे. फिर भी, हममें से किसी ने घर नहीं छोड़ा. सात्त्विक ने घर छोड़ दिया है. हमारा मानना है कि घर छोड़ देना क्रान्ति का बिगुल बजाने के लिए ज़रूरी नहीं है."

"सात्त्विक नक्सलवादी है क्या ?" सुकर्मा के सवाल से बसन्त हैरान हो गया.

"तुम यह सब समझती हो?"

"हाँ, मेरे मामा के बेटे लक्ष्मण भैया ने घर छोड़ दिया था. पहले कभी सुभाषचन्द्र बोस की बात करते थे, फिर पक्के नक्सलवादी बन गए थे."

"कहाँ है वह अब? मैंने तो कभी उनका नाम भी नहीं सुना." बसन्त ने

हैरानी से पूछा.

"हाँ, घर में उनका नाम लेने की भी मनाही है. पुलिस आ गई थी पूछताछ करने के लिए... सुना है कि वह अब कलकत्ता में हैं, किसी मंजरी नाम की लड़की से शादी की है. दोनों उधर ही रहते हैं, शायद कालीबाड़ी के पास."

"ठीक है, इस बार कलकत्ता जाऊँगा तो मिलूँगा."

"अरे, नहीं, हमें क्या करना उनसे मिलकर? घर में सब नाराज़ हो जाएँगे."

बसन्त ने सोचा, 'अपने भाई से तो मिलना नहीं चाहती है और सात्त्विक के बारे में जानने के लिए उत्सुक है. खैर, छोड़ो...' सुकर्मा की ओर देखते हुए उसने पूछा, "अच्छा, सात्त्विक के बारे में क्या जानना चाहती हो?"

"कुछ नहीं," सुकर्मा भीतर तक डर गई थी. भलाई करने की सारी मंशा फुर्र हो चुकी थी. बसन्त को अपनी जीत पर मजा-सा आ रहा है.

सुकर्मा बसन्त की तीखी नजरों से बचते हुए बाल्कनी में चली गई. बाल्कनी में फैले कपड़े उठाने के बहाने से उसने सात्त्विक को गौर से देखा. आँख में चश्मा, छोटे कटे हुए बाल, लम्बी अँगुलियों वाले हाथ घड़ी के पुर्जों में घिर्री से घूम रहे हैं. वह उड़ती नज़र से देखते हुए भीतर आ गई. वह बसन्त की ओर देख नहीं रही है, जैसेकि चोरी पकड़े जाने का भय हो.

बसन्त को सुकर्मा का आँखें चुराना अच्छा लग रहा है. उसे छेड़ने के लिए उसने कहा, "देखने में तो अच्छा है सात्त्विक, छः फीट लम्बा, गोरा रंग और मार्क्सवादी विद्वत्ता."

"रहने भी दीजिए आप. रमा को उसकी कद-काठी से प्यार नहीं है. वह उसे पसन्द करती है क्योंकि वह उसकी तरह मार्क्स-लेनिन की किताब पढता है." सुकर्मा ने समझाते हुए कहा.

"अच्छा, तो वह भी नक्सलवादी है या बनना चाहती है?" बसन्त ने पूछा.

"इस एक नक्सलवादी शब्द से चिढ़ है मुझे...सात्त्विक नक्सलवादी नहीं हो सकता है. वह तो रमा को आँख उठाकर देखता भी नहीं है."

"अच्छा जी...! नक्सलवादी लड़की को देखते हैं. तब तो सबसे बड़े नक्सलवादी हम हुए..."

सुकर्मा भय-लज्जा और संकोच से सिमटकर बसन्त की बाँहों में झूल गयी. बसन्त के पौरुषीय दम्भ को तसल्ली मिली. चुम्बन के बौछार से लाल हो गई सुकर्मा. बसन्त ने उस लालिमा को जी भरकर पिया...

छः

अलसाए हुए बदन से सुकर्मा ने आँख खोली. बालों को समेटने के लिए बॉहें ऊपर उठाईं, तो मंगलसूत्र के नीचे से झाँकता हुआ लाल निशान दिखाई दिया. कल फिर स्कूल में लड़कियाँ उसे चिढ़ाएँगी, 'लव बाइट लुक देट्स सो ब्राइट.' सुकर्मा ने अपने सौभाग्य पर इतराते हुए उसे छुआ. सामने आइने में उभरते अक्स से वह खुद ही शरमा गई. वह सपाट पेट पर नाभि से नीचे खिसक गए पेटीकोट को कसते हुए उठी. कालीन पर फैली पीली साड़ी को लपेटते हुए आईने के करीब जा ही रही थी कि दरवाज़े पर खट-खट सुनाई दी. "कौनऽऽऽ?" मीठा स्वर कमरे में गूँज गया. बसन्त ने आँखें खोलीं. सुकर्मा की गोरी पीठ को सराहा और रजाई सिर के ऊपर खींच ली.

"उठो जी, कोई आया है..."

"कितने बजे हैं?"

सुकर्मा ने दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देखते हुए कहा, "छः बज रहे हैं. सूरज ढल चुका है. उठो, अभी सब्जी लेने भी जाना है. इतवार है आज. याद है न?"

"क्याऽऽऽ?"

"आपका वादा... आज आप हमें कोट दिलवाने वाले हैं और सुनहरी चश्मा भी."

'मार्क्सवादी दर्शन की विडम्बना है यह... मार्क्स के आदर्शवादी सिद्धान्त और पहनने-ओढ़ने के लिए खा़लिस पूँजीवादी जमींदाराना अन्दाज.' सोचते-सोचते बसन्त ने मेज से अपना पर्स उठाया, पैसे गिने, कुछ हिसाब लगाया, और उछलकर कहा, "चलो, आज खरीदारी कर ही लेते हैं. तुम भी क्या याद करोगी. अखिर ठाकुर की हवेली की बहुरानी हो तुम..."

सुकर्मा ने रसोईघर के दरवाज़े की ओट से सिर निकालते हुए कहा, "सो तो है, परन्तु दरवाजा तो खोलो, क्या मालूम कोई दीवाली की मिठाई देने आया हो!"

सुकर्मा के दिमाग से तो मार्क्स पूरी तरह गायब हो चुका था. बसन्त को मिठाई-पटाखे कभी भी अच्छे नहीं लगे. उसके लिए दीवाली का अर्थ है, 'माटी के दीयों के साथ लम्बी कतार और मीठे खिलौने खील के साथ.' पिछले बरस इसी बात पर दोनों में लम्बी बहस हुई थी. आखिर जीत सुकर्मा की हुई थी. अनार की कतारों में परी-सी उड़ती रही थी और रात बारह बजे थककर ऐसी सोई कि बसन्त रात-भर उसे हसरत-भरी निगाहों से देखता रहा. हर करवट पर खुलते उसके वक्ष को, कभी गुलाबी पैरों को ढकता रहा. अपने कसमसाते पेट में कॉफी के दो प्याले उँडेलने के बाद सुबह साढ़े चार बजे आँख लगी उसकी.

दरवाज़े पर फिर आहट हुई, "किट, कटा-कट."

बसन्त ने कुर्ता पहनते हुए दरवाज़ा खोला. सामने रमा खड़ी थी. "भैया, आपके लिए फोन है." सुकर्मा अनिष्ट की आशंका से काँप उठी.

"कहाँ से?" पूछते हुए बसन्त रमा के पीछे चला गया.

"देहरादून से."

बसन्त जानता था कि मजदूरों की माँगें बढ़ गई होंगी. सुपरवाइज़र ने घबराकर उसे फोन किया होगा. दीवाली की छुट्टी के लिए मैनेजर लुधियाना गए हैं. बसन्त ने मजदूरों के नेता से बात करनी चाही. उसकी एक ही जिद थी, बसन्त मौके पर पहुँचकर देखे. मज़दूरों के घर में दीवाली नहीं हो रही हो, तो साहब लोग दीवाली कैसे मना सकते हैं?

बसन्त को उनसे सहानुभूति है. प्रबन्धकों के कुछ आपसी मतभेद के कारण उनको तनख्वाह भी नहीं मिली है; जबकि वे लोग बोनस की माँग कर रहे हैं. बसन्त ने वापस आकर जल्दी से कपड़े बदले, पर्स जेब में रखा और कहा, "सुकर्मा! हम दो घण्टे में वापस आते हैं. तुम तब तक रमा के घर में रहना. मैं फोन करूँगा."

पहली बार बसन्त को लगा कि अपने घर में फोन तो होना ही चाहिए. अब उसका मार्क्सवादी आदर्श हवा हो रहा था. उसने दिमाग को झटका दिया. आज उसके आदर्शों के लिए परीक्षा की घड़ी है. वह तो हमेशा ही अपने दोस्तों से कहता रहा है, 'वह भाषण या खोखली परिचर्चा में विश्वास नहीं करता है. वह तो कुछ ऐसा करके दिखाएगा जिससे सिद्धान्त जमीन पर यथार्थ में दिखाई दें.'

'देखें, आज क्या करते हो, बसन्त बाबू?' उसने अपने-आप से कहा और पिछली जेब से पर्स निकालकर आगे की जेब में रख लिया. आज अपनी पूँजी खोने का जोखिम वह नहीं उठा सकता है.

कई दिन बाद उसका सिगरेट पीने को मन कर रहा था. सुकर्मा की खातिर उसने सिगरेट छोड़ दी थी. सिगरेट के धुएँ से सुकर्मा का दम घुटता था. आने वाले बच्चे की खातिर भी सिगरेट छोड़ने में ही भलाई थी. बसन्त वैज्ञानिक है. वह सिगरेट के दोषों को जानता है और सिगरेट पीनेवाले व्यक्ति के साथी पर 'पैसिव स्मोकिंग' से होनेवाले दुष्प्रभाव को भी समझता है. उसे सिगरेट की तलब नियन्त्रण से बाहर हो रही है.

उसने कंडक्टर से बस रोकने को कहा और सोचा, सिगरेट खरीद ले. जैसे ही वह उतरकर पान की दुकान पर पहुँचा, उसने देखा कि सामने वहीदा-देवानन्द का चित्र चिपका है. वहीदा की आँखों में उसे सुकर्मा नज़र आई है. उसे याद आया कि उसने सुकर्मा को सिगरेट न पीने का वचन दिया है. वह सुकर्मा की अनुपस्थिति में सिगरेट कैसे पी सकता है? यह तो चोरी जैसा ही है. सोचकर वह दुकान के पीछे की ओर चला गया. अन्य आदमियों की तरह वह यहाँ-वहाँ पैन्ट की ज़िप नहीं खोलता है. पहाड़ को इस तरह गन्दा करना महापाप समझता है.

बचपन की कोई बात भी उसे डराती रहती है कि पेड़ के नीचे गन्दा करने से भूत चिपक जाएगा. वह अभिनय-सा करता हुआ खाली हाथ और प्यार से भरे सजल नयन लेकर वापस आ गया.

कंडक्टर मानो उसके दिल की बात जान गया हो. वह मुस्कराया. रोज-रोज बस से देहरादून आते-जाते सभी बस-स्टाफ से दोस्ती-सी हो गयी है. "मैं भी सोच रहा था कि साहब तो सिगरेट पीते नहीं हैं." बसन्त कुछ भी नहीं बोला. घनी मूँछों में छुपे उसके होंठ मुस्कराते रहे...

रेडियो में कहीं गीत बज रहा था, 'रिमझिम सितारों का आँगन होगा.'

पहाड़ काले झुटपुट अँधेरे में गुम हो रह थे. दूर तक छिटपुट रोशनी झिलमिला रही थी. बसन्त ने गुनगुनाया, 'जो दिल प्यार करेगा...' उसके पेट में प्यार की कुटर-कुटर हो रही थी. दिमाग में ऊहापोह चल रही थी, 'मज़दूरों को पैसे बाँट दिए तो सुकर्मा का कोट और सुनहरी चश्मा...?'

सात

बस की धीमी गति से बसन्त को ऊब हो रही थी. वही घुमावदार पहाड़ी रास्ते, जो कभी बहुत खूबसूरत लगते थे, आज भारी लग रहें हैं. बहुत इन्तजा़र के बाद लगभग साढ़े आठ बजे बस रुकी.

कंडक्टर ने फैक्टरी के गेट के ठीक सामने बस को रोका है. चार-छः मज़दूर बाहर ही खड़े थे. बाकी लोग गेट के भीतर छोटे-छोटे गुट बनाए हुए थे. सबके माथे पर चिन्ता की लकीरें थीं.

"क्या बात है? चलो, भीतर..."

"साहब ! राकेश, अली और सरदार को पुलिस पकडकर ले गई है." लीडर ने सुगबुगाते हुए कहा.

"क्यों, तुम लोग दंगा कर रहे थे क्या ?"

"नहीं साहब, वे दोनों शाम को चौक में ताश खेल रहे थे. पुलिस ने जुए का जुर्म लगाया है."

बसन्त ने इस अप्रत्याशित बात के लिए अपने-आपको तैयार नहीं किया था. वह गेट के पास रखी चौकीदार की कुर्सी पर बैठ गया. सभी मज़दूर मिन्नत कर रहे थे, "साहब! किसी तरह उन तीनों को जेल से छुडा लो वरना हमारे घर भी दीवाली नहीं होगी."

बसन्त ने घड़ी पर नज़र डाली. क्या करे वह? अपने गाँव की बात होती तो ठाकुर खानदान का नाम ही थानेदार के लिए काफी था, यहाँ परदेस में उसे कौन जानता है! उसके कहने से पुलिस वाले क्यों मानेंगे.? पहली बार उसे अपनी विज्ञान की डिग्री और शोध-उपाधि निरर्थक लगी. सोचते-सोचते वह उठा, "देखते हैं, कुछ तो करेंगे... तुम औरतों-बच्चों को घर भेजो."

बसन्त ने बहुत ही संकोच के साथ सडाना साहब का दरवाज़ा खटखटाया. वह जानता है कि मालिक अपने आराम की खातिर ही तो अधिकारियों को मोटी तनख्वाह देता है. उन्हें शाम के समय, वह भी धनतेरस की शाम को परेशान करना ठीक नहीं है. अन्य कोई रास्ता भी तो नहीं है. सिफारिश के

बिना तीनों मजदूरों को आज ही घर लाना नामुमकिन है.

बसन्त ने दरवाजे के पास लगी घंटी को गौर से देखा और घंटी का बटन दबाया, 'टर्र-टर टर्र-टर.' तीखी आवाज़ से बसन्त चौंक गया. रामबहादुर ने दरवाज़ा खोला. वह सडाना साहब का रसोइया है. बसन्त को पहचानता है. उसने हैरानी से बसन्त को देखा,

"साहब! इस वक्त आप...?"

"जरूरी काम है. रायबहादुर साहब को कहो, हम आए हैं."

"जी," रामबहादुर मुड़ गया. किसी के दरवाज़े पर खड़े होकर इन्तजार करने का पहला मौका बसन्त को भीतर तक भेद गया. पहली बार उसे महसूस हुआ कि वह भी नौकर ही है—रामबहादुर की तरह अदना-सा नौकर. उन दोनों में इस समय वाकई कोई भेद नहीं है. उसके भीतर से मार्क्सवाद का सिद्धान्त कई गुना ज्यादा जोर से उछाल भरने लगा. उसने अपनी हवेली के बड़े दरवाज़े के बाहर जुटी भीड़ को बचपन से देखा है. उनके दिलो-दिमाग पर क्या गुजरता होगा, उसने कभी सोचा ही नहीं था. आज अपने पर बीत रही है, तो खून उबाल मार रहा है. अरब के कालीन और सजे हुए संगमरमर के बुत कला का नमूना नहीं दिखाई दे रहे हैं. इस समय कलाप्रेमी बसन्त को भी यह सज्जा समाज के उजले आवरण पर बदशक्ल पैबन्द लग रही है.

रायबहादुर सडाना ने उसे भीतर बुलाया. भारी मन से वह अन्दर गया. ब्लडीमैरी के गिलास से घूँट भरते हुए कुछ सम्भ्रान्त महिलाएँ गोल मेज़ के चारों ओर बैठकर रम्मी के अंक गिन रही थीं. लाल-नीले नकली सिक्कों का रंग बसन्त की आँख में चुभ गया. 'यहाँ ताश के पत्तों को फटकारना जुआ नहीं है, शौक है. बड़े घर की औरतों का दीवाली मनाने का शाही तरीका है. यहाँ बूट होगा हजार रुपये का, तब भी किसी को आपत्ति नहीं है. वहाँ पच्चीस पैसे के स्टेक पर खेलनेवाले मजदूरों को पेशेवर जुआरी कहकर गिरफ्तार कर लिया गया है. यह तो अन्याय है, सरासर अन्याय.' सोचते-सोचते वह सीढ़ी चढ़कर रायबहादुर सडाना साहब के कमरे में पहुँच गया. वह रज़ाई में बैठकर पाईप पी रहे थे और किताब पढ़ रहे थे. पास ही में एक व्हील चेयर पर उनका अपाहिज़ बच्चा गुटर-गूँ की आवाजें कर रहा है. उन्होंने बसन्त को बैठने का इशारा करके पूछा, "क्या बात है?"

धैर्यपूर्वक पूरी बात सुनने के बाद वह उठे, दो फोन किए और मुस्कराकर कहा, "जाओ, बता दो सबको, दो घंटे तक घर पहुँच जाएँगे वे तीनों."

"जी, धन्यवाद." बसन्त ने आदरपूर्वक उनके पैर छुए, मिलमालिक समझकर नहीं, अपितु अपने पिता जैसे बुजुर्ग व्यक्ति समझकर. उन्होने भी

आशीर्वाद में कमी नहीं की. पाँच हज़ार की गड्डी पकड़ाकर कहा, "जाओ, मजदूरों में बाँट दो, दीवाली है भई...!"

बसन्त के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला. 'सभी मिल-मालिक खराब नहीं होते हैं और सारे मज़दूर अच्छे नहीं होते हैं. दुनिया को हाशियों से वर्गों में बाँटना ठीक है क्या?' बसन्त के दिमाग में नई उलझन ने जन्म ले लिया था.

सुकर्मा ने कुछ देर तक अपने घर की सफाई में समय बिताया. फिर देने के लिए मिठाई सजाई. चौखट और तुलसी पर दीया जलाया. अकेले कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था. हर आहट पर रमा का इन्तज़ार था. उसे पूरी उम्मीद थी कि बसन्त पहुँचकर फोन करके बताएगा. 'फोन क्यों नहीं आया...' सोचते-सोचते वह रमा के घर जाकर बैठ गई. कई बार उसने काले झोंगे को कान पर लगाकर देखा और कहा, "फोन तो ठीक है."

रमा ने कुछ नहीं कहा. वह उठी और दरवाज़े से बाहर देखने लगी. सुकर्मा ने दीवार पर लगी घड़ी के घंटे गिने, "दस."

भीतर से रमा की मम्मी आवाज़ लगा रही थीं, "रमा! ये लो, ज़रा बिरयानी दे आओ सामने सात्त्विक को."

सुकर्मा के कान खड़े हो गए, यानी कि सारे मामले में माँ का सहयोग है. रमा ने कनखियों से सुकर्मा को देखा और सामने वाली खिड़की की ओर मुँह करके ज़ोर से कहा, "माँ! मैं नहीं जाऊँगी. नाहक मुझे डाँट पड़ती है. आप रॉकी को भेज दो."

छोटे भाई रॉकी ने तुनककर कहा, "मैं नहीं जाऊँगा. खुद साहब बनकर बैठे रहते हैं और मुझसे पानी मँगवाते हैं."

"ठीक है, मैं खुद ही दे आती हूँ." प्लेट पकड़े हुए वह बाहर आई. गाल पर लटकी लट को अँगुली पर घुमा कर दुबारा सैट किया. साड़ी के पल्ले को खींचकर कन्धे पर सिमटा दिया और अपने पेट की गोलाई को खुलकर दिखाते हुए सामने के घर की सीढ़ियों की साँकल खटखटाई.

सुकर्मा के गले में एक साथ कई स्वाद भर गए. बिरयानी की खुशबू अच्छी थी, फिर भी कहीं कोई कसैलापन महसूस हो रहा था.

"सुकर्मा दी! देखा आपने...? मेरी माँ भी चाहती हैं कि सात्त्विक मुझसे दोस्ती करे. मेरी मम्मी को सात्त्विक बहुत अच्छा लगता है." कहते-कहते रमा खुद ही सकुचा गई, क्या कह दिया उसने?

सुकर्मा चुप रही. दरअसल उसका ध्यान बसन्त में अटका था. घड़ी की

सुई तेजी से घूम रही है. पहाड़ी रास्ता है. दीवाली का दिन है; सभी लोग अपने नशे में रहते हैं. वह तो घबरा रही थी. मन-ही-मन गायत्री का पाठ करते हुए छत पर चहलकदमी करने लगी. रमा और उसकी माँ के बहुत आग्रह करने पर दो कौर बिरयानी खाकर वह बाल्कनी में जाकर बैठ गई.

दूर तक सड़क खाली थी. घरों की बत्तियाँ बुझने लगी थीं. उसका मन अनचाहे खयालों से घिरा हुआ था. 'हे भगवान! सब कुछ ठीक हो. वह ठीक से घर पहुँच जाएँ, तो पार्वती-शंकर को प्रसाद चढ़ाऊँ...!'

सात्त्विक के कमरे से माउथ-ऑरगन की आवाज़ आ रही थी. 'आवारा हूँ.' की चिरपरिचित धुन भी अच्छी नहीं लग रही है. बेमन से लय में झूमते हुए सुकर्मा बाल्कनी में चक्कर काट रही है. उसके चेहरे पर परेशानी की लकीरें गहरी होती जा रही हैं.

अचानक सात्त्विक की आवाज़ सुनाई दी, "जी, सब ठीक तो है न? आप परेशान नज़र आ रही हैं."

सुकर्मा सकपका गई, "हूँऽऽऽ, दरअसल मैं इनका इन्तज़ार कर रही हूँ." उसने फोन की बात बता दी.

फैक्टरी, दीवाली, मज़दूर, लीडर का फोन, सब कुछ एक ही ओर संकेत है, सात्त्विक ने सोचा, ज़रूर मज़दूरों पर अत्याचार की बात होगी. उसका गर्म लहू उफान पर आ गया है, "कहाँ है यह फैक्टरी? क्या बनता है वहाँ...? कितने मज़दूर काम करते हैं...?"

सुकर्मा के पास इन सवालों के जवाब नहीं हैं. वह शून्य में ताकने लगी. दूर से एक टैक्सी के घरघराने की आवाज़ सुनाई दी. ज़रूर बसन्त ही होगा. सुकर्मा की साँस में साँस आई.

बसन्त ने सात्त्विक को रायबहादुर सडाना की उदारता की कहानी सुनाई तो सात्त्विक खुशी से झूम उठा. वह बसन्त के साथ अन्दर आ गया. उस दिन मेज़ पर पहली बार तीन प्लेट लगीं.

सुकर्मा की गृहस्थी में नये रंग का भरना दोनों को सुखद लगा. सुकर्मा ने गर्म पानी से अपने और बसन्त के पैर सेंके और दोनो एक-दूसरे के लिए सुख की ऊष्मा बन गए.

आठ

चार महीने तो जैसे पंख लगाकर फुर्र हो गए. सुकर्मा अपनी परीक्षा की तैयारी में लगी रही और बसन्त ने फैक्टरी में यार्न की नई मशीनें लगवाईं. उसे पूरी उम्मीद थी कि अब काम की गति दुगुनी हो जाएगी. बैक-लॉग दो माह में खत्म हो जाएगा, इसी उम्मीद में वह ओवरटाइम भी करवा रहा था. सडाना साहब ने उसकी कार्य-कुशलता से खुश होकर उसकी तनख्वाह लगभग दुगुनी कर दी थी.

बसन्त ने सुकर्मा के प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की खुशी में उसे हीरे की नई अँगूठी पहनाई और दोनों शिमला घूमने के लिए निकल पडे.

मसूरी से अलग किस्म का है शिमला, सुकर्मा ने महसूस किया. वहाँ उसे मसूरी की याद सताती रही. 'शिमला बडे शहर जैसा भीड-भरा आधुनिक शहर है. उसमे पहाडी क्षेत्र के गुण तो हैं ही नहीं.' वह बार-बार यही कहती रही.

शिमला मे उसे 'कुछ' अच्छा लगा हो तो वह था, होटल की खिड़की से रोशनियाँ देखते हुए सूफ्ले को मुँह में घुलते हुए महसूस करना.

उस दिन वे दोनों सूफ्ले के नशे में ही जल्दी सो गए थे और रात के किसी पहर में दोनो एक-दूसरे में घुल गए. सुबह बसन्त इस अपराध-बोध से भर गया था कि वह भावावेश में सुरक्षात्मक सावधानी बरतना भूल गया था. सुकर्मा को भी किसी सुखद चिन्ता ने आ घेरा! दोनों एक-दूसरे से तनिक दूर-दूर रहे उस दिन.

बसन्त स्वामी विवेकानन्द के जीवन के बारे में पढ़ता रहा और सुकर्मा नई डायरी में न जाने क्या-क्या लिखती रही. कुछ पन्नों पर तो अजीबोगरीब चित्र थे : कहीं काली माँ के दो लम्बे-लम्बे नयन, कहीं पहाडी के सीने से निकलते झरने की फुहार और कहीं पहाड़ की गुफा के पास आँख बन्द किए पदासन में आसीन संन्यासिनी.

साँझ को दोनों माल रोड पर घूमने के लिए निकले. चर्च के पास जाकर

सीढ़ियों पर बैठ गए. आज सुकर्मा को शिमला अच्छा लग रहा था. कुछ भी हो, शिमला का समृद्ध इतिहास इस शहर को एक खास स्वरूप देता है. यहाँ के निवासी बेशक पर्वतीय वेशभूषा न पहनते हों, उनके घरों का अपना खास अन्दाज है और भरे-भरे गालों पर फैली लालिमा उनके पर्वतीय होने का प्रमाण-पत्र जैसा है. सुकर्मा की सोच भी अद्‌भुत है. वह हरेक व्यक्ति का फिल्मी चरित्र की तरह विश्लेषण करने लगी.

दो बूढ़े व्यक्ति छड़ी के सहारे चलते हुए उसी की ओर आ रहे हैं. उनके पास आने पर सुकर्मा ने देखा कि दोनों को ही छड़ी की ज़रूरत नहीं है. वह तो छड़ी सजावट की चीज की तरह लेकर चल रहे हैं. जितनी महँगी छड़ी होगी हाथ में, उतना ही आभिजात्य झलकेगा. यह आभिजात्य दिखाना भी अजीब बीमारी है. इसी चिन्ता में ये लोग समय से पहले बूढ़े हो जाते होंगे. सुकर्मा मुस्कराई. बसन्त ने घूमकर सवालिया निगाह से उसे देखा.

अकस्मात् खड़ा हो गया बसन्त और भागता हुआ-सा एक युवती के नज़दीक पहुँचकर चिल्लाया, "अरे, रागिनी! यह तुम ही हो न?"

युवती ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया, "हाँ, कॉमरेड! मैं ही हूँ, तुम्हारा पीछा कर रही हूँ पिछले सात जन्म से." रागिनी की एक आँख मुँद-सी गई. सुकर्मा हैरानी से देख रही थी.

बसन्त ने उसे आवाज़ दी, "सुकर्मा, आओ तो इधर, देखो, हमारी पुरानी दोस्त हैं ये." कसैलेपन को निगलकर सुकर्मा ने गला खँखारकर साफ किया, हाथ नमस्ते की मुद्रा में जोड़ दिए.

रागिनी ने आगे बढ़कर दोनों हाथों से उसके हाथ थाम लिए, "हाउ प्रॅटी! यह तुम्हारी पत्नी है क्या? आइ मस्ट से, बसु, यू आर सो लकी."

बसन्त मुस्कराता रहा और तीनों कॉफी-शॉप में जाकर बैठ गए. रागिनी ने बताया कि वह बम्बई से हर तीन महीने में कम-से-कम एक बार चण्डीगढ़ ज़रूर आती है. पंजाब विश्वविद्यालय में उसके गाइड रहते हैं. वह गत वर्ष यहाँ शिफ्ट हो गए हैं.

"अब तुम्हारे शोध का विषय क्या है?" बसन्त ने पूछा.

"इंडस्ट्री में मज़दूरों की सेहत पर रासायनिक दुष्प्रभाव."

बसन्त ने प्रभावित होने की मुद्रा में कहा, "क्या बात है! रागिनी, तुम जो कहती हो, वह करके दिखाती हो. तुम्हारी इसी बात के तो दीवाने हैं हम."

"क्याऽऽऽ, क्याऽऽऽ? किसको हाँक रहे होऽऽऽ? मैं जानती हूँ कि तुमने मुझे कभी घास नहीं डाली..." एक विषाद की रेखा खिंच गई रागिनी के चेहरे पर.

सुकर्मा ने रागिनी की ओर देखा और फिर बसन्त की ओर देखकर पूछा, "आप अपनी प्रयोगशाला में क्या करते हैं? वह भी तो बताओ रागिनी को."

"अरे, मैं...? मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसा उपकरण विकसित हो जो रुई से उड़ने वाले रोयें को अपने भीतर एकत्रित कर ले, ताकि मज़दूरों के फेफड़ों को क्षरण से बचाया जा सके."

सुकर्मा ने हैरानी से देखा, 'इतनी अच्छी सोच...' उसे अपने सौभाग्य पर गुमान हो आया. 'ईश्वर ने कितना अच्छा पति दिया है मुझे... एक अच्छा इन्सान...जिसे अपने से ज्यादा दूसरों की परवाह है.'

"आप कहाँ ठहरी हैं?" सुकर्मा ने बुजुर्ग की तरह रागिनी से पूछा.

"मेरा होटल तो मॉल पर ही है, और आप...?"

"आप हमारे साथ ही चलें, रात का खाना साथ खाएँगे. वहाँ बहुत अच्छा सूफ्ले मिलता है."

बसन्त से पूछे बगैर रागिनी को निमन्त्रण देने से वह स्वयं भी अपने कद को लम्बा महसूस करने लगी. बसन्त ने तनिक संकोच के साथ कहा, "यदि तुम्हें सहूलियत हो, तो सुकर्मा के प्रस्ताव को मान लो."

बसन्त रागिनी के बिन्दास स्वभाव को जानता है. क्या मालूम उसके साथ कोई ब्वाय-फ्रेण्ड हो! मुम्बई के बड़े रईस खानदान की बेटी है. लाल क्रान्ति की कर्मठ कार्यकर्त्ता. कौन जाने कोई कॉमरेड ही हो साथ में !

"हाँ, हाँ, भई, हम तो खाने के निमन्त्रण की खोज में रहते हैं. बड़ा मजा आएगाऽऽऽ. उससे पहले कहीं गोलगप्पे खिलाओ."

बसन्त से ही उसने गोलगप्पे शब्द सीखा था. उनकी भाषा में तो यह शब्द है ही नहीं. उसे यह याद है बसन्त को सड़क पर खड़े होकर चाट खाना, और यह भी कि उसे गोलगप्पे खाना कतई पसन्द नहीं है. उसे बसन्त को चिढ़ाने में हमेशा ही मज़ा आता है. अब तो सुकर्मा उसका साथ देगी.

"सफर में पानी की चीज़ खाना तो ठीक नहीं है, चलो भजिया खा लेते हैं." सुकर्मा ने कहा.

"ओह, ठीक है, आलू-भजिया ही सही. हम तो जन्म से ही भूखे हैं." रागिनी ने झेंप मिटाते हुए कहा.

'भजिया' शब्द रागिनी की कनपटी पर ठक-ठक करता रहा. बसन्त ने भजिया शब्द बैंगलोर में रागिनी से ही सीखा था, जब वह दोनों साथ-साथ रसायन विज्ञान पढ़ रहे थे. सुकर्मा का भजिया कहना अच्छा लगा. बसन्त अतीत को पूरी तरह से भूला नहीं है ; हालाँकि रागिनी के जीवन में भी नया व्यक्ति आ चुका है, जो नाराज़ होकर न जाने कहाँ गुम हो गया है. दरअसल

रागिनी उसी की तलाश में पहाड़ों पर घूमती है. वह नाराज़ होकर हमेशा एक ही बात कहता था, 'मैं पहाड़ पर चला जाऊँगा.'

"आप क्या सोच रही हैं? भजिया खाएँ न! चाय ठण्डी हो रही है." सुकर्मा ने कहा.

तीनों कुटर-कुटर भजिया खाते रहे और अपने-अपने टापू के समुद्र में गोते लगाते रहे. घड़ी ने नौ बजे के घंटे बजाये, तो तीनों चौंककर उठे. रागिनी को छोड़ते हुए सुकर्मा-बसन्त अपने होटल में आ गए. बसन्त तनिक और संजीदा हो गया था. सुकर्मा की कुछ ज्यादा परवाह भी कर रहा था. उसके कन्धे से लटकती शॉल को ऊपर उठाया तो हाथ उसकी कमर से छू गया, "अरे, आपने स्वेटर नहीं पहना?"

"नहीं, मैंने सोचा नहीं था कि इतनी देर हो जाएगी."

"फिर भी, पहाड़ी शहर है, गर्म कपड़ा तो ठीक से पहनना ही चाहिए." बसन्त सामने स्वेटर की दुकान में चला गया. गुलाबी रंग का स्वेटर सुकर्मा को पहनाकर बेहद खुश हुआ. उसे न जाने कैसे सुकर्मा के पेट में तनिक नयापन दिखा. होटल पहुँचते ही उसने उसकी नाभि को हाथ से, फिर होंठों से छुआ. सुकर्मा उस अप्रत्याशित स्पर्श से कूद उठी.

बसन्त ने उसे बाँहों में लेकर ऊपर उठाया और सुकर्मा ने भयभीत होकर टाँगों से उसकी कमर को कस लिया. उसकी इसी बालसुलभ चंचलता और सहजता ने बसन्त को अपनी गिरफ्त में लिया है. बसन्त ने अपने महकते प्यार से उसे खिलते गुलाब की रंगत दी है. पलों में ही गुलाबी स्वेटर ज़मीन पर था और गुलाबी काया पर इन्द्रधनुषी रंग उग आए थे. बसन्त ने उसकी पीठ पर ऑलिव ऑयल की मालिश की. "ठण्ड से बचने के लिए तेल की परत बदन पर ज़रूर रहनी चाहिए." पुरुखों की तरह ताकीद की उसने.

पैर के तलवे पर तेल लगाते हुए वह पागल-सा हो गया. चमकते गुलाबी अँगूठे...दाँतों की ज़कड़न से हिल गई सुकर्मा. उसने उठकर बसन्त के बालों में हाथ घुमाया. बसन्त ने मुँह के आगे आते उसके घने बालों को हटाया, तो मानो रूपराशि की सौदामिनी कौंधी हो. बसन्त ने आँखें मूँद लीं और अपने पर झुकी सुकर्मा के कोमल अधरों के स्पर्श को अपनी पीठ के पास गर्दन पर जिया. आँखों की पलकों पर वक्ष की छुअन और नाक में गुलाब के इत्र की महक...

'प्यार और क्या है रे...!'

नौ

दरवाजे पर हुई आहट से बसन्त की आँख खुली. वह सुकर्मा के पैरों को रजाई से ढककर उठा और बाहर से बेड-टी की ट्रे पकडने के लिए दरवाजा खोला.

दरवाजा अभी ठीक से बन्द भी नहीं हुआ था कि दुबारा खट-खट हुई. उसने सोचा, 'अखबार आया होगा.'

देखकर भौंचक रह गया वह. सामने रागिनी खड़ी थी. "मैं सुबह की सैर के लिए निकली थी, सोचा, चाय तुम्हारे साथ पी जाए." बसन्त सकपका गया. अपनी ओर देखा, मुड़कर जल्दी से कुर्ता पहना और दरवाजा उढकाकर बाहर निकल आया. लाउंज में रागिनी को बैठने को कहा. रिसेप्शनिस्ट से चाय भेज़ने के लिए निवेदन किया.

"ठण्ड लग रही है. मैं जरा शॉल लेकर आता हूँ."

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह कमरे की ओर लपका. सुकर्मा खाली आँख से छत देख रही थी. तुम गर्म कपडे पहनकर लाउंज में आ जाओ. रागिनी आई है, तीनों साथ-साथ चाय पीयेंगे.

"जीऽऽऽ"

सुकर्मा ने आने में अपना समय लिया. तब तक एक दौर चाय का हो चुका था. वेटर जब दूसरी बार चाय लाया तो चोर आँख से सुकर्मा को देख रहा था. सुकर्मा सहज रूप से मुस्करा रही थी. उसने आगे बढकर तीन कप चाय बनाने का उपक्रम किया.

"आप कितनी चीनी लेंगी?"

"मैं चीनी नहीं पीती हूँ."

सुकर्मा ने चम्मच प्लेट में यथास्थान रख दिया और चाय का कप उसकी ओर बढ़ा दिया.

बैठे-बैठे जाखू जाने का प्रोग्राम बन गया. सुकर्मा का मन्दिरों के प्रति अतिरिक्त मोह देखकर बसन्त द्वारा यह तय किया गया कि वे लोग किसी

मन्दिर में नहीं जाएँगे. बसन्त ने सुकर्मा से वादा किया था कि अगली बार सब मन्दिरों के दर्शन के लिए विशेष रूप से आएँगे. रागिनी के आने से यह सुखद परिवर्तन सुकर्मा को बहुत अच्छा लगा. वह खुशी से उछलते हुए कमरे में पहुँची, बाल धोकर नहाई और महकती-सी बाहर आई.

रागिनी उसके उजले रूप से तनिक सकुचा गई. धनाढ्य परिवार की अकेली लड़की को अपने कपड़े देखकर पहली बार शर्म आई. उसने साम्यवादी होने के नाते ढीले-ढाले कुर्ते और चूड़ीदार पाजामी पहनने का सिलसिला शुरू कर दिया था. कई दिन बाद उसका जी चाहा कि वह गुजराती स्टाइल में सीधे पल्ले की साड़ी पहने. अपने मन की मालिक है वह, सिद्ध कर दिया उसने. आधे घंटे में वह राजस्थानी इम्पोरियम से बैकलैस ब्लाउज और लहँगा-चुनरी लेकर आ गई. सुकर्मा के कमरे में ही उसने कपड़े बदले और चौड़े-चौड़े डग भरते हुए बसन्त के सामने आ खड़ी हुई.

बसन्त खिलखिलाकर हँसने लगा. रागिनी उसे अजीब-सी दिख रही थी. उस दिन सुकर्मा और रागिनी महिला-संगीत करती रहीं. कभी गुजराती गाना और कभी कजरी और कभी 'दिल अपना और प्रीत परायी' जैसे फिल्मी गीत. आखिर में बसन्त ने अपनी एक कविता को तरन्नुम में पेश किया :

"उड़ते बादलों के संग
कोई पाखी नील गगन को
छूने चला रे."

रागिनी को 'एकला चलो रे' याद आने लगा.

सच में, कोई अकेला, निपट अकेला रह सकता है क्या? वह स्वयं भी अकेले रहने का स्वाँग करती रहती है. वास्तव में वह अकेली है क्या?

रागिनी को घर की याद में रोना आ गया. और वह तो सुकर्मा की गोद में सिर रखकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी. बसन्त उन दोनों को छोड़कर मन्दिर के पुजारीजी से बातें कर रहा था. वह हनुमानजी की भक्ति-भावना पर लम्बा भाषण बेमन से सुनता रहा. कई बार मन में उद्वेलन चलता रहता है. शिशुकाल से ही घर में नियमित होनेवाली पूजा-आरती के संस्कार और मार्क्सवाद की सपाट जीवन-शैली में विरोधाभास है. बसन्त ने अपने को किसी भी हाशिए के भीतर कैद नहीं होने दिया. इसीलिए प्यार के उद्वेग को भी अबाध रूप से जी सका वह.

वह जानता है कि उसे जीवन से क्या अपेक्षा है. उसने कभी जीवन के यथार्थ को उपेक्षित भी नहीं किया. उसे मन्दिर जाने में परहेज़ भी नहीं था. तब भी नहीं, जब वह रागिनी के साथ झोला लटकाकर गली-गली घूमता था.

मक्सिम गोर्की की 'माँ' को शिद्दत से महसूस किया है उसने. मुम्बई प्रवास के दिनों में 'इप्टा' के मंच से जुड़ाव रहा है उसका. वह परिवर्तन के लिए नाटक-कविता को तलवार-बन्दूक से भी ज्यादा प्रभावशाली माध्यम मानता है.

कहीं कुछ भीतर है, जो अनसुलझा है. वह नहीं जानता है, जमींदार का बेटा होने के नाते वह अपने-आप से नफरत क्यों करे? अपने सुख-दु:ख के सम्बल परमात्मा का अपमान क्यों करे?

कभी-कभी उसे सुकर्मा पर ज्यादा प्यार आता है, क्योंकि सुकर्मा की सोच सरल रेखा की भाँति है. उसमें अनावश्यक गुत्थियाँ नहीं हैं. वह मन्दिर में आस्था से दीया-बाती करती है और दिन-त्यौहार पर सड़क पर झाड़ू लगानेवाले या पीठ पर बोझा ढोनेवाले को अपने हाथ से बनाकर भरपेट भोजन खिलाती है, 'इसमें ख़ास बात क्या है? हमारी दादी-नानी ने हमेशा घर के नौकर-चाकर, उनके बच्चों को हर होली-दीवाली पर कपड़ा दिया है.'

बस, इसी बात से बसन्त कुलबुला उठता, 'इन बातों में एक तरफ बड़प्पन की बदबू है और दूसरी ओर बेचारगी पर दया. ईश्वर ने हरेक को स्वाभिमान से जीने का हक क्यों नहीं दिया? कुछ लोग दूसरे की दया पर निर्भर रहने के लिए मज़बूर क्यों हैं?'

वह इस धरती से भिक्षावृत्ति को समूल समाप्त कर देने के संकल्प को दोहराता. चौराहे पर भिखारियों को काम करने के लिए छोटा-सा भाषण दे देता. कभी-कभी उसी टोन में, अपनी फैक्टरी के मजदूरों को समझाता, 'अपनी काबिलियत का प्रमाण दो. कामचोरी पाप है.'

घर आकर सोचता कि 'काम के अनुपात में वेतन न देना भी तो पाप है.' क्या, सच में, फैक्टरी घाटे में जा रही है या मज़दूरों की तनख्वाह को न बढ़ाने के इरादे से घाटा दिखाया जा रहा है?—इन सवालों की आवृत्तियों से घिरा बसन्त कुछ फूल तोड़ लाया. उसके मन में इच्छा थी कि सुकर्मा के जूड़े के लिए वेणी बनाए. बड़े जूड़े के इर्द-गिर्द वेणी उसके पतले चेहरे और तीखे नैन-नक्श को और पैनापन देगी. रागिनी की उपस्थिति ने उसे रोक दिया. उसने फूलों को सुकर्मा के आँचल में बाँध दिया.

वापस पहुँचने तक सूरज ढल चुका था. रागिनी की जिद के कारण तीनों ने खाना उसी के होटल में खाया.

अगली सुबह बसन्त-सुकर्मा ने जिद करके रागिनी का सामान अपनी टैक्सी में रखवा लिया. यह तय हुआ कि रागिनी वापसी फ्लाइट दिल्ली से पकड़ेगी, चण्डीगढ़ से नहीं.

बसन्त ड्राइवर के साथ आगे बैठ गया और पिछली सीट पर सुकर्मा-रागिनी एक-दूसरे के कन्धे पर ऊँघती रहीं. पौन्टा साहब में सुकर्मा की ज़िद थी कि वह उस स्थान को प्रणाम करना चाहती है जहाँ गुरु गोविन्दसिंह काव्यपाठ करते थे.

गुरु के आदेश से शान्त हुई यमुना में अपना अक्स ढूँढ़ते हुए वे तीनों वहाँ बैठे रहे चुपचाप. "नीरवता का संगीत कितना सुखदायी है!" रागिनी ने कहा. बसन्त ने सुकर्मा का हाथ दबाकर हामी भरी.

यमुना की नहर के तट पर कच्ची-पक्की सड़क पर टैक्सी दौड़ रही है. सुकर्मा रागिनी को अपने गाँव के बारे में बता रही है. रागिनी के लिए खेतों में दौड़ना, आम के पेड़ पर चढ़ जाना कहानी की किताब की कोरी कल्पना जैसा था. वह विस्फारित नयन से कभी सुकर्मा की चंचलता को और कभी डूबते सूरज के बदलते रंगों को देख रही है.

बसन्त ने अपनी किताब बन्द कर दी. अब वह बीच-बीच में अपनी टिप्पणी दे रहा है : मुँह घुमाकर पीछे मुड़कर देखना और ड्राइवर को चेतावनी देना. 'धीरे चलो' कहना तबले की ताल की आवृति जैसा प्रतीत हो रहा था.

सुकर्मा ने रागिनी के आग्रह पर भजन गाना शुरू किया:

"अब सौंप दिया इस जीवन का
सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में
और हार तुम्हारे हाथों में."

उसके चुप होते ही रागिनी की आवाज़ गूँजने लगी :

"ऐ लो मैं हारी पिया..."

बसन्त ने दोनों की जिद के आगे घुटने टेक दिए और अपनी कविता को सस्वर गाया :

"आओ, मिल कर नव गीत गाएँ,
अपनी जीत के बिगुल बजाएँ...
कोई अछूत नहीं, सभी समान
गरीब का न करे कोई अपमान
आओ, छुकछुक रेल बनाएँ
एक-दूजे के संग बढ़ते जाएँ..."

रात के धुँधलके में रागिनी का मन मसूरी की पहाड़ियों को देखकर बल्लियों उछलने लगा.

"सच में, पहाड़ों की रानी है, तुम्हारी मसूरी, बसु."

"हाँ, दोयम दर्जे की किसी चीज़ को चुनना मेरी फितरत नहीं है." रागिनी के चेहरे का रंग फीका पड़ गया. कहीं भीतर बसन्त के द्वारा बरसों पहले दिए गए इनकार की पीड़ा है. सात्त्विक के बिन बताए अचानक चले जाने का विषाद है. अकेलेपन की गहराती लकीरें साँझ के धुँधलके को और अधिक बढ़ा रही हैं.

सुकर्मा स्थिति की नाजुकता को भाँप चुकी है. वह तुरन्त बोली, "बस, मुझे छोड़कर..."

बसन्त ने पीछे मुड़कर आँख मारी उसे और सुकर्मा को पत्नी के रूप में पाकर गर्व से रीढ़ की हड्डी को और लम्बा महसूस किया, "क्यों नहीं, तुम्हारे जैसा कोई होता तो तुलना करते. तुम तो एक हो, बस, एक..."

"तुम्हें तो बसन्त जैसा मूर्तिकार मिला है. उसने गढ़कर, तराशकर जो रूप निखारा है, वह वाकई अनन्य है; तुम न देवी हो, न दासी, भारत की आदर्श नारी हो..." रागिनी ने लयात्मक स्वर में कहा.

सुकर्मा लाज से सिन्दूरी हो गई. रोम-रोम में बसन्त की छुअन से भरी वह तरंग-तरंग डोल उठी. समुद्र की फेनिल लहरों का ओर-छोर कौन जान सकता है? प्यार के जादू का रहस्य तो समुद्र से भी गहरा है...

दस

आधी रात के सन्नाटे को चीरते हुए टैक्सी बसन्त के घर के आगे रुकी. सात्त्विक के सिवा अन्य सभी सो चुके थे. वह तीन छलाँग में सीढ़ी पार करके उनके स्वागत के लिए आ पहुँचा. बसन्त ने हाथ मिलाया. दोनों डिक्की की ओर चले गए, टैक्सीवाले सरदारजी सामान उतारकर बरामदे में रख रहे हैं. फैन्सी-सा नीला-लाल बैग देखकर सात्त्विक चौंका. कुछ पहचाना-सा है यह रंग.

"आपने तो शिमला में बड़ी खरीदारी कर ली है." बढ़े हुए सामान की ओर इशारा करते हुए सात्त्विक ने कहा.

"जी हाँ, ये तो एक साबुत लड़की ही खरीद लाए हैं." चिरपरिचित स्वर की गूँज से खिंचा चला आया सात्त्विक.

"सात्त्विकSSS, तुम...यहाँ ?" रागिनी चिल्लाकर उसके कन्धे पर झूल गई. "आइ डोन्ट बिलीव इट. यू ब्रूट, यू कुडन्ट केयर टू कॉल मी अप बिफोर लीविंग यूSSS." और सिसकियाँ उठ आईं कहीं पेट की दूह से.

बसन्त हैरान था. उसने रागिनी को हमेशा 'आधा पागल' या 'सनकी' कहा था. "यह तो पूरी पागल है." बसन्त के मुँह से निकल गया. मोहल्ले की कई खिड़कियों के पर्दे हिल रहे थे. रमा और रमा की माँ तो बाहर ही आ गईं.

बसन्त इस फिल्मी दृश्य से झेंप गया. सुकर्मा ने रागिनी को हाथ पकड़कर अन्दर खींच लिया. माँ की तरह सीने से लगाकर सिर पर हाथ घुमाया, "इन आदमियों के सामने रोकर क्यों अपने-आपको हलका कर रही हो ! मजबूती से चट्टान बन जाओ और सिर पटककर पिघलने दो इन्हें. तुम मुड़कर न देखो, तो पीछे दौड़ेंगे तुम्हारे. घुटने टेकें, तब 'हाँ' करना. यही प्रकृति का नियम है."

बसन्त ने हैरानी से सुकर्मा को देखा. 'गाँव के सादे परिवेश में पली-बढ़ी यह लड़की स्त्री-पुरुष के गहरे रहस्यों को बखूबी जानती है.'

कोई आश्चर्य नहीं कि पिछले चार साल से बसन्त उसके इर्द-गर्द लट्टू-

सा घूमता है. अजब प्यास है यह : जितना पिओ, प्यास बढ़ती ही जाती है.

"यह प्रकृति अपने सारे नियम तुम्हारे कान में कह गई है और जादूगरनी बना गई है तुम्हें," बसन्त ने कहा. रमा के अतिरिक्त सभी खिलखिलाकर हँस दिए.

रमा की माँ ने रमा को आदेश दिया, "जाओ, चाय का पानी रखो, मैं अभी आती हूँ." वह जानना चाहती थी कि यह कौन लड़की है जो बसन्त-सुकर्मा के साथ है ? सात्त्विक कैसे जानता है इसे ? कैसे बेशर्मी में उसकी बाँह पकड़कर लटक गई बीच सड़क में! पूछना बेकार था. उसके सवालों का जवाब देने की फुर्सत किसे थी !

सात्त्विक ठीक रागिनी के सामने आकर बैठ गया था, "तुम्हें बसन्त ने बताया था क्या ?"

"नहीं तो, वह मुझे कैसे बताते...? उन्हे क्या मालूम कि तुम्हारे जैसे खुदगर्ज आदमी से मेरी दोस्ती है."

"अच्छा, मैं खुदगर्ज सही, तुम तो समझदार हो. नौकरानी के जन्मदिन मनाने से फुर्सत कैसे मिली मेमसाहब को, जो यहाँ चली आईं...?"

"तो, याद तो सब कुछ है जनाब को... मेरे फोन नम्बर के सिवा..."

"हाँ, हाँ, याद क्यों नहीं होगा... देखो सुकर्मा ! उस दिन हमने सोचा कि चलो, आज देवीजी के आगे घुटने टेककर शादी का प्रस्ताव रख ही देते हैं. हमने फैन्सी-सी बोतल खरीदी शैम्पेन की और शौक से पहुँचे रागिनी के आलीशान बँगले पर. वहाँ पार्टी चालू थी..." सब साँस रोककर बैठे रहे. सात्त्विक चुप हो गया. सबने सोचा, रागिनी की सगाई की पार्टी होगी.

"हाँ, पार्टी तो हो रही थी, वह कौन-सी मेरी सगाई की पार्टी थी !" रागिनी ने चिढ़ाकर कहा.

"वही होता तो हमें सुकून तो मिल जाता. यू नो... बसन्त ! पार्टी चल ही रही थी और ब्रोकेड की चोली पहनकर रागिनी अतिथि-सत्कार में संलग्न थीं. उनकी माँ खाना पका रही थीं."

रमा की माँ ने कहा, "तो ठीक ही तो था..."

"जी हाँ, सब कुछ ठीक था. नौकरानी देबू का जन्मदिन मनाया जा रहा था. उसके दोस्त-रिश्तेदार टैरेस में छाए हुए थे और..."

"तो क्या हुआ, यार ?"

सात्त्विक तिलमिला गया, "तुमको सब ठीक लग रहा है तो... मैंने रागिनी को जब शैम्पेन की बोतल दी, तो जानते हो, क्या बोली वह... आज देबू का जन्मदिन है, उसी को दे दो. मेरा जी चाहा कि हीरे की अँगूठी भी उसी को

पहना दूँ." सिर पकड़कर बैठ गया सात्त्विक.

"सात्त्विक, यू नेवर टोल्ड मी दैट." रागिनी उसके पैरों के पास आकर बैठ गई थी. पत्थर-सा सात्त्विक बैठा रहा. रागिनी उसके घुटने को दबाती रही.

रमा ने चाय की ट्रे के साथ प्रवेश किया. सुकर्मा ने सबको चाय पीने का आग्रह किया. रागिनी ने एक कप लिया और उठकर अपनी जगह पर आ गई. सात्त्विक ने चाय का घूँट पिया. अढ़ाई बरस बाद उसने चाय पी थी. रागिनी को छोड़ने के बाद उसने चाय पीनी भी छोड़ दी थी.

चाय का शौकीन था. कलकत्ता से आते समय आधा बैग विभिन्न प्रकार की चाय से भरा होता था. रागिनी उस चाय को हवा-बन्द डिब्बों में बन्द करके रखती थी. सब कुछ मालूम था उसे सात्त्विक के बारे में. सात्त्विक के दादा स्वतन्त्रता-सेनानी थे, माँ नामी समाजसेविका हैं. सात्त्विक को क्रान्ति के बीज अपने मामा से विरासत में मिले हैं. कभी-कभी सात्त्विक अपने बाबा के चाय के बगीचे में हरियाली सूँघने कलकत्ता की तरफ जाता है. वहाँ का काम-काज सँभालना उसे नहीं भाता है. मिलों में मजदूरों से काम करवाना भी उसे अच्छा नहीं लगता था. उसके लिए बम्बई में एक्सपोर्ट हाउस खोला गया था. वह शौकिया मॉडलिंग करने लगा था. कभी-कभी अखबारों में कुछ लिखता था. रागिनी को उसके रहन-सहन और विचार में तालमेल नज़र नहीं आता था. 'वह उसे क्यों पसन्द करती है?' यह वह नहीं जानती थी. यह बात सच थी कि वह सात्त्विक के साथ-साथ रहना चाहती थी. इस साथ के खातिर उसने एक-दो मॉडलिंग् एसाइनमेन्ट भी लिए थे. फिर अपने पापा की टोका-टाकी सुनी थी, 'कहाँ कैमिस्ट्री और कहाँ मॉडलिंग, बेटा ! कुछ करना है तो आगे शोध करो.'

सात्त्विक उस पार्टी के दिन से अचानक गायब हो गया था. रागिनी ने बहुत ढूँढा, कलकत्ता फोन किए ; जब कुछ पता नहीं चला तो शादी के प्रसंग को टालने के लिए चण्डीगढ़ में शोध शुरू कर दिया. इस बहाने उत्तर भारत में आने का, पहाड़ में घूमने का मौका मिल गया था.

"आखिर पहाड़ पर ढूँढ़ ही लिया न मैंने तुम्हें?" रागिनी की जीत का उद्‌घोष सुनकर सात्त्विक ने चश्मे के कोने से देखा और मुस्करा दिया. सब की साँस में साँस आई. रमा की माँ ने कप इकट्‌ठे करके रमा को दिए और दोनों चुपचाप अपने घर की ओर चली गईं. रागिनी ने कपड़े बदले और सात्त्विक के साथ सड़क पर चहल-कदमी करने लगी.

बसन्त ने बिस्तर लगाए, सुकर्मा ने नहाकर भोर का दीया जलाया. गुलाब की खुशबू वाली अगरबत्ती से घर महक गया. बसन्त ने सिर के नीचे दोनों

हाथ रखे और बल्लियों से जड़ी स्लेट की छत को टकटकी लगाकर देखने लगा.

जीवन का खेल भी अजीब है और उससे भी ज्यादा अजीब है औरत. कभी बैंगलोर में यही रागिनी उसकी खातिर नींद की गोलियाँ खाकर जान देने की धमकी दे रही थी; आज उसी के सामने सात्त्विक के लिए सिसक रही है. दोनों में एक बात तो झूठी होगी ही न? क्या है प्यार...?

सुकर्मा ने मुस्कराते हुए कमरे में प्रवेश किया.

बिन बोले बसन्त ने क्या-क्या कह दिया. उसकी आँखों में देखते हुए सुकर्मा उसके ऊपर औंधी लेट गई थी. दोनों नींद में थे या नशे में...? कौन जाने...!

रागिनी ने लौटकर पर्दे की ओट से झाँका. बाहर तखत पर रखी रजाई में पैर घुसाकर डायरी में कुछ लिखना शुरू किया.

आँख झपके बिना ही सवेरा हो गया है. उजली धूप से घर-आँगन सजा है. रागिनी ने दरवाजे से बाहर देखा, सात्त्विक अपने घर के सामने सीढ़ी पर बैठा था. वह कपडे बदलकर बाहर निकली और दोनों सुबह की सैर के लिए चले गए. सुकर्मा चाय लेकर आई तो देखा, रागिनी का बिस्तर खाली है. उसने सोचा, पहले बिस्तर झाड दूँ. यही बैठने का कमरा है. शायद रमा की माँ आ जाएँ या सात्त्विक...' रजाई उठाते ही डायरी जमीन पर गिरी, सुकर्मा ने डायरी उठाई, तो दो लिफाफे जमीन पर आ गिरे.

वह फिर झुकी और एक लिफाफे पर 'बसन्त' का नाम देखकर चौंक गई. पास रखी चौकी पर बैठकर उसने दूसरा लिफाफा देखा : 'सात्त्विक'. बालसुलभ उत्सुकतावश वह दोनों ही पत्र पढना चाहती थी. लेकिन 'दूसरे का खत पढ़ना बहुत बुरी बात है, सबसे बड़ा पाप.'

उसने दोनों खत डायरी में रख दिए और रजाई की तह लगाकर शयन-कक्ष में रखने के लिए चली गई. बसन्त अभी भी सो रहा है. उसका जी चाहा, वह बसन्त को जगाए और दोनों मिलकर पत्र पढ़ें; जैसे वह 'ऋतुसंहार' पढ़ते हैं, जैसे उन्होंने 'लेडी चटर्लीज़ लवर' पढ़ा था एक साथ. सोचकर उसके पेट में कुछ हलचल-सी हुई. अजीब घबराहट-सी. वह हड़बड़ी में उठी, 'बाद में पढूँगी,' यह सोचकर बसन्त के नामवाला खत स्टडी-टेबल की दराज़ में रख दिया और बाथरूम की ओर चली गई.

बसन्त रोज़ की तरह उठा, रुटीन काम किया और बाल्कनी में आरामकुर्सी पर चाय के साथ अखबार पढ़ने लगा. उसे तो शायद याद भी नहीं रहा कि उनके घर में रागिनी नाम की मेहमान है. सुकर्मा मेहमान के लिए विशेष नाश्ता

बनाने में जुट गई. 'आलू के परौंठे और दही ठीक रहेगा,' यही सोचा था उसने. इतने दिन तक घर बन्द रहने के बाद यही संभव भी था. घर में कुछ और सब्जी नहीं थी. पहला परौंठा बेलते हुए सुकर्मा को याद आया कि दही भी तो नहीं है. वह बाहर आई और बसन्त से डरते-डरते बोली, "आप दही ले आएँगे क्या?"

"क्यों, कल साँझ आते हुए रास्ते से ब्रेड तो ली थी, मक्खन भी रखवाया था मैंने."

"हाँ, सो तो है. मैंने सोचा, मेहमान के लिए आलू के परौंठे बना दूँ."

"ओह! रागिनी की खातिरदारी हो रही है. वह कोई मेहमान नहीं है. चार साल बैंगलोर के हॉस्टल में हमने ब्रेड-मक्खन ही खाया है, अण्डे उबाल लो साथ में. उसे अण्डे का शौक है."

चुपचाप वापस आकर सुकर्मा ने आलू के मसाले को ढककर रख दिया. ट्रे से चार अण्डे लेकर उबलने के लिए रख दिए और टोस्टर की सफाई करने लगी.

'ऊई' की आवाज़ से चौंककर बसन्त भीतर आया तो देखा, टोस्टर के टिन से सुकर्मा का हाथ कट गया है. वह भागकर डिटॉल-रुई लाया और प्यार से उसके सिर को सहलाता रहा...खून बहना बन्द हो गया था. दर्द से सुकर्मा असहज थी.

'इतनी-सी चोट से सुकर्मा ऐसे पीली पड़ गई है, प्रसव-वेदना कैसे सहेगी?' बसन्त सोच रहा था. न जाने क्यों उसे पूर्वाभास हो रहा था कि कोई नया प्राणी उनके जीवन में आने ही वाला है. इसीलिए वह सुकर्मा का ज़रूरत से कुछ ज्यादा ध्यान रख रहा था. सुकर्मा समझ रही थी, 'शायद रागिनी के आने के कारण बसन्त मेरा और अधिक ध्यान रख रहा है '

सुकर्मा को कुछ भी खटका नहीं है, ऐसा नहीं है. फिर भी, उसे अपने दाम्पत्य में दरार आने का कोई खतरा महसूस नहीं हुआ. दाम्पत्य की यही खूबसूरती है : बड़ी नदी के सामने छोटी चट्टानें खुद-ब-खुद अस्तित्वहीन हो जाती हैं, नदी छलाँगें मारकर उन्हें पार कर लेती है. छोटी-छोटी नदियाँ तो खुद ही आकर बड़ी नदी में समाहित हो जाती हैं और अपना नाम खोकर उसी महानदी का नाम ग्रहण कर लेती हैं.

प्यार की आधारशिला पर टिका सम्बन्ध मजबूत होता है. पुरुष स्वयं जिसे चाहता है, प्यार करता है, उसके साथ वह संवेदना के स्तर पर जुड़ जाता है. यह रिश्ता दैहिक भोग से कहीं आगे है. तब दाम्पत्य का आधार महज़ देह रहता भी नहीं है. देह जुड़ाव की महत्वपूर्ण सीढ़ी हो सकती है,

मंज़िल कभी नहीं. देह का आकर्षण जब शिद्दत से महसूस हो, तो समझिए, वह स्थायी तभी होगा, जब देह के परे मन में भी जुड़ाव हो, आत्मा को खोजने का प्रयास हो, दूसरे के माध्यम से खुद को जानने का एहसास हो, फिर देह न रहे तो भी सम्बन्ध शाश्वत है. ऐसा ऐन्द्रिक सुख भी पवित्र हो जाता है.

साधारणतः लोग प्यार की इस गहराई को नहीं समझते. वह तो शारीरिक मज्जा के त्याज्य पाप के भँवर से निकल ही नहीं सकते हैं. वे लोग स्पर्श ही की बात से कुलबुलाकर धर्म और दानवी दुनिया की दुहाई देने लगते हैं. अपने घर के आईने तोड़कर दूसरे को कठघरे में खड़ा करने के लिए काँच के घर सजाते हैं, पत्थर उठाते हैं, और दूसरों के सीने पर दागते हैं.

बसन्त के मन में विचारों की लड़ियाँ जुड़ रही थी : 'प्यार पावन है, उसे दूषित करने का हक किसी को नहीं है. शर्तों पर जिन्दगी को जीना लम्बी कैद है. आत्मा का ऊर्ध्वमुखी उन्नयन इस कसी-बँधी जिन्दगी में कैसे होगा?'

बसन्त ने अपने उत्तरीय के भीतर सुकर्मा को समेट लिया. प्रेम के उत्कर्ष की सीमा पर चुम्बन भी छोटा हो जाता है. मौन ही सम्प्रेषण का माध्यम है : बन्द आँखें और भीतर से कूजित संगीत !

ग्यारह

लड़ते-लड़ते चलते रहे वे दोनों, या यूँ कह लीजिए कि चलते-चलते लडते रहे. सात्त्विक को परेशानी है कि रागिनी ने उसे कभी जानने की कोशिश ही नहीं की तो वह प्यार क्या करेगी. रागिनी का कहना है कि सात्त्विक अपने ज्ञान के घमण्ड में इस तरह डूबा है कि उसके आस-पास किसी दूसरे के लिए जगह नहीं है. कोई पास खड़ा भी नहीं हो सकता है, तो जाने कैसे?

बहस का कभी कोई ओर-छोर नहीं होता है. लान्डौर के सन्नाटे में आवाज़ें जंगल को चीर रही थी. बाज़ार से होते हुए वे नीचे आ गए और 'कैमल्स बैक रोड' की गोलाई पर जाकर बैठ गए. उनकी गर्मा-गर्म बहस से तो कब्रिस्तान में नीचे दबे मृत लोगों की नींद भी उचट गई होगी. सात्त्विक अकसर वहाँ जाकर पत्थर पर खुदे अक्षरों को पढता है. उसे वहॉ के हर शब्द में जीवन महसूस होता है. उसने रागिनी से पूछा, "तुम नीचे चलोगी क्या ?"

रागिनी ने भयभीत आँख से उसे देखा. वह सात्त्विक से डरी हुई थी या मृतात्माओं से, खुदा- जाने. सात्त्विक को हँसी आ गई.

"अच्छा, छोड़ो, चलो चलकर चाय पीते हैं और उबला अण्डा खाते हैं." रागिनी की भंगिमा में तनिक परिवर्तन आया. खाने-पीने की बात सुनकर मुस्कराई वह. हमेशा की तरह सात्त्विक को मच्छी-भात या मोमो या उबले अण्डे मिल जाएँ, तो कुछ भी करवा लो उससे.

चायवाले ने काँच के धारीदार गिलासों में मीठी चाय पकड़ा दी. रागिनी के ठण्डे हाथों को चाय की गर्मी बहुत अच्छी लगी. अण्डे का टुकड़ा मुँह मे घुल गया, तो उसे सूफ्ले की बात याद आ गई. उसने सात्त्विक को बताया, "सुकर्मा-बसन्त उसे सूफ्ले खिलाने के लिए पाँच किलोमीटर पैदल ले गए और सूफ्ले का ऑर्डर देना भूल ही गए. गर्म कॉफी पिलाकर बाय-बाय हो गई."

सात्त्विक हँसने लगा. रागिनी की बातें उसे बेवकूफी-भरी लगती हैं, "तुम अमीर लोग आइसक्रीम और मिठाई के चक्कर लगाते-लगाते थकते नहीं हो और गरीब आदमी मिठाई के सपने देखते-देखते. दोनों में कुछ खास फर्क नहीं

है. मिठाई को ज़िन्दगी का अहम् मुद्दा बनाकर जीना काफी आसान है."

रागिनी को नहीं सूझ रहा था कि क्या कहे. कुछ भी कहने की ख़ातिर उसने जवाब दिया, "चलो, ठीक है न! तुम भारतीयों की मिठाई ने मार्क्स का सपना पूरा कर दिया. इस एक बिन्दु पर तो वर्गरहित समाज बन ही सकता है न!"

सात्त्विक शून्य में ताकने लगा, 'मार्क्स का खूबसूरत ख्वाब : वर्गरहित एवं राज्यरहित समाज! यह मूर्ख बिगड़ैल रईस गुजराती लड़की क्या समझेगी ?' सोचकर कहा उसने, "तुम डाँडिया खेलते रहो रात भर, सोना पहनकर इतराते रहो, वर्ग-भेद मिटाने से तुम्हारा क्या सरोकार ?"

रागिनी भीतर तक आहत हो गई, 'यह सात्त्विक अपने-आपको समझता क्या है ? मार्क्स ने जैसे सिर्फ इसी के लिए कोई बपौती छोड़ी है! हर युवा का सपना है मार्क्स. अमीर हो या गरीब; कम से कम जवानी में तो सभी एक-सा सोचते हैं. अमीरी-गरीबी के नकली हाशिए मिटाने का प्रण लेते हैं. मेरे अधिकांश साथी अमीर हैं, परन्तु मजदूर-आन्दोलन के साथ खुलकर खड़े हैं. सात्त्विक को क्या मालूम, मैंने भी पार्टी की सक्रिय सदस्यता ले ली है!' रागिनी ने सोचा, सात्त्विक को बता दे, लेकिन फिर स्वाभिमान आड़े आ गया, 'क्यों, सफाई क्यों दूँ मैं?'

सात्त्विक ने और चाय का ऑर्डर देकर रागिनी से पूछा, "तुम...? वॉट एबाउट यू...?"

"नथिंग आई एम ज़ीरो."

"मैं और चाय के लिए पूछ रहा हूँ, सर्दी में चाय अच्छी लगती है."

"हाँऽऽऽ और चाय...? चाय तो और लूँगी मैं." कहते-कहते उठकर वह सड़क के उस पार चली गई, दूर तक फैली हरियाली में दौड़ लगाने का मन किया. चाय का गिलास पत्थर पर रखकर थोड़ा नीचे उतर गई वह.

"अरे, क्या कर रही हो ? इन पहाड़ी रास्तों का कोई पता नहीं है, गिर जाओगी तोऽ..."

रागिनी ने गर्दन घुमाकर उसे चिढाना चाहा, लेकिन सच में उसका पैर फिसल गया. सात्त्विक ने भागकर थामा उसे. दोनों के हाथ-पैर मिट्टी से रँग गए. दो तिब्बती युवक भी पास आकर खड़े हो गए. रागनी को उनसे बू आ रही थी.

उसने अपने पैरों की ओर देखा. पैर में लगी मिट्टी को धोना चाहती थी वह. छोटा लड़का बदरंग लोटे में भरकर पानी ले आया. ठण्डे पानी से नानी याद आ गई. वह वापस दुकान में आकर बैठ गई.

उसे सात्त्विक का मन्द-मन्द मुस्कराना अच्छा लग रहा है. माहौल जरा सामान्य हो गया है. दोनों के बीच दूरी तनिक कम हो गई है. सात्त्विक से चाय का गिलास पकड़ते हुए उसके बलिष्ठ हाथ की छुअन अच्छी लगी. ठण्ड के कारण या मन की चाह के कारण वह तनिक सात्त्विक की ओर खिसक गई. 'जिस्म की गर्मी का सुख कुछ और ही होता है.'

सात्त्विक ने कोई प्रतिक्रिया शब्दों में नहीं व्यक्त की. उसकी साँस का दायरा कुछ बढ़ गया. पसलियों के फैलाव का घेरा रागिनी के स्पर्श को उतावला बना गया जैसे. रागिनी ने खाली गिलास देने के लिए हाथ बढ़ाया, तो सात्त्विक ने गिलास लेकर मेज़ पर रखा और दोनों हाथों से उसका हाथ पकड़ लिया. रागिनी ने दूसरा हाथ भी दे दिया और आँखें मूँदकर कहा, "आइ'म सॉरी, मुझे अपनी गलतियों पर खेद है."

"फॉरगेट पास्ट, लेट अस स्टार्ट नाउ." सात्त्विक ने हाथों को होंठों से छुआ और दोनों वापस सड़क पर आ गए.

मौन चलते रहे, एक दूसरे के साथ सटकर. धूप को घूँट-घूँट पीना कैसा लगता है ? तृप्ति के नाम पर और अतृप्त हो जाना अच्छा है, वरना कोई कल के सूरज का इन्तज़ार क्यों करे.

लगभग ग्यारह बजे घर पहुँचकर दोनों ने एक स्वर में ऐलान कर दिया, "हम दोनों कल शादी कर रहे हैं."

बसन्त-सुकर्मा के 'लेकिन-परन्तु' अपनी जगह अटके रहे और दोनों ने आर्य समाज में सात फ़ेरों की रस्म पूरी कर ली. सात्त्विक के पिता की भूमिका घड़ीवाले ऋषिदा ने निभाई. बसन्त-सुकर्मा ने कन्या-दान किया. रमा की मम्मी ने सबके लिए खाने का बन्दोबस्त किया.

साँझ को दोनों 'हैकमन्स' होटल में रहने के लिए चले गए. जाते-जाते सुकर्मा ने अपनी डायरी साथ ले ली. उसने सात्त्विक को अगली सुबह अपना पुराना लिखा खत दे दिया. सात्त्विक खत पढ़कर हँसता रहा. वह खत जिस सीढ़ी चढ़ने का उपक्रम था, उसे तो वे दोनों लाँघ चुके थे, अब कोई फिर से कैसे शुरू करे?

रागिनी ने कितनी मेहनत से सोच-सोचकर लिखा था वह सब और जो घटित होना था, वह तो हो गया। बस, हो गया यूँ ही—बिना सोचे, बिना लिखे, बिना किसी माफीनामे के, बिना योजना के.

प्यार के नाम का कोई पैमाना नहीं बना है आज तक. प्यार के नाम पर उसूलों या नियमों की बात करनेवाले या तो खुद बेवकूफ हैं या दूसरों को बेवकूफ बना रहे हैं. प्यार तो सहज-सुन्दर निर्झर है—नैसर्गिक एवं निष्पाप!

बारह

गुदगुदाती सर्दी में सात्त्विक करवटें ले रहा था. नींद का कहीं कोई ओर-छोर नहीं था. कुछ भी पढ़ने में मन नहीं लग रहा था. रागिनी शादी के दो दिन बाद ही चली गई थी. उसे पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में बर्लिन जाना था. वह यहाँ से दिल्ली, दिल्ली से मुम्बई गई थी. वहीं से आज रात वह बर्लिन के लिए उड़ान लेगी.

न चाहते हुए भी सात्त्विक बेचैन था. उसके पेट में अजब कसमसाहट हो रही थी. वह उठा, दो गिलास पानी पिया और मेज़ पर रखे रागिनी के खत को दुबारा पढ़ा :

'प्रिय सात्त्विक,

मैं नहीं जानती हूँ कि प्यार क्या है, इसलिए यह दावा कभी नहीं कर सकती हूँ कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ. इतना ही कह सकती हूँ कि देबू के जन्मदिन पर तुम्हारे रूठकर चले जाने के बाद जीवन में घिर आए अँधेरे से बाहर निकलना मेरे लिए कठिन था. क्या-क्या यत्न नहीं किया मैंने? अपने-आपको सँभालने के लिए शोध शुरू कर दिया. उत्तर भारत आने का बहाना ढूँढ़ने के लिए रजिस्ट्रेशन चण्डीगढ़ में करवाया. एक के बाद एक पहाड़ी जगह देखी. जब मैं निराश-सी हो रही थी, तो आज तुम मिल गए हो.

अब मैं और जोखिम नहीं उठा सकती हूँ. मैं तुम्हें खोना नहीं चाहती हूँ. तुम मुझसे शादी कर लो, मैं देबू का जन्मदिन फिर कभी नहीं मनाऊँगी. मेरे पास उस दिन के व्यवहार का यही एक जवाब है कि मैं और मेरी माँ सिर्फ एक दिन देबू के लिए खाना बनाते हैं, उसके मित्रों-सम्बन्धियों को खुद खाना खिलाते हैं, बाकी तीन सौ चौंसठ दिन वह हमें और हमारे लोगों के लिए खाना पकाती है, जूठा माँजती है.

वर्ग-भेद क्या है? मैं सच में नहीं जानती हूँ. मैं धनी वाणिज्य परिवार की इकलौती बिगड़ी सन्तान हूँ, तुम सही कहते हो. फिर भी, मैं लोगों को छोटा नहीं समझती हूँ. उनके दुःख-दर्द को समझना चाहती हूँ. यकीन जानो, देबू

को एक दिन बड़प्पन दे देने से मेरे मन से अमीर होने का अपराधबोध कुछ कम हो जाता है. नौकर के बिना मुझे जीना नहीं आता है, यह भी सच है.

विसंगति से भरे जीवन में तुम कोई रास्ता निकालो, तो मैं तुम्हारे साथ हूँ. मुझसे शादी कर लो...

तुम्हारी

रागिनी'

यह खत रागिनी ने सात्त्विक को शादी के बाद दिया था. उस समय उसने इस खत को गौर से पढ़ा नहीं था. शादी के बाद 'शादी कर लो' के विरोधाभास से हँसता रहा वह. आज यह खत उसके भावी जीवन की इबारत पर हँस रहा था.

रागिनी ने पार्टी की सदस्यता क्यों ली? वह नहीं जानता है. आज वह अपने सब संगी-साथियों से दूर बैठा है. मज़दूरी करने के एहसास को जीना चाहता था. इस छोटे से शहर में वर्ग-भेद का एहसास उसे नहीं हुआ था. सच्चाई यह भी थी कि मज़दूरी करने से भी उसके व्यक्तित्त्व से आभिजात्य धुला नहीं था.

रागिनी को रमा की माँ ने साफ कहा था, "हम तो देखते ही समझ गए थे कि यह लड़का पेशेवर घड़ीसाज नहीं है. हमने सात्त्विक को हमेशा लॉन्ड्री के धुले, इस्तरी किए कपड़ों में ही देखा. कपड़ों का स्टाइल कीमती है, रहन-सहन का तरीका शाही है."

"माँ कहती थी कि किसी दिन इस लड़के के माता-पिता गाड़ी में इसे लेने के लिए आएँगे, हमें क्या पता था, कोई लड़की आएगी." रमा ने निर्विकार भाव से कहा था.

रमा की माँ की भृकुटि तन गई थी. उसने आँख के इशारे से रमा को भीतर भेज दिया था. रमा पर्दे की ओट में सुबकने लगी थी. सुकर्मा इस अधेड़ स्त्री की चालाकी देखकर हैरान थी यानी कि वही रमा की सात्त्विक के साथ शादी करने की योजना बना रही थी. उसने सोचा कि कौन जाने तथाकथित लव मैरीज में से अधिकांश माता-पिता द्वारा चालाकी से जोड़ा गया रिश्ता हो! सुना तो है उसने, लोग पारिवारिक नहीं अपितु व्यापारिक सम्बन्धों को मज़बूत करने के लिए शादी-ब्याह के रिश्ते जोड़ते हैं. 'तो क्या, राजघरानों में भी तो ऐसा होता था.'

सुकर्मा अपनी सोच पर खुद ही झुँझला गई थी. सात्त्विक-रागिनी की शादी की बात भी उसकी समझ से परे थी. रागिनी ने सात्त्विक को देखकर इतना उछाह दिखाया कि तुरन्त शादी कर ली. फिर दो दिन में ही उसे अकेला

उसके हाल पर छोड़कर बर्लिन चली गई. 'बर्लिन गृहस्थी से ज्यादा महत्त्वपूर्ण कैसे हो सकता है?' सुकर्मा समझ नहीं सकी.

सच बात तो यह थी कि सात्त्विक भी नहीं समझ सका था कि रागिनी का बर्लिन जाना इतना ज़रूरी था तो हड़बड़ी में शादी क्यों की ? कभी उसे लगता था कि रागिनी जानती थी कि उसको बर्लिन जाना है, इसीलिए उसने शादी की जल्दी मचाई.

कुछ भी हो, शादी हो गई थी. रागिनी बर्लिन जा चुकी थी. अब सात्त्विक को फैसला करना था, आगे वह क्या करे ?

आखिर माँ-बाप को बताना तो होगा कि उसने शादी कर ली है. वह हर हफ्ते फोन करके माँ की कुशल-क्षेम तो पूछता था. पिछले दस दिन से उसने माँ को फोन नहीं किया था. झूठ वह बोल नहीं सकता है और इतने बड़े सच को छुपाने की उसमें हिम्मत नहीं है.

'कल साँझ बसन्त से सलाह करूँगा,' यह सोचकर उसने रज़ाई में मुँह दुबका लिया. 'मधुराष्टक' पढ़ते-पढ़ते नींद कब आई, मालूम ही नहीं हुआ.

अगले दिन वह बसन्त के इन्तज़ार में सुकर्मा के पास बैठा रहा. बसन्त को आने में बहुत ही देर हो गई. वह रात को लगभग नौ बजे वापस पहुँचा– थका हुआ और उदास.

सात्त्विक को देखते ही बोला, "अच्छा हुआ सात्त्विक, तुम यहाँ बैठे हो वरना आते ही आवाज़ लगाता तो अच्छा नहीं लगता..."

"क्योंऽऽऽ ?" सुकर्मा के सवाल को नज़र अन्दाज़ कर दिया बसन्त ने.

"आप गर्म-गर्म चाय पिलाइए और जो कुछ भी है, खाने को दीजिए. सुबह से कुछ भी नहीं खाया है."

"सात्त्विक ! आज फैक्टरी में मज़दूरों ने हड़ताल कर दी है. मुझे नहीं समझ आ रहा है कि मार्केट में अपनी गुडविल कैसे बनाए रखूँ. ऊन के ढ़ेर लगे हैं गोदाम में। एक दिन काम रुकने का मतलब है–एक कमरा और भर जाएगा ढेर से. जगह-जगह से सिफारिशी फोन आ रहे हैं कि उनका यार्न पहले करवा दिया जाए. सर्दी सिर पर आ धमकी है और मज़दूर हैं कि सुन ही नहीं रहे. उनका यूनियन नेता उपाध्याय तो सुनने की बजाय बोलता ज्यादा है. उसी ने भड़काया है सबको..."

बसन्त के बदले हुए स्वर देखकर सात्त्विक हैरान था, "उनकी माँग क्या है?"

"इतना लम्बा खर्रा है, एक सौ नौ बिन्दु. मैंने सब नहीं पढ़े. पढ़ता भी तो कौन याद रहनेवाले थे. इस समय तो काम रोकना जायज़ नहीं है. गुडविल खराब हो गई, तो फैक्टरी बन्द हो जाएगी. पड़े रहेंगे फिर काम के

बगैर, भूखे...वैसे भी इतनी दूर गाँठें भेजने में सबको ट्रान्सपोर्टेशन का अतिरिक्त व्यय सहना पड़ता है. वह तो सडाना साहब अमृतसर के हैं, हमारे जनरल मैनेजर लुधियाना के हैं, तो लिहाज से काम मिलता है..."

सात्त्विक स्तब्ध था यह सब सुनकर. रागिनी ने उसे बताया था कि बसन्त कॉलेज यूनियन का अध्यक्ष रहा है. छात्र-छात्राओं के साथ मज़दूरों की बस्ती में जाकर हाइजीन और हेल्थ केयर का कैम्प करता था. मिल-मालिकों से लड़ाई करके मेडिकल फण्ड बनवाया था इन जवान छात्र-छात्राओं ने. आज वह मज़दूरों का माँगपत्र भी नहीं पढ़ना चाहता है.

"बसन्त ! हमें मज़दूरों के साथ सख्ती से नहीं, नरमी से पेश आना चाहिए. उनकी मुश्किलें हल करने की कोशिश करनी चाहिए."

बसन्त सन्नाटा खा गया, 'यह मुझे क्या हो गया है? मैं इतना बेरहम कैसे हुआ जा रहा हूँ?' उसने जाकर ठण्डे पानी के छींटे मारे सर-आँखों पर. वापस आकर चुपचाप बैठ गया.

तीनों ने पसरते सन्नाटे के साथ चाय पी. सुकर्मा बर्तन उठाकर रसोई में चली गई. बसन्त-सात्त्विक सड़क पर चहल-कदमी करते हुए चर्च तक चले गए. वहीं सीढ़ियों में ठिठुरते हुए बसन्त ने फैसला किया कि वह इस्तीफा दे देगा.

सात्त्विक ने समझाया, "पहले दूसरी नौकरी ढूँढ लो. तुम्हारे साथ तुम्हारी पत्नी है, कल को बच्चा भी आ सकता है."

बसन्त ने एक न सुनी. सुकर्मा को बताए बगैर त्यागपत्र दिया और सरकारी फैक्टरी में आवेदन दे दिया. दो दिन बाद नियुक्ति-पत्र सुकर्मा के सामने रख दिया, "लो, अब तुम सरकारी बन्दे की पत्नी हो."

सुकर्मा हैरान थी कि उसको कुछ बताने की ज़रूरत नहीं समझी गयी. इस बात से आहत भी थी. फिर भी उसने समझदारी से कहा, "हम तो उसी हाल में खुश हैं, जिसमें तुम रखो."

स्वर में झलकती विवशता बसन्त को अच्छी नहीं लगी.

सात्त्विक को इस नए उपक्रम की जानकारी मिली, तो उसे भी चेत हुआ. 'यदि रागिनी को अपने साथ रखना है तो उसे भी कुछ करना होगा. पिता से छुपकर माँ के द्वारा भेजे गए पैसे से उसका खुद का खर्च तो चल जाता है, गृहस्थी का काम तो नहीं चलेगा.'

अगले दिन सुबह वह बसन्त के साथ देहरादून चला गया. वहाँ से किसी तरह आरक्षण करवाकर साँझ दोनों साथ ही लौटे.

पहाड़ के सीने से निकलते चूने का अम्बार सात्त्विक को अच्छा लगा. फिर भी कहीं एक शूल-सा अटका रहा, 'प्राकृतिक स्रोतों का दोहन आदमी

कैसे और क्यों करे? सरकारी उपक्रम हो, तो भी सही-गलत का एक पैमाना भी तो है. प्राकृतिक न्याय की नज़र से यह ठीक है क्या?'

बसन्त ने इन सब बातों पर इस नज़रिए से गौर नहीं किया था. वह वैज्ञानिक है, उसका दृष्टिकोण पूर्णरूप से तार्किक है कि प्रकृति तो चक्र की आवृत्ति में चलती है. अपने ज़ख्म भरना प्रकृति का मूल स्वभाव है.

सात्त्विक का तर्क था कि प्रकृति अपनी आवृत्तियों को बखूबी संतुलित कर सकती है. आदमी जब कृत्रिम उपकरणों से उसका सीना छलनी कर देगा, तो प्रकृति का प्रकोप आदमी को सहना पड़ेगा.

बसन्त ने सात्त्विक के तर्कों को दरकिनार करते हुए कहा, "हम कौन हैं कल की चिन्ता करने वाले? ईश्वर जो करता है, ठीक ही करता है." सुकर्मा का वाक्य दोहरा दिया उसने.

सात्त्विक के बम्बई जाने के बाद बसन्त-सुकर्मा के जीवन में एक सूनापन घिर आया. सुकर्मा बी.ए. की पढ़ाई में तल्लीन थी और बसन्त शाम को अपनी प्रयोगशाला में नये प्रयोग करने में व्यस्त.

एक दिन बसन्त की अनुपस्थिति में सुकर्मा को चक्कर आ गए. रमा की माँ उसे पास ही लेडी डॉक्टर के पास ले गई. रमा की माँ का सन्देह विश्वास में बदल गया. सुकर्मा गर्भवती थी.

बसन्त न खुश हुआ, न दुःखी. सहज भाव से सुकर्मा के माथे को चूमा और कन्धे पर हाथ रखकर भीतर ले गया, "सुकर्मा ! इस नई जिम्मेदारी के लिए तैयार हैं न आप? बच्चा पैदा करना आसान है, उसे पालना, स्वस्थ नागरिक बनाना जिम्मेदारी का काम है. आप समझती हैं न?"

सुकर्मा की आँख से आँसू की लड़ी बह चली, "हम अकेली ही क्यों उठाएँगे यह सब जिम्मेदारी ? आप हैं न ? आपको ही सँभालना होगा."

बसन्त को मानो प्यार उँड़ेलने का मन किया. उसने सुकर्मा के सहज भोलेपन पर अपने-आपको न्यौछावर कर दिया. खुद आयरन-कैल्शियम खिलाने से लेकर सुबह-शाम सैर के लिए ले जाना, समय पर भोजन, फल- दूध देना शुरू कर दिया. सुकर्मा की माँ ने भी शायद उसका इतना ध्यान न रखा होता !

बसन्त द्वारा सुकर्मा की सेवा-शुश्रूषा से मोहल्ले की स्त्रियों को ईर्ष्या होने लगी. रमा तो जैसे नर्स ही बन गई थी और बसन्त डॉक्टर. अपने बसन्त भैया की एक बात भी ज़मीन पर नहीं गिरने दी. सुकर्मा का अध्ययन-क्रम जारी रहा और समय पर बिना सर्जरी के एक कन्या-रत्न की मुस्कानों से घर-मुहल्ला खिल गया.

देखते-देखते बसन्त की वत्सला घुटनों चलने लगी. जिस दिन सुकर्मा

का बी.ए. फाइनल का परिणाम आया, उस दिन तो वत्सला दौड़ती घूम रही थी, 'मेरी मम्मी फर्स्ट आई है.'

बसन्त के तो पैर ज़मीं पर नहीं थे. उसने गाँव जाने का फैसला किया. मामा ने वत्सला को नहीं देखा था. वह स्टेशन पर सबसे ज्यादा उतावले होकर भाग रहे थे. घोड़ा-बग्घी में बैठकर वत्सला तो हवा से बातें कर रही थी. बसन्त ने उसे सिखा दिया था, 'नानी, तेरी मोरनी को मोर ले गए...

घर-गाँव में उत्सव-सा हो गया. पिताजी तो लड्डुओं के टोकरे बाँट रहे थे, माँ ने सुकर्मा के लिए पकवानों का ढेर लगा दिया. 'इकलौता पुत्र बसन्त अपनी सन्तान के साथ घर आया है, यह कोई छोटी बात तो नहीं है न!'

सुबह से शाम तक आने-जानेवालों का ताँता लगा था. सबकी जुबान पर यह भी चर्चा थी कि बहू ने बी.ए. पास किया है. बसन्त की तारीफें करते-करते जुबानें अघाती नहीं थीं.

सुकर्मा के भाग्य से किसको रश्क न होता...? इतना प्यार हर औरत के नसीब में तो नहीं होता न! बसन्त की आँख सुकर्मा के चारों ओर रहती. रात को रेशम की साड़ी में सोते हुए देखकर तो घर की औरतें दंग रह गईं. आसपास के गाँव के लोग भी इस अजूबे युगल को देखने आए. शादी के बाद बी.ए. पास करनेवाली स्त्री कोई झाँसी की रानी से कम तो नहीं है न!

बसन्त भरी-भरी मूँछों में मुस्कराता रहा. अपनी सुकर्मा की उपलब्धि से उसका सीना चौड़ा होता रहा. सुकर्मा के माथे पर चमकते सिन्दूर को छूकर उसने कसम खाई, "ताउम्र ऐसे ही प्यार करूँगा तुम्हें."

"बूढ़ी हो जाँऊगी, तब भी...?"

"हाँ, क्यों, बूढ़ी होकर तुम मेरी पत्नी नहीं रहोगी क्या ?"

"कैसी बात करते हैं...?" सुकर्मा शरमाकर भाग गई.

बसन्त की माँ ने मन-ही-मन आशीष दी और वत्सला को अपने हाथ का बुना स्वेटर पहनाया. अँगीठी पर रखे गाजर के हलवे को बसन्त की माँ ने जब कड़छी से हिलाया तो वत्सला ने पूछा, "दादी, यह क्या है ?"

दादी ने हैरानी से उसकी ओर देखा और सुकर्मा से पूछा, "तुम गाजर का हलवा नहीं बनाती हो क्या ?"

बसन्त ने पीछे से जवाब दिया, "माँ, तुम भी कमाल करती हो. मसूरी में इतना अच्छा गाजर का हलवा मिलता है 'लक्ष्मी मिष्ठान्न' पर. तुम आओगी तो तुम्हें भी खिलाएँगे."

इन सब बातों से बेफिक्र वत्सला इतराकर चलती-फिरती रही घर-आँगन में फिरकी की तरह... ।

तेरह

अपने घर की सोंधी खुशबुओं को समेटे हुए बसन्त सपरिवार वापस आ गया. सुकर्मा जिद कर रही थी, "अब तो बी.ए. पास हो गई हूँ. एम.ए. वहीं से हो सकती है तो क्यों न देहरादून में ही घर ले लें. रोज़ इतने सफर का जोखिम क्यों उठाएँ ?"

बसन्त ने पहली बार ऐसी बात सुकर्मा से सुनी. वह नहीं जानता था कि उसके घर लौटने तक सुकर्मा गायत्री का जप करती रहती है. उसके लिए तो वह सफर रुटीन बन चुका था. सच पूछो तो उसे अब देहरादून-मसूरी के बीच दूरी का एहसास ही नहीं होता था. रोज जाने-आने के कारण सड़क के घुमाव इतने चिर-परिचित हो गए थे कि अब इस सफर को वह पहाड़ी सफर भी नहीं मानता था. उसने सुकर्मा की बात को हवा में उड़ा दिया.

"सब ठीक तो है. वत्सला भी रमा के साथ हिल-मिल गई है. तुम्हारा भी दिल लगता है यहाँ. किसी स्कूल में पढ़ाने लगो या चर्च में अंग्रेजी भाषा की कक्षाएँ लगती हैं, रोज साँझ वहीं पढ़ाने के लिए चली जाया करो. पढ़ाने से अपना ज्ञान भी बढता है."

सुकर्मा ने टेढ़ा मुँह करके कहा, "अब मैं क्या ईसाइयों के बीच पढ़ाने जाऊँगी ?"

"क्या कहा ?" पहली बार सुकर्मा ने बसन्त का क्रुद्ध स्वर सुना.

सुकर्मा भय से चुप हो गई. वत्सला ने हैरानी से मम्मी-डैडी को देखा. उसे वे दोनों अपने कद से बड़े, बहुत बड़े दिखाई दे रहे थे. वह डर के मारे कुर्सी के पीछे छुप गई.

"हमारे लिए हिन्दू-ईसाई में कोई फर्क नहीं है. सब इन्सान हैं. तुम कौन-सा वहाँ जाने से ईसाई बन जाओगी ?"

"जीऽऽऽ!"

"दूसरे के धर्म का सम्मान करो और अपने धर्म को कभी न छोड़ो. ऐसा करने से दुनिया में धर्म के नाम पर कोई झगड़ा नहीं होगा."

"जीऽऽऽ!" सुकर्मा ने शॉल को कन्धे के इर्द-गिर्द कसते हुए कहा.

बसन्त उसके नज़दीक आया, बहुत नज़दीक. सुकर्मा ने आँख झुका ली. बसन्त ने उसका कन्धा दबाया, "समझींऽऽऽ?"

सुकर्मा ने 'हाँ' में सिर हिलाया और बसन्त के शेर जैसे सीने में सिर दुबका लिया. बसन्त का हाथ उसके सिर से होते हुए पीठ पर नीचे तक चला गया. उचक कर सुकर्मा बसन्त की बाँहों में थी. बहुत दिन बाद पहले की तरह गर्म साँसें एकरूप होने लगीं. सुकर्मा ने भयभीत हिरणी की तरह खुले दरवाज़े की ओर देखा. वत्सला अपनी रमा दीदी के घर की ओर जा रही थी. वह कुछ कहे, इससे पहले ही बसन्त ने उसके अधरों को अपनी मजबूत गिरफ्त में ले लिया.

गुस्सा कहाँ फुर्र हो गया था...?

यहाँ तो प्यार का दरिया था : फेनिल तरंगों-सा शुद्ध-स्वच्छ, अपने-आपको पीता हुआ, लहरों की विकलता में डूबता-उतरता. चाँद खिडकी के शीशे से चमक रहा था. पहाड़ की रोशनियाँ जलती-बुझती नज़र आ रही थीं.

सुकर्मा को वत्सला का खयाल था. वह बार-बार कुछ कहने की कोशिश कर रही थी. आवेग के किसी किनारे का छोर उसके हाथ नहीं आया.

वत्सला रमा दीदी के घर सो गई थी. देर रात रमा की माँ ने दरवाज़ा खटखटाया, कुछ उत्तर न मिलने पर वह वापस चली गई थीं.

भोर में सुकर्मा अपने घुटनों में सिर देकर बैठी थी. उसे सुबह की रोशनी का इन्तज़ार था. सूरज निकले तो वह वत्सला को घर लेकर आए... बसन्त ने खींचकर उसे सीने से लगा लिया था, "जब वत्सला जागेगी, तो उसके रोने की आवाज़ सुनाई देगी, तब जाकर ले आना."

दरवाज़े पर 'खट-खट' की आवाज़ सुनकर सुकर्मा दौड़ी चली आई. सामने सात्त्विक खड़ा था. "अरे, आप...? कब आए आप ? रागिनी मिली क्या आपको ?"

"सब कुछ दरवाज़े पर ही पूछ लोगी या अन्दर भी आने दोगी." यह रागिनी का गूँजता स्वर था. आस-पड़ोस की खिड़कियों के पर्दे हिलने लगे. रमा की माँ दौड़कर बाहर आईं. पीछे-पीछे रमा की गोद में वत्सला थी.

"अरे, वाह ! तो ये है आपकी बिटिया वत्सला.."

सुकर्मा शर्म से लाल हो गई. बसन्त ने आँख मारकर कहा, "हमारे प्यार का प्रमाण-पत्र है यह." बसन्त ने आगे बढ़कर वत्सला को गोद मे ले लिया.

"मान गए भई तुम्हें..!" रागिनी ने बिन सोचे-समझे कहा.

"अब तुम्हारी बारी है.." सात्त्विक ने रागिनी की ओर देखा.

रागिनी के चेहरे पर लाज का आना बसन्त को अच्छा लगा, वरना कैसे यथार्थवादी बनकर वह सेक्स पर भाषण देती है! बसन्त को यब सब सुनकर वितृष्णा हो आती थी. उन दिनों ऐसे ठोस रूप से देह को भोगने के लिए उसका दिल-दिमाग कभी भी तैयार नहीं था और रागिनी अपनी कुँवारी देह का बखान करते-करते उसको चुनौती-भरी आँखों से देखती रही और हारती रही.

"तुम तो बदल गई हो रागिनी." बसन्त ने कहा.

"हाँ, जनाब! अब यह गीत जो गाती हूँ:

आओ दुनिया के नक्शे बदल दें
मानवता को हँसता हुआ कल दें।"

"अच्छाऽऽऽ?" बसन्त ने चुहल की.

सुकर्मा चाय की केतली लेकर आ गई. सात्त्विक ने कहा, "वाह, कितने दिन बाद सलीके से चाय बनी है—सीधे-सादे मजदूर के लिए!"

"हाँ, सीधा-सादा मजदूर जो लन्दन से आ रहा है. मॉल रोड पर खुशबू के भभके पीछे छोड़ आए हो. वह देखोऽऽऽ!" बसन्त ने कहा.

सात्त्विक ने पीछे मुड़कर देखा, तीन अंग्रेज महिलाएँ किसी के घर का पता पूछ रहीं थीं.

"जी हाँ, यहीं आगे वाले मोड़ से, नीचे की पगडण्डी पर उतर जाएँ. वहीं रहते हैं वह साहब जो नील की खेती करने के लिए भारत आए थे."

"उनकी पत्नीऽऽऽ?" औरतों ने पूछा.

"दूसरी पत्नी के साथ रहते हैं. पहली पत्नी तो स्वर्ग सिधार गई." सुकर्मा ने सोचते हुए संकोच के साथ कहा.

"ओह, मेरी बेचारी बहन...!" एक अंग्रेज औरत ने आँख की कोर से आँसू पोंछा. तीनों आगे बढ़ गईं.

सात्त्विक एवं रागिनी दो दिन पहले ही मिले हैं. अभी तक उनकी शादी बर्लिन और लन्दन के बीच पत्र-व्यवहार से ज़िन्दा थी. सुकर्मा इस तरह की शादी से हैरान थी. वह रागिनी से कुछ नाराज़ भी थी. उसका मानना था कि स्त्री को शादी के बाद पति के साथ ही रहना चाहिए.

उसने बचपन में सुना था, 'स्त्री पति से दूर रहे और आदमी का दिल किसी दूसरी औरत पर आ जाए, तो कसूर आदमी का नहीं, उस औरत का है जो उसे अकेला छोड़ गई है.'

सुकर्मा ने रागिनी को गौर से देखा, 'क्या औरत का मन कभी कमज़ोर नहीं पड़ता? देह की जरूरतें तो आदमी और औरत की एक-सी हैं. औरत

अपने-आपको रोक सकती है, तो पुरुष क्यों नहीं...?'

रागिनी में काफी बदलाव नज़र आ रहा है. वह परिपक्व लग रही है. सुकर्मा की अपेक्षा कुछ बड़ी-बड़ी-सी. उसने सलवार-सूट पहना है. बालों को कसकर बाँधा हुआ है. हाथ में कोई चूड़ी-कंगन नहीं है.

सुकर्मा ने पूजा के बाद सिन्दूर का टीका लगा दिया और धीरे-से सिन्दूर का बिन्दु माँग में भी सजा दिया. सात्त्विक के मुँह पर मुस्कान तैर गई. कुछ भी कहो, स्त्री के सुहाग-चिह्न पुरुष को अच्छे लगते हैं. बसन्त के पिता ठीक ही कहते थे, 'ये सब गुलामी के निशान हैं.' उन्होंने बसन्त की माँ को कभी नथ और पायल नहीं पहनने दी.

रागिनी ने शीशे में अपनी माँग में सजी सिंदूर की रेखा को गौर से देखा. उसे अपनी शक्ल अजीब-सी दिखाई दी.

बसन्त ने चुहल की, "क्या बात है रागिनी, आज अपने पर निहाल हो रही हो!

रागिनी ने दबे स्वर में कहा, "कोई दूसरा तारीफ न करे, तो कोई और क्या करे!"

बसन्त ने गम्भीर स्वर में कहा, "दुकान में सजी चीजों को ग्राहक न खरीदे, तो भी दुकानदार की पूँजी कम नहीं होती. उन चीजों का मालिक वह खुद है. अपने गुणों को अपने लिए समेटकर रखने में ही समझदारी है. गुण किसी की तारीफ के मोहताज़ नहीं हैं और किसी के कहने पर कोई अवगुणों का पुलिंदा नहीं बन जाता."

रागिनी के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना बसन्त काम के लिए चला गया. सात्त्विक छत पर जाकर धूप में सो गया. रागिनी सुकर्मा रो वत्सला-पुराण सुनती रही...।

चौदह

गुजरते पलों को मुट्ठी में कैद कर लेने की कला कोई सुकर्मा से सीखे. वह जीवन के हर क्षण को पूरे मनोयोग से जीती है. उसकी स्मरणशक्ति अद्‌भुत है और निर्णय लेने की क्षमता स्पृहणीय. रात को उसने सात्त्विक एवं रागिनी को आदेश-सा ही दे दिया, "कल इतवार है, सुबह जल्दी जाग कर नहा-धो लेना. सब मिलकर 'क्लाउड सेवेन' जाएँगे."

बसन्त ने सरकारी गाड़ी मँगवा ली थी. कच्ची सड़क पर हिचकोले खाते हुए लगभग ग्यारह बजे गेट खुला–चर्र-चर्र की आवाज़ से. वत्सला ने तालियाँ बजाईं और रागिनी आन्टी से हाथ मिलाया.

सुकर्मा कूदते-फाँदते जा पहुँची इको प्वाइन्ट पर. उसका स्वर घाटी से परावर्तित होकर सुनाई दिया, 'वत्सलाऽऽ!'

बसन्त ने स्वर मिलाया, "वत्सलाऽऽ! सुकर्माऽऽ! आई लव यू."

रागिनी उन तीनों को देख रही थी. सात्त्विक ने उसे पीछे से बाँहों में कस लिया, "रागिनी ! मेरी जानऽऽ !" गर्दन पर अधरों के स्पर्श से रागिनी कसमसाई और सात्त्विक के हाथों के स्पर्श से पिघलने लगी.

"अब कभी छोड़कर नहीं जाओगी, कहो, वादा! वादा...!"

अपने-आपको छुड़ाने के कृतिम प्रयास के बीच रागिनी ने कहा, "ठीक है!"

घाटी प्यार के वादों से भर गई. प्यार का प्रकृति से बेहतर और कोई साक्षी हो भी नहीं सकता है. मनुष्य का क्या है–पल में तोला, पल में माशा. प्रकृति चिरन्तन है. मौसम बदलता है, तो भी उसका कोई क्रम है, कोई नियम है. सुकर्मा को 'ऋतुसंहार' याद हो आया.

उस मोड़ से चलते-चलते आज कहाँ पहुँच गए हैं? प्यार केवल शारीरिक आकर्षण नहीं है. शरीर तो माध्यम है. मन से प्यार का भाव न उठे तो शरीर में कोई ज्वर उठ ही नहीं सकता है. यह तो पुरुष के बल पर निर्भर करता है कि कैसे वह स्त्री के मन को जीते और उसके भीतर उठते आवेग में खुद

पिघल जाए. यहाँ जोड़-तोड़ या चालाकी काम नहीं आती है. शारीरिक ज़ोर-जबर्दस्ती का भी कोई काम नहीं है. मधुरता एवं कोमलता ही सबसे बड़ा हथियार है. वही रिश्ते की मज़बूती का आधार है. फिर दैहिक सम्मिलन न रहे तब भी नज़दीकी बनी रहती है.

मानव-जाति के विकास की तरह प्रेम के विकास का अपना अनुक्रम है. धीरे-धीरे परिपक्वता आती है सम्बन्ध में. बच्चे भी प्यार में बाधा नहीं, सेतु बन जाते हैं. बच्चों के बहाने से जुड़ाव और गहरा होता है, बशर्ते कि यह जुड़ाव बच्चों की खातिर बर्दाश्त किया जानेवाला कृत्रिम जुड़ाव न हो.

सुकर्मा को रमा की माँ का बार-बार दुहराया जानेवाला डायलॉग याद हो आया, 'रमा न होती तो मैं तो कई साल पहले ही वर्माजी को छोड़कर चली जाती.'

सुकर्मा ने अपने-आपको झटका दिया, यहाँ इस सुरम्य वादी में कैसी अप्रिय बात याद की उसने ?

"क्या हुआ सुकर्मा ?" सात्त्विक ने रागिनी पर पकड़ ढीली करते हुए पूछा.

"यूँ ही रमा की माँ याद आ गई।" सुकर्मा ने कहा.

"क्यों, अभी भी वह हमसे शादी करवाना चाहती हैं क्या ?" सात्त्विक ने चुटकी ली.

"तुम्हें ऐसी बातें शोभा नहीं देती हैं, सात्त्विक! रमा बेचारी प्यार के अर्थ को नहीं समझती है, वह तो सिर्फ समाज के द्वारा रूढ़िगत सोच से अपने भावी पति की तलाश कर रही है. पीछे से उसकी माँ का प्रभाव है." सुकर्मा ने समझाया.

सात्त्विक सुकर्मा को टकटकी लगाकर देख रहा था. सुकर्मा अकबकाकर बसन्त की ओर मुड़ गई. अपने-आपसे डर गई वह. 'यह मैंने सात्त्विक की आँखों में क्या देखा ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है. मैंने उसे कई बार कहा है कि वह मुझे सुकर्मा न कहकर 'दीदी' पुकारे. लेकिन उसने मुझे हमेशा सुकर्मा ही कहकर बुलाया है, इसीलिए मेरा मन आशंकित हुआ होगा.' सुकर्मा ने अपने वहम को दूर भगाया.

उस दिन वह अपने शरीर के प्रति और अधिक सावधान हो गई थी. बार-बार साड़ी का पल्ला कसती रही. कभी कमर और कभी गला ढकती रही. बसन्त ने सोचा, 'सुकर्मा आपने-आपको बड़ी दिखाने का नाटक कर रही है.' उसे इस बात का हमेशा एहसास रहता है कि वह सुकर्मा से आठ वर्ष बड़ा है. रागिनी भी उससे लगभग पाँच वर्ष बड़ी होगी ही. सात्त्विक लगभग

उसका हमउम्र है. वह रागिनी से तीन वर्ष छोटा है. वह मन-ही-मन मुस्कराता रहा.

शादी के पहले दिन से ही सुकर्मा ने बडी होने का अभिनय करने की कोशिश की है. इस प्रयास में वह बार-बार असफल हुई है. आज भी वह रागिनी से छोटी ही दिख रही है.

रागिनी ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर गुनगुनाते हुए घूमती रही. सात्त्विक आत्मचिन्तन में लीन था. उसने गम्भीरतापूर्वक पूछा, "बसन्त! आपकी नज़र में प्यार क्या है?"

बसन्त ने तीखी नज़र से सात्त्विक को देखा. फिर सुकर्मा की ओर प्यार से देखा, "प्यार? प्यार जीवन का मूलभूत आधार है."

"जिसके जीवन में प्यार न हो, तो?" सात्त्विक ने हवा में सवाल उछाला.

बसन्त ने घने जंगल से दृष्टि हटाकर आकाश की ओर देखा, "हाँ, प्यार के बिना व्यक्ति ज़िन्दा तो रहता है, परन्तु कहने भर के लिए. असल में प्यार के बिना कोई भी व्यक्ति मृतप्राय ही है."

"यानी कि...?" सात्त्विक ने नासमझ की तरह कहा.

बसन्त का दार्शनिक स्वर हवा में गूँजा, "जीवन में रस साँस से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है. रस नहीं, तो जीवन नहीं. रस प्यार से ही पैदा होता है."

"मीरा को क्या कहेंगे आप?" सात्त्विक ने पूछा

"मीरा तो प्यार से सराबोर थी. मीरा के प्यार की तुलना तो किसी से हो ही नहीं सकती है. उसकी प्रतिबद्धता अन्यत्र कहाँ...! ऐसे कृष्ण के प्रति प्रतिबद्धता, जिसको उसने कभी देखा नहीं, छुआ नहीं ; उसके जैसी मजबूत स्त्री और कहाँ हो सकती है! सात फेरों की कसमें, वह भी राजघराने की रस्में उसे बाँध नहीं सकीं, छू नहीं सकीं, वह तो वाकई दीवानी थी–प्रेम दीवानी!" बसन्त के चेहरे की रंगत लाल हो गई.

उसका प्रतिबिम्ब सुकर्मा पर भी नज़र आया.

"प्यार में प्रतिबद्धता...हाँ, प्रतिबद्धता पहली शर्त है. मानसिक स्थिरता के बिना प्यार, प्यार नहीं है. ऐसे व्यक्ति के हाथ तो सिर्फ भटकन की फिसलन ही लगती है. दिल खाली का खाली!" बसन्त ने हाथ से इशारा किया.

"क्या मतलब?" रागिनी ने ऊपर चढ़ते हुए पूछा.

"एक इन्सान को दो लोग प्यार कर सकते हैं क्या?" सात्त्विक का प्रश्न था.

"क्यों नहीं, कृष्ण को तो मीरा प्यार करती थी–राधा भी प्यार करती थी और रुक्मिणी और सैंकड़ों गोपियाँ..." बसन्त ने कहा.

"मैं कृष्ण की बात नहीं पूछ रहा हूँ. मैं अपने जैसे लोगों के बारे में बात कर रहा हूँ." सात्त्विक संजीदा हो गया.

"हाँ, कर सकते हैं." फिर बसन्त ने चुहल की, " दो नावों में फँसना मत मेरे भाई! न घर के रहोगे, न घाट के."

बसन्त की बात सुनकर सात्त्विक चुपचाप सोचने लगा, 'आज मेरा मन सवाल कर रहा था कि क्या मैं मन से रागिनी को प्यार करता हूँ...?'

सुकर्मा पीठ किए हुए बैठी थी और निश्चित रूप से उनका वार्तालाप सुन रही थी. रागिनी ने उसके पास जाकर देखा, वह खीरा, प्याज, टमाटर का सलाद तैयार कर रही थी.

"आप क्या कहती हैं प्यार के बारे में?" रागिनी ने सुकर्मा से सीधा सवाल किया.

"प्यार तो उन्मुक्ति है. प्रतिबद्धता मन से होती है, सात फेरों की कसमों से नहीं." सुकर्मा ने कहा.

बसन्त आज भी उसकी समझदारी पर हैरान हो जाता है. वह न जाने क्यों यह भूल जाता है कि अब सुकर्मा ने संस्कृत एवं अंग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन किया है. जीवन के दैनन्दिन रंग से बहुत कुछ सीखा है उसने.

सच कहो तो उसके परिवेश का विस्तार बसन्त की अपेक्षा कहीं अधिक है. पिछले पाँच वर्ष से वह चढ़ती उम्र की लड़कियों के साथ मज़ाक-मज़ाक में न जाने क्या कुछ सीख गई है—फैशन से फिल्म तक और घर-गृहस्थी से बाज़ार तक. अपनी प्रबुद्ध अध्यापिकाओं के साथ सामयिक विषयों पर न जाने कितनी बार चर्चा-परिचर्चा कर चुकी है. कोई कहे तो वह प्यार पर पूरा वक्तव्य दे दे, वह भी सच्चे दृष्टान्तों के साथ.

सुकर्मा ने रागिनी से गम्भीर प्रश्न पूछा, "तुम अपनी कहो, विदेश में क्या-क्या सीखा ?"

"मैं अब मजदूरों का संगठन तैयार करने में माहिर हूँ। किसी भी प्रबन्धक से अपनी बात कैसे मनवाई जाए, उन्हें सिखा सकती हूँ, मनवा कर दिखा सकती हूँ."

उसकी आवाज़ के दम्भ से सुकर्मा असहज महसूस कर रही थी. सात्त्विक को भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा था. सात्त्विक ने पाइप सुलगा लिया.

बसन्त ने धीरे से कहा, "यह बीमारी कब से लगा ली ?"

"यह बीमारी नहीं, साथी है—मेरे सुःख-दुःख का सहभागी." सात्त्विक की आवाज़ सुकर्मा और रागिनी को चीरते हुए जंगल में खो गई.

"अब तुम सात्त्विक के साथ ही जाना." सुकर्मा ने गहरी आवाज़ में रागिनी के कान में कहा. रागिनी ने बिना बोले 'हाँ' में सिर हिलाया.

थोड़ी देर में उसने सुकर्मा से कहा, "सुकर्मा! मैं बच्चा नहीं चाहती हूँ."

"सात्त्विक की क्या मर्जी है ?" सुकर्मा ने पूछा.

"मैंने उससे पूछा नहीं है. उसकी जिन्दगी में किसी के लिए समय नहीं है. वह अपने काम में और अपनी पढ़ाई में इतना व्यस्त है..."

"काम तो काम है. सभी आदमी काम करते हैं. प्यार भी करते हैं और सबके बच्चे भी होते हैं." सुकर्मा की हँसी से वादियाँ खनखना उठीं.

"सुकर्मा ! मैं बच्चा नहीं चाहता हूँ." मेघ-सा गर्जन हुआ सात्त्विक के कण्ठ से.

बसन्त वत्सला के साथ दूर पगडण्डी पर खड़ा था. उलटे पैर वापस आ गया, "यह क्या बहस पाल ली है तुम लोगों ने ?"

"यह बहस नहीं, सच्चाई है, बसन्त ! मैं प्यार के उत्तरोत्तर उत्थान को देखना चाहता हूँ, महसूस करना चाहता हूँ. मेरे लिए प्यार शरीर से परे तक जाता है. कुछ सवाल मुझे दिन-रात सालते हैं : मैं क्या करूँ? मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा..?"

बसन्त ने सहज रूप से कहा, "यह कौन अनोखी बात है. यह सवाल तो हरेक के मन में उठते हैं."

सात्त्विक ने उसकी बात पर ध्यान दिए बिना, अपनी बात को जारी रखा, "निश्चित रूप से मैं सिर्फ शरीर नहीं हूँ. मेरा अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व में एकाकार होने के लिए तड़प रहा है. मैं महाचैतन्य से छिटका हुआ एक बिन्दु हूँ. मेरा पूरा अस्तित्व उस सार्वभौम ऊर्जा से एकाकार होने को लालायित है."

बसन्त और सुकर्मा की आँखें एक साथ सात्त्विक की ओर उठीं. दोनों के मन-मस्तिष्क में एक ही सवाल कौंधा, 'रागिनी के साथ शादी के बाद, रागिनी के सामने ही सात्त्विक नें यह क्या कह दिया...?'

सात्त्विक ने उन दोनों की उठती निगाहों को महसूस ही नहीं किया. वह तो जैसे किसी अलौकिक शक्ति की गिरफ्त में था. उसने ज़ोर देकर कहा, "मुझे विश्वास है, उस महाचैतन्य का कोई अंश कहीं मेरी प्रतीक्षा कर रहा है. आप इसे महाचैतन्य न कहकर यूनिवर्सल एनर्जी भी कह सकते हैं. यूँ कह लीजिए, मेरे अनुकूल एनर्जी मुझसे आ मिलेगी." आसमान की ओर देखकर वह सुकर्मा के बहुत नज़दीक आकर खड़ा हो गया.

बसन्त की ओर देखते हुए उसने कहा, "मेरे निस्बत यही प्यार है." सात्त्विक का निःश्वास वत्सला के कान को छू गया. वत्सला ने अपने कान

पर हाथ रखते हुए सुकर्मा के कान से सटा लिया.

वे तीनों इस प्रस्फुटित ऊर्जा से अभिभूत हो गए.

सात्त्विक की बात की काट बसन्त के पास नहीं थी. उसने कुतर्क नहीं किया. वत्सला को सुकर्मा की गोद से लेकर जमीन पर खड़ा किया, हाथ पकड़ा और कहा, "चलो, दौड़ते हैं। देखें, कौन जीतता है...?"

हरी-भरी घाटी में बादलों के बीच हँसते-खेलते दिन बीत गया. बसन्त और सुकर्मा के लिए जैसे जीवन का एक नया अध्याय शुरू हो रहा है.

दो दीप-स्तम्भ मिलकर ज्योति का अजस्र स्रोत बन जाते हैं. वे दोनों रागिनी और सात्त्विक के लिए कुछ ऐसी ही भूमिका निभा रहे हैं.

उस दिन रागिनी ने सुकर्मा के साथ रात्रिभोज तैयार किया. नीबू, पुदीने वाला सूप और मटर का पुलाव खाकर सभी अपने-अपने बिस्तर में दुबक गए. रात के सन्नाटे में कौन क्या सोच रहा है, इसकी सुध किसी को नहीं थी.

रमा की माँ परेशान थीं, आज बत्ती इतनी जल्दी क्यों बुझ गई है? इतने सन्नाटे की उन्हें आदत नहीं थी...।

पन्द्रह

"गुनगुनी धूप में चाय पीने का मज़ा कुछ और ही है." सात्त्विक ने काली चाय का पहला घूँट लेते हुए कहा.

"वह भी, जब सामने देवदार का हरा-भरा जंगल हो." बसन्त ने हामी भरी.

"और चारों ओर पसरा हुआ सन्नाटा..." रागिनी ने जोड़ा.

"आप सब तो कवि हुए जाते हो." सुकर्मा ने टिप्पणी की.

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं ! कुछ बरस बाद वत्सला की क्लास में कीट्स, शैली और वड्सवर्थ की जगह हमें ही तो पढ़ाया जाएगा," कहकर सात्त्विक खिलखिलाकर हँस दिया. चारों के ठहाके का स्वर सुखद लगा.

रमा की माँ ने खिड़की से झाँककर देखा. सात्त्विक की आँख खुली तो उसने अभिवादन में सिर झुका दिया और बसन्त को आँख से इशारा किया. सामने वाले ऋषिदा ने भी अखबार की ओट से देखा.

टेलीफोन की घंटी सुनकर सुकर्मा तेज़ कदमों से भीतर चली गई. उसकी ननद कुन्ती का फोन था. बसन्त की चचेरी बहन की शादी उसके अभिन्न मित्र सुदीप से इसी बरस हुई है. वे दोनों जिद कर रहे थे कि सुकर्मा बसन्त के साथ ही देहरादून आए और दिन उनके साथ बिताए. सात्त्विक-रागिनी के वहाँ होने की खबर सुनकर कुन्ती ने कहा, "उनको साथ ले आओ, पिकनिक हो जाएगी; सब मिलकर सहस्रधारा चलेंगे."

सुकर्मा को यह प्रस्ताव अच्छा लगा. उसने लगभग 'हाँ' का संकेत देते हुए कहा, "अभी फोन करती हूँ, ज़रा बसन्त से पूछ लूँ."

चारों के सिर फिर जुड़ गए और सभी ने अपना-अपना विचार व्यक्त किया. एकमत नहीं बन रहा था तो बसन्त ने कुछ खीज-भरे स्वर में कहा, "तुम लोग तो ऐसे विचार-विमर्श कर रहे हो; जैसे कि देश के वित्तीय संकट का कोई गम्भीर मुद्दा हो. अरे! कुन्ती दी बुला रही हैं. उदास होंगी अकेली... हमारे सिवा उनका इस परदेस में और है ही कौन ? चलते हैं सब, बड़ा मजा

आएगा. सात्त्विक! तुम्हें सुदीप से मिलकर अच्छा लगेगा."

"हाँ, मुझे याद है, हम पहले मिल भी चुके हैं. याद नहीं तुम्हें, वह तो पूरा बुर्जुआ हैं. फ्रेंच परफ्यूम और ब्रिटिश टाई..." हँस दिया सात्त्विक.

"ओह, वह हमारे मित्र हैं. जरा शौकीन तबीयत के हैं. गाँव में वही तो नाच-गाने की महफिल का बन्दोबस्त करते थे..जंगल में शिकार और फिर..."

सुकर्मा ने विस्फारित नयनों से देखा. होंठ गोल हो गए, "यह क्या सुन रही हूँ मैं? मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा है! तुम लोग भी...? और बातें करते हो सर्वहारा वर्ग की...!"

"यू हिप्पोक्रेट्स ...! आई डोन्ट बिलीव इट." रागिनी ने टिप्पणी की.

सात्त्विक चिढ़कर बोला, "अपने-अपने फैसले सुनाने से पहले तहकीकात तो कर लो."

"मुझे खेद है. मैं मानती हूँ कि हमसे गलती हो गई. हमें दूसरों के व्यवहार के बारे में निर्णायक होने का कोई हक नहीं है." सुकर्मा ने खेद-भरे स्वर में कहा.

"मैं भी..." रागिनी ने अनिच्छा से स्वर मिलाया.

सात्त्विक-बसन्त विजेता योद्धाओं की तरह सीना फुलाकर खड़े हो गए, "कोई बात नहीं, माफ किया."

सुकर्मा-रागिनी अपनी झेंप मिटाने की कोशिश कर रही हैं.

बसन्त ने अपना निर्णय सुनाया, "मैं बस से देहरादून जा रहा हूँ. मज़दूर-यूनियन के नेताओं के साथ विशेष बैठक है. जब तक मेरा यह काम पूरा होगा तब तक तुम सब कार से कुन्ती दी के घर पहुँच जाओ."

सुकर्मा ने कुन्ती दी को फोन करके कार्यक्रम बता दिया.

रागिनी नहाने के लिए चली गई. सात्त्विक सामनेवाले ऋषिदा के साथ भारत की राजनीति की चर्चा कर रहा था, "भारत के आपातकाल की त्रासदी ने इंग्लैण्ड और अमेरिका में प्रवासी भारतीयों को ज्यादा दुःखी किया था. उनका जनतान्त्रिक देश के नागरिक होने का गुमान जो टूटा था!"

ऋषिदा ने धैर्यपूर्वक सात्त्विक की पूरी बात सुनी, फिर सहजतापूर्वक कहा, "तुम लोग यह क्यों नहीं मानते हो कि आपातकाल ने सिद्ध कर दिया है कि भारत में जनतन्त्र की अपनी जड़ें हैं, मज़बूत जड़ें हैं."

सात्त्विक की विद्वता के सामने प्रश्नचिह्न लग गया. उसने झुककर स्वीकार किया, "वाकई, इस नज़रिए से तो मैंने सोचा ही नहीं, यह भारत में ही हो सकता था कि बिना सरकार का तख्ता पलटे, जनतान्त्रिक प्रक्रिया से नई सरकार बन गई."

"हाँ, प्रेस को फिर से स्वतन्त्रता मिल गई, शुक्र खुदा का!"

"यदि प्रेस पर इतनी पाबन्दी न होती तो आपातकाल का इतना बीभत्स रूप न होता, न ही इन्दिरा गांधी चुनाव हारतीं."

"जी, ठीक कह रहे हैं आप. प्रेस के द्वारा इन्दिरा गांधी को सभी बातों की सही जानकारी मिलती रहती और निश्चित रूप से सही जानकारी मिलने पर उनकी नाक के नीचे इतनी ज्यादतियाँ वह होने न देतीं." सात्त्विक का इन्दिरा जी के प्रति लगाव और सम्मान भाव साफ झलक रहा था.

"चिन्ता न करो, वह वापस लौटेंगी. इस देश को उनकी ज़रूरत है." ऋषिदा ने कहा.

सात्त्विक ने हैरानी से देखा, "सच! यह कैसे कह सकते हैं आप ?"

"मैं इस देश की जनता को जानता हूँ. राजनीतिक पार्टियों को भी करीब से जानता हूँ. नकली समझौते बहुत दिन नहीं चलते."

सात्त्विक ऋषिदा के राजनीतिक ज्ञान से चकित था. साधारण-सा दिखने वाला व्यापारी राजनीति की उठा-पटक को इतने गहरे से कैसे समझ सकता है! सात्त्विक कुछ पूछे इससे पहले ही ऋषिदा ने कहा, "मैं इन्दौर से आया हूँ. एम.एल.ए. का निर्वाचन हारने के बाद मेरा मन बुझ गया था. मेरे अपने अन्तरंग मित्रों ने धोखा दिया था. तभी मैं घर-परिवार के साथ यहाँ आकर बस गया. इन्सान को दो रोटी और इज्ज़त की ज़िन्दगी के साथ मन की शान्ति से ज्यादा किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती है."

सात्त्विक ने ऋषिदा के घर में लगभग अढ़ाई साल गुजारे थे. उनका यह रूप उसने पहले क्यों नहीं जाना. उसे इस बात का दु:ख महसूस हुआ. पीछे मुड़कर देखने पर सात्त्विक को एहसास हुआ, 'आश्चर्य नहीं कि ऋषिदा सात्त्विक के प्रति इतने सहृदय तरीके से पेश आए थे. उन्होंने बिना ज्यादा पूछताछ के न केवल अपने यहाँ नौकरी दी थी, बल्कि घर में रहने के लिए जगह भी दी थी.'

सात्त्विक ने झुककर उनके पैर छू लिए. ऋषिदा का हाथ सहज रूप से आशीष मुद्रा में उठ गया. उनकी आँख की कोर से आँसू टपका, "उस चुनाव में अपना जवान बेटा खोया है मैंने. उसकी हत्या हो गई थी."

सात्त्विक ने उनके कन्धे पर हाथ रख दिया. वह पहले कितना असंवेदनशील रहा होगा. उसने ऋषि दा का यह हिस्सा न कभी जाना, न समझा. उसका मन आत्मग्लानि से भर गया. बहुत ही मुश्किल से उसके मुँह से निकला, "मैं आपका बेटा हूँ. हुक्म करें, क्या सेवा करूँ ?" सात्त्विक ने मुस्कराने का असफल प्रयास किया.

ऋषिदा मौन ही रहे. बूँद आँख के कोर में अटकी थी. वह मुडे और आवाज़ लगाई, "भागवान्! पानी तो भिजवाओ छोटू से, फिर अदरकवाली चाय भी."

हमेशा की तरह बर्तनों की खनखनाहट के अलावा कुछ उत्तर नहीं मिला. सात्त्विक ने ऋषिदा की पत्नी को कभी मुश्किल से ही देखा है. करवाचौथ के दिन छत पर आती हैं वह।

सात्त्विक को याद आया, जब वह करवा चौथ की शाम को सजी-सँवरी औरतों को देखता रहा था. उस रात उसने एक पेंटिंग बनाई थी. थाल में दीया लिए औरत और आखिर में माथे पर सिन्दूर लगाना नहीं भूला था. 'जाने कहाँ रखी होगी वह! मिल जाए तो सुकर्माजी को दे दूँगा. उनके घर में खूब सजेगी वह. एकदम माहौल के मुताबिक सही और उनके चारित्रिक स्वरूप के अनुरूप.'

चाय आ गई थी. बहुत दिन बाद दूधवाली चाय पीना सात्त्विक को अच्छा लग रहा था. स्टील के गिलास में चाय पीना भूल ही गया था वह.

सामने की छत पर सुकर्मा अपने गीले बाल आगे की ओर गिराकर झाड़ रही थी. उसकी शारीरिक वक्रता सात्त्विक के कलाकार मन को मोह रही थी. दिल में आ रहा था कि कैनवस पर न सही तो कैमरे में ही कैद कर ले. कौन जाने सुकर्माजी को कैसा लगे! उन्हें नाराज़ करने का जोखिम वह नहीं उठा सकता है. इसलिए स्मृतियों में ही सँजोना भला है. किसी की आँख पर या दिल पर तो कोई पहरा नहीं है न! उसे फिर आपातकाल की बात याद हो आई, 'कुछ चीज़ें तो आपातकाल में अच्छी ही हुई थीं.'

"जैसे...?"

"जैसे...हाँ, जैसे वस्तुओं का मूल्य निश्चित होना और हरेक चीज पर मूल्य का अंकित होना."

ऋषिदा ने कुछ प्रतिक्रिया नहीं दिखाई.

"आपने किस पार्टी के चुनाव पर टिकट लड़ा था ?" बेवकूफी-भरा सवाल लगा खुद ही सात्त्विक को.

ऋषिदा ने निरपेक्ष भाव से कहा, "काँग्रेस." फिर थोड़ा-सा रुककर बोले, "मेरे पिता स्वतन्त्रता सेनानी थे."

"ओह, अब जाना मैंने!" सात्त्विक ने चर्चा को विराम देने के अन्दाज में कहा और उठकर खड़ा हो गया.

सामने खड़ी सरकारी एम्बेसेडर कार में ड्राइवर ऊँघ रहा है. रागिनी भी छत पर जाकर कुर्सी पर बैठ गई. वह हमेशा की तरह डायरी में हिसाब लिख

रही है और कैलकुलेटर से जल्दी-जल्दी कुछ गणना कर रही है. सात्त्विक मन-ही-मन हँसा, ' साम्यवाद और कैलकुलेटर से रुपये-पैसे का गुणा-भाग क्या अजीब संयोग है !'

फोन की घंटी से सन्नाटा टूटा. सात्त्विक ने घर की ओर कदम बढ़ाए. सुकर्मा और रागिनी भी लगभग दौड़ते हुए नीचे पहुँचीं. फोन बन्द हो गया था.

तीनों फोन की ओर टकटकी लगाए खड़े रहे. किसी को फोन की प्रतीक्षा नहीं थी. तीनों न जाने क्यों आशंकित से खड़े थे. भारत में तार आते ही अशुभ की चिन्ता हो जाती है. ऐसे ही फोन की घंटी बजते ही मन में बीसियों सवाल उठ आते हैं.

"न जाने किसका होगा!" सुकर्मा ने कहा.

"जिसका भी होगा. वह दोबारा कर लेगा. चलो, हमें कॉफी पिलाओ." सात्त्विक ने वक्त के भारीपन को हलका करने की कोशिश की.

सुकर्मा बेमन से रसोई में चली गई, 'ज़रूर बसन्त का ही फोन होगा. न जाने क्या कहना चाहते हैं. दुबारा क्यों नहीं कर रहे हैं. कुन्ती दीदी से तो बात हो चुकी है. वह दुबारा फोन क्यों करेंगी. निश्चित रूप से बसन्त को ही कुछ याद आया होगा. फोन न उठने से चिन्तित हो गये होंगे. मैं क्या करूँ? मैं तो भागकर आई थी. एकदम से फोन कट गया.' सुकर्मा अटकल बाजी कर रही थी कि फिर फोन की घंटी बजी.

सुकर्मा भागी, सात्त्विक ने फोन उठा लिया था. उसके हँसने से सुकर्मा ने अन्दाज़ लगाया कि दूसरी ओर से बसन्त ही बोल रहे होंगे.

"लीजिए, सुकर्माजी ! आपके आशिकमिजाज़ पति को आपकी याद सता रही है." सुकर्मा के चेहरे पर लालिमा दौड गई.

आँखों से पूछा क्या है ?

"जी, यह फोन है, यहाँ बोलना पड़ता है." रागिनी ने कहा.

सुकर्मा सुन रही थी, "अपने लिए एक ड्रेस और रख लेना वरना रोओगी, सब गीला कर दिया. हम तो अपनी जान को पूरा भिगाकर ही साँस लेंगे."

सुकर्मा की रगों में रक्त-प्रवाह बढ़ गया. वह अपने-आपको छुपाने का प्रयास कर रही है. पैर का अँगूठा ज़मीन कुरेद रहा है और बालों की लट चेहरे पर आ गई. रागिनी कपड़े बदलने के लिए चली गई.

सात्त्विक ने उसके चेहरे से बाल हटाकर लाल कान के पीछे खोंस दिए. सुकर्मा खड़ा-खड़ा लाज की गठरी बन गई. सात्त्विक को भीतर तक सुख की लहर छू गई. वह पास ही खड़ा रहा. सुकर्मा मुडी, तो चुम्बकीय लहर-

सा कुछ गुज़र गया दोनों के बीच मे. एक-दूसरे की उपस्थिति को नकारते हुए दोनों उलटी दिशा में चल दिए.

सुकर्मा ने बाल्कनी में जाकर नाहक ही ड्राइवर को पुकारना शुरू कर दिया और सात्त्विक छत पर जाकर आकाश के नीलेपन को निहारने लगा.

ड्राइवर ऊँघती आँखों को पोंछते हुए आया, "जी, मेमसाहब !"

सुकर्मा ने ड्राइवर को कहा, "बेबी सो रही है. उसके उठते ही चलेंगे."

"जी!" ड्राइवर ने कहा.

"एक घंटे बाद चलेंगे." सात्त्विक ने स्थिति को सामान्य बनाने के लिए कहा. सुकर्मा ने छत की ओर देखा, फिर मौन कुछ घटित हुआ और दोनों अपने-अपने द्वीप के चारों ओर के समुद्र के छपाकों से बचने की कोशिश करने लगे.

सात्त्विक सोच रहा था, 'एक सुन्दर सात्त्विक भाव पर गलत की छाया नहीं पड़ने दूँगा. प्यार का अर्थ केवल परिणय नहीं है.' अपने-आपको आश्वस्त करने की कोशिश में उसके होंठ हिले, "प्यार सेक्स का पर्याय नहीं है. मैं तो ईश्वर की कृति के सौन्दर्य का प्रशंसक हूँ.'

वस्तुतः सात्त्विक नहीं जानता था कि सात्त्विक के लिए सुकर्मा केवल एक कृति नहीं, अपितु उससे कुछ अधिक है. सात्त्विक ने सुकर्मा की आत्मा के रंग को नंगी आँख से देखा था. आत्मा को महसूस करने के लिए चश्मे पहनने की नहीं, बल्कि दुनिया-समाज द्वारा स्थापित रूढ बातों के चश्मे को उतारने की ज़रूरत होती है. सात्त्विक नें आँखें मूँद लीं.

इंग्लैण्ड-प्रवास नै सात्त्विक को आर्थिक समृद्धि दी थी. उसके साथ ही, उसके हाथ में विचित्र पूँजी का पिटारा आ गया है. एकाकीपन वरदान सिद्ध हुआ है. उसका सारा समय उसका अपना था. आत्म-चिन्तन से उसकी आत्मा नित नये शिखर छूते हुए ऊर्ध्वमुखी विकास की ओर उन्मुख है. वह पुराने में नया देख सकता है, नये में पुराना खोज सकता है.

सामने फैले देवदार के जंगल में हवा की सर्र-सर्र को सुनते हुए वह गीत गुनगुनाने लगा. यह गीत उसने उस समय लिखा था, जब वह मुम्बई में विज्ञापन-एजेन्सी के लिए लिखा करता था. चॉकलेट के विज्ञापन में, प्रेम-दृश्य के बारे में चिन्तन करते हुए यह प्रेम-गीत प्रस्फुटित हुआ था.

तब तक सात्त्विक ने प्यार का स्वाद चखा नहीं था. वह दोस्तों की नित-नई प्रेम-कहानियाँ सुना करता था. उन्हीं दिनों उसकी मुलाकात रागिनी से हुई थी. रागिनी मॉडलिंग के क्षेत्र में नई थी. वह माता-पिता से छुपकर यह काम कर रही थी.

सात्विक को इस आँख मिचौली में मज़ा आने लगा था. कोई भी काम लेने से पहले रागिनी को न उत्पाद से मतलब था, न ही डायलॉग से. वह पूछती थी कि उसे पहनना क्या होगा : इससे भी ज्यादा इस बात की चिन्ता होती थी कि यह विज्ञापन छपेगा कहाँ और कब ? तब वह घर में अपना सेन्सर-बोर्ड का दफ्तर खोल लेती थी. घर से आधे अखबार-मैगज़ीन गायब होने लगे थे.

उन्हीं दिनों सात्विक और रागिनी शाम को मैरीन ड्राइव का एक चक्कर मारते थे और कभी-कभी सन्नाटे की तलाश में शहर से दूर निकल जाते थे. रागिनी के पिता अधिकतर विदेश में रहते थे. माँ को वह किसी-न-किसी बहाने टाल देती थी. फिर तो सात्विक रागिनी के घर ही जाने लगा था. कई बार सात्विक रागिनी की अपेक्षा रागिनी की मम्मी से ज्यादा बातें करता था.

आज सात्विक समझ सकता है कि ऐसा क्यों होता था. वस्तुत: वह अब जानता है कि इन्सानी रिश्तों की बुनियाद शरीर की उम्र पर नहीं टिकी है. मनुष्य का जन्म कब हुआ, इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति की मानसिक आयु क्या है ? इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है : 'आत्मा के विकास का स्तर.'

अपनी सोच पर खुद ही मुस्कराया वह. कौन समझेगा उसकी इस बात को ? यहाँ तो रिश्तों की निश्चित प्रक्रिया है. उम्र का सवाल तो बहुत अहम् है. इस तथ्य को नकारकर कोई भी रिश्ता कायम नहीं हो सकता है. हर रिश्ते को आयु के पैमाने से सम्बोधन मिल जाता है.

रमा की माँ ने रमा के बच्चों को सिखा दिया था कि वह सात्विक को मामा कहे, पर सात्विक को यह सब हास्यास्पद लगता है. छत के एक कोने में रागिनी के कपड़े सूख रहे हैं. न जाने क्यों सात्विक को वह बदरंग नज़र आ रहे हैं. वह रागिनी को पसन्द करता है, अच्छी इन्सान है ; न जाने क्यों कुछ भीतर से दरक गया है. दूरी के कारण तो प्यार बढ़ता है, यही सुना था उसने. यहाँ उसके मन में उथल-पुथल मची है. शरीर की ज़रूरत 'कुछ' है, मन की 'कुछ' और.

उसने सिर के नीचे हाथ का तकिया बनाया और सूरज की ओर पीठ करके खुली छत पर लेट गया. आँखें बन्द थीं, भीतर भट्ठी-सा दहक रहा था कुछ... ।

फोन की घंटी से सात्विक की तन्द्रा टूटी. उसने कान लगाकर सुनने की कोशिश की. कुछ पदचापों के सिवाय कुछ सुनाई नहीं दिया. उसने आँखें फिर बन्द कर लीं और दोनों हाथों को कवच की तरह सीने पर कस लिया. सुकर्मा और रागिनी उसे देख रही हैं. वह अपने-आपमें ही निश्छल बच्चे की

तरह मुस्करा रहा है.

रागिनी ने कहा, "फिलिप्स बेबी! उठो, बसन्त ने कहा है कि हम लोग आज कम्पनी गार्डन घूम आएँ."

सात्त्विक ने हैरानी से सवालिया निगाह फेंकी.

"यह बसन्त भी अजीब है, कठपुतली समझता है हमें."

"ऐसा क्यों कह रहे हो ?" रागिनी ने सकुचाकर कहा.

"और क्या ? वह चाहे तो हम सहस्रधारा चलें और वह चाहे तो हम कम्पनी गार्डन जाएँ... मैं सोना चाहता हूँ." पीठ घुमाकर आँखें बन्द कर लीं सात्त्विक ने.

सुकर्मा कुन्ती दी को फोन करने के लिए नीचे चली गई. वत्सला दूध का गिलास लेकर स्थिर बैठी है. रागिनी ने सात्त्विक को प्यार से छुआ, "चलो न, चलते हैं...सुकर्माजी ने पिकनिक के लिए आलू-पूरी भी बनाए हैं. वत्सला भी घूमने के नाम पर खुश है. फिर, घर बैठकर करना भी क्या है ? चलो, कम्पनी गार्डन हमें भी दिखा दो, सुकर्मा नर्सरी से कुछ डैफोडिल भी खरीदना चाहती है."

सात्त्विक मशीनी पुर्जे की तरह उठा और सीढ़ी उतरने लगा.

रागिनी ने सात्त्विक का पत्थर-सा कठोर बाजू थाम लिया. सात्त्विक को स्पर्श अच्छा लगा. निर्विकार भाव से वह कमरे में प्रविष्ट हुआ. जीन्स पहनी और बाहर बाल्कनी में आकर दोनों स्त्रियों की प्रतीक्षा करने लगा...।

सोलह

"गनहिल देखा है आपने?" सुकर्मा ने पूछा.

रागिनी ने 'नहीं' की मुद्रा मे सिर हिलाया.

"ठीक है, कभी चलेंगे."

"कल चलें क्या ?" सात्त्विक ने बच्चों की तरह उत्साह से कहा.

"नहीं, कल तो सहस्रधारा जाएँगे."

सात्त्विक की सवालिया निगाह के जवाब में रागिनी ने कहा, "यह भी तो बताओ कि बसन्त ने कहा है..."

सुकर्मा ने ऑख से घूरा और फिर हामी मे सिर हिलाया. सात्त्विक को बसन्त के मनमाने तौर-तरीके पर गुस्सा आया, "हमसे पूछे बिना ही हमारे लिए कार्यक्रम तय कर लेते हैं जनाब."

"अब तुम अपनी अमेरिकी विलायती डेमोक्रेसी पर भाषण नहीं देना प्लीज." रागिनी ने लहराते हुए कहा.

"हाँ, तुम सर्वहारावर्ग की तानाशाही पर कुछ कहो न ! हम सुनने के लिए बेताब हैं." सात्त्विक के व्यंग्य से रागिनी तिलमिला गई.

मौन साध लिया तीनों ने. वत्सला ने गुब्बारे की जिद की तो गांधी चौक पर टैक्सी रुकवाई. सात्त्विक ने गुब्बारों का गुच्छा ही खरीद लिया. वत्सला खुशी से झूम उठी. गुब्बारों को छूकर सुकर्मा भी खिल गई. सात्त्विक को भीतर तक सुकून मिला.

रागिनी ने लाल रंग के गुब्बारे पर लिखे शब्द पढ़े, "आई लव यू."

"वाह ! लव को गुब्बारे पर भी बिठा दिया !" सात्त्विक ने ताना कसा.

"सात्त्विक, तुम्हें क्या हो गया है ?" रागिनी ने कहा.

"कुछ नहीं..." सात्त्विक ने धीमे से कहा.

"जो मन में आता है, कहते हो." सुकर्मा बोली.

"चलो, अगली बार बसन्त से पूछेंगे, फिर बोलेंगे." सात्त्विक ने समर्पण में हाथ जोड़ दिए.

सुकर्मा ने हाथ नीचे करने का इशारा किया. रागिनी ने बाँह पर चिकोटी काट ली.

सात्त्विक सामने के शीशे से सड़क देखने लगा. सड़क के किनारे तिब्बती रेस्तराँ देखकर उसने पूछा, "मोमो खाओगी क्या ?"

रागिनी ने 'हाँ' कर दी.

सात्त्विक ने नीचे उतरकर मोमो के बारे में पूछताछ की.

"सुकर्मा, सात्त्विक बदल गए हैं." रागिनी की टिप्पणी थी.

"हाँ, देख रही हूँ." सुकर्मा की टिप्पणी थी. फिर कुछ गहरा सोचते हुए बोली, "वैसे तो सभी बदलते हैं, बदलना चाहिए भी."

सात्त्विक के वापस आने पर दोनों चुप हो गईं. तीनों ने पास के पत्थर पर बैठकर मोमो खाए और बेस्वाद-सी कॉफी पी.

कम्पनी गार्डन पहुँचकर सात्त्विक तो अकेला निकल गया. छोटी-सी झील को देखकर मुस्कराया और नाव में बैठ गया. उसके मन में पानी के प्रति जन्मजात मोह है. गंगा के किनारे बसने का ख्वाब बुना करता है. झील के पानी को चाहकर भी छू नहीं सका. वह रामेश्वर के समुद्र की याद में खो गया.

वत्सला गुब्बारों के साथ खुश है. ड्राइवर को उसका ध्यान रखने की ताकीद देकर सुकर्मा और रागिनी एक बेंच के पास घास पर बैठ गईं. कहीं से बीमार-सा एक कुत्ता पास आकर बैठ गया. रागिनी ने कुत्ते को देखा और चाय-वाले से एक कप दूध देने के लिए कहा. उसने जैसे ही कप कुत्ते के सामने रखा, चायवाले ने बावेला खड़ा कर दिया. सुकर्मा-रागिनी ने लाख समझाने की कोशिश की लेकिन चाय वाले का गुस्सा शान्त नहीं हुआ जबकि वे उस कप के लिए पैसे देने को भी तैयार थीं.

दोनों असहाय होकर नर्सरी की ओर चली गईं. सुकर्मा ने डैफोडिल्स की पौध खरीदी और पूछा, "नरगिस भी है क्या ?"

रागिनी चुपचाप देख रही है. सुकर्मा ने उसकी ओर देखकर कहा, "बसन्त को नरगिस पसन्द है."

"सब कुछ वही क्यों होगा जो बसन्त को पसन्द है ? आपकी अपनी पसन्द, अपनी कोई चाह?"

"नहीं, रागिनी, मैंने अपने अस्तित्व को उनके वजूद में गला दिया है...और तुम यह मत समझना कि बसन्त ने ऐसा करने के लिए मुझे मजबूर किया है. मैंने जो कुछ भी किया है, अपनी मर्जी से, पूरे होशोहवास में किया है."

रागिनी चकित थी और चुप भी.

"रागिनी ! तुम हमारे रिश्ते को समझ नहीं सकोगी. दरअसल दो लोगों में परस्पर जो घटित होता है, उसे वे दो लोग ही पूरी तरह से समझ सकते हैं. बाकी लोग तो कयास लगाने में यूँ ही अपना वक्त बरबाद करते हैं."

"मैं आपके रिश्ते के बारे में घटिया उत्सुकता के कारण नहीं पूछ रही हूँ. मैं सात्त्विक को खुश देखना चाहती हूँ. मुझे आभास हो रहा है कि सात्त्विक बदल रहा है." रागिनी ने भरे गले से कहा.

"रागिनी ! मानव-जीवन का नाम ही है विकास. यदि कोई बदलेगा नहीं, तो विकास कैसे होगा? तुम यह समझ लो कि हम दोनों भी इन सात बरस में बहुत बदले हैं." मुस्कराकर शरमाई सुकर्मा.

"जानती हो कि शादी के तुरन्त बाद, मैं दो चोटी में लाल रिबन लगाकर, स्कर्ट-बैल्ट पहनकर स्कूल जाती थी. मैं आज जो कुछ भी हूँ, बसन्त के कारण हूँ. एक माटी की गुड़िया को तराशकर उन्होंने भरी-पूरी औरत का स्वरूप दिया है. सबसे बड़ी बात, वत्सला का आना इतना अकस्मात् हुआ कि हम दोनों ही उसके लिए तैयार नहीं थे. मुझे वत्सला के बहाने, बसन्त का वत्सल-रूप मिला और अपने भीतर जागे वात्सल्य को पाकर मैं धन्य हो गई...तुम लोग बच्चे को आने दो..."

"सुकर्मा, बच्चे के लिए जो कुछ ज़रूरी है, वह अब हमारे बीच है ही नहीं." रागिनी का घुटता स्वर था.

"क्या मतलब...?" सुकर्मा ने आँख उठाकर झुका ली.

"सात्त्विक का कहना है कि उसके लिए सेक्स महज शारीरिक प्रक्रिया नहीं है. उसके लिए सेक्स आर्ट-फॉर्म है."

"ठीक ही तो है. हमारे यहाँ कामदेव को मन्मथ कहा जाता है. मन को जीते बिना शारीरिक स्तर पर एकाकार होना असम्भव है." सुकर्मा ने कहा.

"यह तो रहने दीजिए आप. इसी देश में बलात्कार होते हैं." रागिनी की प्रतिक्रिया थी.

सुकर्मा ने हैरानी से देखा, "हमें इक्का-दुक्का होनेवाले कुकर्म को रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का सामान्य हिस्सा नहीं समझना है. जहाँ मन की स्वीकृति नहीं है. विवशता है, वही पशुता है, वही पाप है."

"पाप-पुण्य की परिभाषा मैं नहीं समझती हूँ और मैं यह मान ही नहीं सकती हूँ कि हमारे बीच मन का रिश्ता नहीं है." रागिनी का आत्म-विश्वास पहली बार उभरकर आया, "मुझे याद है, मुम्बई में सात्त्विक सुबह से शाम तक दसियों फोन करता था और मेरी माँ के बाहर जाते ही वह मेरे घर आ जाता

था. मैं उसकी बाँहों में जाकर सातवें आकाश को छू लेती थी." सुकर्मा स्तब्ध थी. रागिनी अपनी धुन में बोलती रही, "सुकर्मा, मेरे भीतर की स्त्री को सात्विक ने जगाया था. उसने पहले मेरा मन जीता था."

"कैसे..." सुकर्मा ने सोचा कि उपहारों की सूची का ब्यौरा मिलेगा.

"अपनी वाणी से... उस समय वह पतला-दुबला युवक था. छः फीट की लम्बाई में उसका दुबलापन और अधिक खलता था." गहरा सोचते हुए उसने कहा, "निश्चित रूप से, वह शारीरिक रूप से स्वस्थ था. सुना था, अपनी ग्रैजुएशन के दौरान वह रैस्लिंग का चैम्पियन था." खिलखिलाकर हँस पड़ी वह. सुकर्मा नें हैरानी से देखा.

रागिनी ने चीड़ के कोंण को जमीन से उठाते हुए कहा, "उसकी वाक्पटुता का कोई सानी नहीं था. मार्क्स-लैनिन के भाषण कंठस्थ थे उसे. अपनी बात को वह इतनी विश्वसनीयता से प्रस्तुत करता था कि सामनेवाला निरुत्तर हो जाता. मेरे लिए वह ट्रेनिंग थी. उसने मुझमें आत्म-विश्वास भर दिया था. उसके वाणी के जादू से मैं वही महसूस करती या वही रूप धारण करती रही, जो वह कहता था."

सुकर्मा ने कल्पना की आँख से रागिनी के पुराने रूप को देखने की कोशिश की. रागिनी उससे दूर, कहीं और दुनिया में थी.

"सात्विक में अद्भुत ऊर्जा थी उस समय. उसके हाथ-पैर कुछ अतिरिक्त लम्बे दिखते थे. वह ऐसे बोलता था जैसे दूसरा शब्द पहले शब्द से पहले ही बोल ले. उसके एक आलिंगन से इतनी ऊर्जा का संचार मेरे भीतर भर जाता था... जंगली हो जाते थे हम. फिर भी कहीं कुछ कोमल था, बहुत सुन्दर. जलती बाती से पिघलते मोम-सा." दूर कहीं बादलों में उड़ चली रागिनी.

सुकर्मा ने सुना था कि शादी से पहले शारीरिक सम्बन्ध होते हैं. उसे इस बात का यकीन नहीं होता था. पहली बार, वह भी कोई लड़की खुले रूप से, अपने मुँह से विवाह-पूर्व शारीरिक सम्बन्धों को स्वीकार करे, उसका खुला वर्णन करे, यह तो उसकी कल्पना से परे था.

रागिनी ने सुकर्मा के चेहरे पर बदलते रंगों को पढ़ने की कोशिश की और गहरी साँस के साथ कहा, "अब वह ऊष्णता हमारे बीच क्यों नहीं है ?"

"सब ठीक हो जाएगा, धैर्य धरो." सुकर्मा ने रागिनी के कन्धे पर हाथ रखा तो उसे चेत हुआ.

उसने सुकर्मा की ओर ऐसे देखा, जैसे कि वह अपरिचित हो. फिर उसका हाथ पकड़कर खड़ी हो गई. सिर झुकाकर ज़मीन में आँखें गड़ा दीं उसने, "सात्विक बहुत आगे निकल गया है. मुझसे ही कुछ गलती हो गई."

"रागिनी ! जीवन में साथ रहने के लिए सेक्स के अलावा और भी बहुत कुछ मायने रखता है." सुकर्मा ने समझाया.

"मैं एक साधारण स्त्री हूँ. मेरी चाहत है, मेरी जरूरतें हैं..."

कोई स्त्री अपनी ज़रूरत की बात करे, यह भी सुकर्मा की सोच से परे था.

"...मैं इतने वर्षों में अधिकांश समय सात्त्विक से दूर रही हूँ. इस दौरान ऐसा भी नहीं था कि मेरे आस-पास आदमी नहीं थे. कभी किसी ने नज़दीक आने की कोशिश नहीं की, यह झूठा दम्भ भी नहीं है मुझमें. इतना स्वीकार करूँगी कि मैं सात्त्विक के सिवा अन्य किसी को अपना नहीं सकी. मेरे लिए प्रेम समर्पण के बिना शारीरिक सुख केवल वासना है."

रागिनी की बात को विराम देते हुए सुकर्मा नें सम्पुष्टि की, "तुम शत-प्रतिशत सही हो." अपनी ही बात की गूँज को अपने कान में महसूस करते हुए सुकर्मा को लगा, 'कहीं कुछ झूठ है.' उसका मन अधीर हो उठा.

उसने अपने सिर को झटका दिया कि यह सब समझने की क्षमता उसमें नहीं है. उसे बसन्त की बेहद ज़रूरत महसूस हो रही है. रागिनी की स्वतन्त्र विचारधारा से वह सहमत नहीं है. न जाने क्यों... रागिनी का एक-पुरुष-भोग्या रूप उसे बहुत अच्छा लगा. कहीं भीतर आश्वस्ति का भाव जागा.

"तुमने अपने जीवन में ऊँच-नीच के बावजूद अपने उसूलों से कोई समझौता नहीं किया है, यह तो अच्छी बात है." सुकर्मा ने रागिनी को यथार्थ के धरातल पर लाने की कोशिश की.

रागिनी ने हवा में हाथ हिला दिया, जैसे कि उसे कुछ भी पता नहीं है.

दोनों मिलकर सात्त्विक को ढूँढने के लिए चल पडीं.

"कहाँ चला गया, सात्त्विक ?" रागिनी बेचैन हो गई है.

दूर-दूर तक फैले उद्यान में 'सात्त्विक! सात्त्विक!' का स्वर गूँजा.

ढलते सूरज की रोशनी में एक पेड के मोटे तने के पीछे सात्त्विक दिखाई दिया.

सात्त्विक को अकेला देखकर, अकस्मात् सुकर्मा बेचैन हो गई वत्सला के लिए. सात्त्विक ने धैर्य बँधाने की कोशिश करते हुए कहा, "अभी मेरे साथ थी. घबराओ नहीं, मिल जाएगी." सुकर्मा और रागिनी इधर-उधर दौडने लगीं. पार्क में उपस्थित अन्य लोग भी इस ढूँढ़ में शामिल हो गए. पूरा कम्पनी गार्डन ही मानो वत्सलामय हो गया.

वत्सला आइसक्रीम की ठेली के पास बैठकर एक छोटे लड़के को कागज की नाव बनाते हुए देख रही थी. दोनों बच्चे चारों ओर की दुनिया से बेखबर

नाव को छोटी झील में तैराने को उत्सुक थे. अचानक अपने नाम की चिल्ल-पों सुनकर वत्सला रोने लगी. वत्सला की आवाज सुनकर सुकर्मा आइसक्रीम की ठेली की ओर भागी. वत्सला बेसब्री से रो रही थी.

सुकर्मा दोपहर से ही परेशान थी. वह किसी तरह अपने को समेटे हुए थी. सात्त्विक और रागिनी के साथ अन्य लोगों ने आश्चर्य से देखा, 'यह क्या...?' सुकर्मा तो वत्सला के स्वर-में-स्वर मिलाकर रोने लगी.

सुकर्मा के सिर पर हथौड़े चल रहे थे और सात्त्विक को दिल पर चोट लग रही थी. रागिनी ने अपना सन्तुलन नहीं खोया. उसने ड्राइवर को आदेश दिया, "जल्दी से कार निकालो. घर चलना है."

वे लोग घर से काफी दूर थे. रागिनी ने झपकी ली. सात्त्विक अगली सीट पर पीछे की ओर घूमकर बैठा रहा. उसने एक क्षण के लिए भी वत्सला का हाथ नहीं छोड़ा.

सुकर्मा भीतर पसरा हुआ सन्नाटा पी रही है.

घर पहुँचते ही इस सन्नाटे को कातर नज़रों और दबी सिसकियों ने निगल लिया. सुदीप और कुन्ती दी उससे आँखें चुरा रहे हैं. घर के अन्दर-बाहर भीड़ जुटी है.

भीड़ को चीरते हुए सुकर्मा सवालों से घिर गयी, 'बसन्त ज़मीन पर क्यों लेटा है? शायद अचेत हो गया है.'

सुदीप ने सात्त्विक का हाथ पकड़कर कहा, "हम लोग संपर्क करने की कोशिश कर रहे थे. फैक्टरी के झगड़े को किसी तरह निपटाकर बसन्त बस से मसूरी आ रहा था. मसूरी के आधे रास्ते में वह बस खाई में जा गिरी. अट्ठारह लोग मृत्यु के मुँह में एक साथ चले गए. पापा की सिफारिश के कारण हमें डैड बॉडी मिल सकी." उसकी रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं. सात्त्विक की आँख से अविरल अश्रुधारा बह रही है.

रागिनी सुकर्मा के साथ खडी है. आँसू रोकना असम्भव है. रमा की माँ ने वत्सला को चारपाई पर लिटा दिया और किनारे पर सिर रखकर क्रन्दन कर उठीं.

सुकर्मा शिला बन गई. शिला के भीतर झँझावात को उस समय कोई पढ़ नहीं सका... ।

भाग : दो

परिष्कार

सत्रह

घर का रंग बदल गया था. घर का रंग दीवारों से तय नहीं होता है. घर का रंग बनता है इन्सानों से, इन्सानी रिश्तों से, इन्सानी जज़्बातों से. सुकर्मा और वत्सला के लिए सारी दुनिया अजनबी-सी हो गई थी. पहले वाले चेहरे ही नहीं रहे थे चारों ओर. उन दोनों को देखते ही जैसे सबके चेहरे का रंग बदल जाता था.

सुकर्मा ने प्रकृति में सहारा ढूँढा. वह देवदार से घिरी काली लम्बी सड़क के सीने को चीरते हुए दूर किसी पहाड़ी मोड़ पर जाकर बैठ जाती. घंटों तक नीले आकाश को निहारती और जंगल के बदलते रंगों को दिमागी कैनवस पर उतारती.

वत्सला के लिए भी ढेरों रंग खरीद दिए हैं उसने. वह चाहती है कि वत्सला रंगों से खेलती रहे. इससे उसके उदास खयालों में व्यवधान नहीं आता. जब वत्सला स्कूल चली जाती, तो वह इन रंगों को घंटों तक पढ़ती रहती.

रागिनी ने कई बार उससे बात करने की कोशिश की. सुकर्मा 'हाँ, हूँ' से अधिक कुछ भी कह नहीं सकी.

बसन्त का बड़ा-सा चित्र उसके बेडरूम की दीवार पर टँगा है. वह रोज़ देवता की तरह उस चित्र पर नई माला सजाती. अगरबत्ती और दीया जलाती. उसके लिए वही शिव है, वही कृष्ण. एक पल के लिए भी बसन्त से जुदा नहीं हो सकी वह.

सात्त्विक-रागिनी एवं सुदीप-कुन्ती ने कई यत्न किए कि सुकर्मा अपने कवच से बाहर निकले. वे सब असफल ही रहे. सुकर्मा के भीतर कई बेलें उग आईं थीं. उन्हीं को काँटने-छाँटने के प्रयास में मौन साध लिया है उसने.

सुदीप ने पुलिस-कानून की जिम्मेदारी को निपटा दिया था. सात्त्विक नया टेप-रिकॉर्डर खरीद लाया. कभी लता मंगेशकर के भजन, कभी तलत महमूद की ग़ज़लें और कभी मुकेश के उदास गीत बजते रहे. एक दिन मीना कुमारी की नज़्म सुनकर सुकर्मा के धैर्य का बादल फटा. वह घुटनों में मुँह

देकर सुबकती रही.

सात्त्विक एक कोने में सिमट गया. रागिनी ने एक गिलास पानी दिया. फिर, गर्म दूध पीने के लिए आग्रह किया. सुकर्मा साँझ के समय सो गई और अगले दिन बारह बजे तक सोती रही. बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है. वत्सला और सात्त्विक कागज़ की नावें बना रहे हैं. रागिनी हमेशा की तरह अपनी डायरी लिख रही है. बसन्त की माँ रसोई में खाना पका रही हैं और पिताजी बाल्कनी में बैठकर अखबार पढ़ रहे हैं.

मॉनसून के जाने के साथ-साथ सबने अपने घर की राह ली. सात्त्विक को इंग्लैण्ड जाकर नई नौकरी की तलाश करनी थी. छुट्टी की ऐक्सटेन्शन न मिलने के कारण उसने पुरानी जॉब के लिए भारत से ही त्यागपत्र भेज दिया था. रागिनी ने कुछ दिन अपनी माँ के साथ रहने के बाद सात्त्विक के पास इंग्लैण्ड जाने का फैसला किया था.

अब सुकर्मा के परिवार के सदस्य थे : वत्सला, कुन्ती दी और सुदीप.

दुनियावी ज़िन्दगी की शतरंज पर सारे मोहरे बिठाने का काम सुदीप कर रहा था. वत्सला के स्कूल की फीस, बैंक के हिसाब-किताब, बीमा कम्पनी से पत्र-व्यवहार--सब कुछ सुदीप ने सँभाल लिया था. सुकर्मा तो सिर्फ हस्ताक्षर करने की औपचारिक्ता निभा रही थी.

एक दिन अपने सामने रखे पत्र से सुकर्मा चौंक गई; जैसे कि घने बादलों के बीच सौदामिनी की चमक देखकर डर गई हो. कुन्ती दी ने कहा, "सुकर्मा भाभी ! आपको अपने पैर पर खड़े होना है, कल से आप नौकरी शुरू करें. फैक्टरी के दफ्तर में आपको काम मिल गया है."

अविश्वसनीय नज़र से सुकर्मा ने सुदीप की ओर देखा, फिर कुन्ती दी का हाथ पकड़कर बोली, "मुझसे नहीं होगा, कुन्ती दी !"

"होगा, ज़रूर होगा ! आप इतनी कमज़ोर स्त्री नहीं हो कि किसी दूसरे के कन्धे पर बोझ बनकर जिएँ." सुदीप ने साधिकार कहा.

सुकर्मा ने सोचा, 'वाकई कुछ काम तो करना होगा. बरखा न हो, नये जल के स्रोत न बनें, तो कुआँ भी सूख जाता है, नदियाँ रीत जाती हैं.'

"वत्सला की खातिर, और फिर अकेले क्या करोगी दिन-भर ? काम में मन लगा रहेगा और जीने का नया रास्ता मिल जाएगा." कुन्ती दी की समझदारी से सुकर्मा अभिभूत हो गई.

उसने नियुक्ति-पत्र को उठाकर गौर से पढ़ा. चुपचाप बेडरूम में जाकर मन-ही-मन बसन्त से सलाह-मशविरा किया और ऊँचे स्वर में कहा, "ठीक है, जैसा आप ठीक समझें."

बसन्त के छोटे टाइपराइटर पर सुदीप ने नौकरी के लिए आवेदन-पत्र टाइप किया और सुकर्मा ने हस्ताक्षर करके पत्र को बसन्त के चित्र के सामने जलते दीये के पास सजा दिया.

सुकर्मा ने मुड़कर गहरी सोच में डूबते हुए कहा, "पिताजी से भी तो पूछना होगा..."

"आप ताऊजी से पूछने की बात कर रही हैं? यह सब हमने ताऊजी के कहने पर ही आपसे कहा है. उन्होंने ही हमें आपकी सब मार्कशीट की कॉपी दी." मुस्कराते हुए सुदीप ने कहा. "और हॉ, आपने हमें बताया ही नहीं था कि आप बी.ए. में फर्स्ट डिवीज़न से पास हुई हैं."

बसन्त ने मार्कशीट की प्रतिलिपि पिताजी को भी भेजी थी, इस बात से सुकर्मा हैरान थी यानी कि पिताजी की प्रगतिशील सोच ही बसन्त पर प्रभावी रही होगी, 'क्या मालूम उन्होंने ही सुकर्मा को आगे पढ़ाने की बात बसन्त से कही हो.'

"आप किस गहरी सोच में हैं? ताऊजी ने ही तो आदेश दिया है कि आपके लिए नौकरी की व्यवस्था की जाए. आपके पास दूसरा विकल्प है, गॉव में जाकर परिवार के साथ रहने का. ताऊजी आपको ग्रामीण परिवेश में रूढ़िगत तरीके से दयनीय रूप में नहीं देखना चाहते हैं. उनका मानना है कि आप प्रतिभाशालिनी हैं, मेहनती हैं, आपको अपने पैर पर खड़े होना चाहिए." सुदीप ने कहा.

"उन्हें तो आपके पुनर्विवाह पर भी परहेज़ नहीं है. हम आपको जानते-समझते हैं. इस दिशा में सोचना भी हमें बेकार लगा." कुन्ती दी ने जोड़ा.

ऐसे सुदृढ संबल को पाकर सुकर्मा धन्य हो गई, "आप मेरे लिए जो भी सोचेंगे, वह सही होगा. यह मेरा विश्वास है."

"आपको कल सुबह दस बजे देहरादून पहुँचना होगा. कुन्ती वत्सला के पास यहीं रहेंगी, आप मेरे साथ देहरादून जाएँगी." सुदीप ने सहज स्वर में कहा.

"जी!" सुकर्मा की 'हाँ' से दोनों को राहत मिली.

"आपको घर भी देहरादून में लेना चाहिए. रोज़ इतनी दूर से जाना-आना मुश्किल होगा." कुन्ती दी ने डरते-डरते निवेदन किया.

यह बात सुनकर सुकर्मा हिल गई, अब मसूरी छोडना असम्भव-सा प्रतीत होता है. यहॉ की हर चीज़ में बसन्त की स्मृतियाँ हैं. यहाँ की प्रकृति उसकी सबसे बड़ी मित्र है. यहाँ की पहाड़ियों और वादियों ने उसके हर सुख-दुःख में हिस्सेदारी निभाई है. इन सबके बिना वह कैसे जिएगी?

'बसन्त के बिना भी तो जी रही हूँ न! बसन्त की अनुपस्थिति में इन

हवाओं में साँस लेना दूभर लग रहा है. अब इन्हे भी छोड़ दूँ ?' सोचकर सुकर्मा ने उठते हुए कहा, "यह मुझसे नहीं हो सकेगा."

सुकर्मा की आँखों में तैरते आँसू और ठण्डे होते हाथ-पैरों का एहसास था सुदीप को. वह चुपचाप बाहर बाल्कनी में चला गया. कुन्ती तख्त पर बैठ गई, क्षण भर बाद ही अपने पैर पेट में घुसाकर औंधी लेट गई. बसन्त उसका भाई भी तो था. बसन्त की कमी उसे भी तो खलती होगी.

उन दोनों को सुकर्मा ने कॉफी दी और अपने लिए काली चाय बनाई. वत्सला नींद से जागी तो उसके लिए बोर्नविटा बनाया.

सुदीप ने पूछा, "बाज़ार से कुछ लाना है क्या ? मैं घूमने जा रहा हूँ."

"हूँ, देखती हूँ."

सुकर्मा ने चीजों की सूची को ध्यान से देखा, फिर सोचा, 'वह सारी चीजें सुदीप से कैसे मँगवा सकती है. वह बसन्त तो नहीं हैं न !'

"मैं भी साथ चलूँ क्या ?"

"नहीं, आप आराम करें." लेटी हुई कुन्ती की पीठ को देखकर उसने कहा.

"अच्छा, तो फिर आप सब्जी ले आएँ सिर्फ."

"क्या कठिनाई है? जब जा रहा हूँ तो सब कुछ ले आऊँगा." सुकर्मा जानती है कि सुदीप और बसन्त वर्षों पुराने दोस्त रहे हैं. उनके बीच हिसाब जैसी कोई बात उसने नहीं देखी है. उसको पैसे दिखाने का दुःसाहस वह नहीं कर सकती है.

उसने जिद की, "मैं भी साथ चलती हूँ."

"ठीक है." सुदीप ने कुन्ती से पूछा, "आप चलेंगी क्या ?" कुन्ती ने 'नहीं' कहा और फिर सिर घुमाकर आँखें बन्द कर लीं.

वत्सला की अँगुली पकड़कर दोनों सड़क पर आ गए. साँझ की ठंडी सिहरन सुखद थी. सुदीप वत्सला को कहानी सुना रहा था. सुकर्मा पीछे-पीछे चलती रही... ।

अठारह

सुबह फोन की घंटी सुनकर हकबकाकर उठी सुकर्मा. मन में फोन की घंटी का भय समा गया है.

"जी...कौन?" फोन उठाकर पहला सवाल था.

"आपके नये जॉब के लिए शुभकामनाएँ. मैं सात्त्विक बोल रहा हूँ."

"आपको कैसे मालूम?"

"क्यों, हम गैर हैं क्या, जो इतनी भी ख़बर न रहे? सुदीप से लगातार मेरी फोन पर बातचीत होती है."

सुकर्मा ने सोचा था कि वे लोग इंग्लैण्ड जाकर उन्हें भूल ही गए हैं.

"जी, आप कैसे हैं?" तुरन्त दूसरा सवाल उछला, "रागिनी कैसी है?"

"हम तो अच्छे हैं, आप अपना ध्यान रखें. रागिनी ने 'इन्टीरियर डेकोरेशन' का काम शुरू कर दिया है. मैं भी आजकल एक विज्ञापन-फिल्म में बतौर लेखक काम कर रहा हूँ. आगे अल्ला मालिक."

"आपका यह 'अल्ला मालिक' वाला यकीन बहुत अच्छा लगता है. हम नाहक ही फिक्र करते हैं."

"अरे, फिक्र तो करनी नहीं चाहिए. ईश्वर ने जन्म दिया है, अब तक पाला-पोसा है, आगे भी परवाह करेगा."

"जी..."

"वत्सला को 'किस' करना हमारी ओर से."

गर्म हथेली में बढ़ती ठण्डक को महसूस करते हुए सुकर्मा ने कहा, "जी, रागिनी को प्यार दीजिएगा."

अकस्मात् फोन कट गया. सुकर्मा ने रज़ाई में दुबककर पुनः सोने का असफल प्रयास किया.

कुन्ती ने चाय बनाई और सुकर्मा को आवाज दी, "भाभी, आपको चाय वहीं दूँ या बाहर आएँगी, हमारे साथ पीएँगी?"

"जी..." कहकर सुकर्मा तुरन्त बाहर आ गई.

चाय पीकर दैनिक दिनचर्या अपनी धुरी पर चलने लगी. सुदीप वत्सला को स्कूल छोड़ने के लिए चला गया. जब तक वह वापस आया, सुकर्मा तैयार हो गयी.

सुकर्मा तनिक भयभीत थी. वह जाने से पहले अपने बेडरूम में बसन्त के चित्र के पास चुपचाप बैठी रही. सुदीप और कुन्ती ने धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की. सुदीप ने घड़ी की ओर देखा, तो कुन्ती ने भीतर जाकर सुकर्मा के कन्धे पर हाथ रखा. दोनों बिना किसी शब्दिक संवाद के बाहर आ गईं.

सुदीप ने देखा, बिन कहे दोनों एक-दूसरे का मनोबल बढ़ाने की कोशिश कर रही हैं.

सुदीप ने टैक्सी का दरवाजा खोला. ड्राइवर भागकर पीछे आया, "आप बैठिए, कुन्ती दी !" सुकर्मा ने इज्ज़त दी.

कुन्ती ने कहा, "आप चलिए, मैं तो यहीं रहूँगी."

सुकर्मा ने सूनी निगाहों से घर की ओर देखा और झुककर कुन्ती दी के पैर छुए. सजल नेत्रों से टैक्सी में बैठ गई. ड्राइवर ने दरवाज़ा बन्द किया. रास्ते भर सुकर्मा पेड़ों को ऐसे देखती रही, जैसे कहीं किसी छोर से बसन्त बाहर आएगा.

'इन्सान की सारी इच्छाएँ पूरी हो जातीं तो यह दुनिया कुछ और तरह की होती. दुनिया का नियामक तो कहीं छुपकर बैठा है. वही जानता है कि सही क्या है. उसकी अपनी दीर्घसूत्री योजनाएँ हैं. इन्सान उसमें दखल देने की कोशिश न करे, तो ही बेहतर !' सुकर्मा भाग्य के खेल के आगे नतमस्तक है.

उसने कब सोचा था कि वह कभी नौकरी करने के लिए घर से बाहर जाएगी. यह भी कब सोचा था कि वह कभी पढेगी. 'बसन्त ने मुझे न पढाया होता !' सोचकर सिहर गई वह. "ईश्वर की जो मर्जी," सुकर्मा के होंठ हिले.

सुदीप ने मुड़कर देखा. उसकी आँखों में सवाल उमड़ आया. सुकर्मा ने ऑखें बन्द कर लीं.

उसका आँचल हवा से हिल रहा है. उसने साड़ी को बदन पर कस लिया और खिड़की बन्द कर दी. अपने और दुनिया के बीच हाशिया खींचना सीख लिया है उसने. किसी को भी उस दायरे में प्रवेश की इजाज़त नहीं है.

सुदीप ने अपने दोनों हाथों की लकीरों को गौर से देखा. सुकर्मा को बसन्त की याद हो आई. वह प्राय: अपनी लकीरों को पढ़ता था. वह नहीं जानता था कि उसकी उम्र की लकीर इतनी छोटी है. सुकर्मा का विश्वास था कि ईश्वर ने उसकी आयु इतनी कम नहीं लिखी होगी. वह तो अप्राकृतिक मृत्यु का ग्रास बन गया.

इसके ठीक विपरीत लोग यह सोचते हैं कि ईश्वर ने बसन्त की अल्पायु के कारण ही सुकर्मा के जीवन को ऐसे डिज़ाइन किया. शादी के बाद बसन्त ने स्वयं उसे पढाया, जैसे वह जानता था कि सुकर्मा को अकेले रहना होगा. अकेले रहने के लिए स्त्री का शिक्षित होना कितना ज़रूरी है वरना विधवा स्त्री एकाकीपन के बोझ के साथ दूसरे की दया का पात्र बनने के दु:ख को भी सहती है.

सुकर्मा ने हरिद्वार, वाराणसी में स्त्रियों को गंगा घाट पर देखा था. उस समय वह नहीं जानती थी कि ये स्त्रियाँ सिर क्यों मुँडा लेती हैं? बसन्त के जाने के बाद तरह-तरह की कहानियाँ सुनते हुए उसका हृदय वाग्-शूल सहने का आदी हो गया है.

सुदीप की सोच सही है. सुकर्मा को नौकरी करनी चाहिए. सरकारी नियम से उस फैक्टरी में नौकरी का हक भी तो है उसके पास; हालाँकि बसन्त के स्तर की नौकरी तो उसे नहीं मिल सकती है. जो भी हो, नौकरी तो नौकरी है. नौकरी से समाज में सम्मान बढ जाता है. व्यस्तता के साथ-साथ काम जीने का बहाना भी बन जाता है. आर्थिक आत्म-निर्भरता आत्मविश्वास की कुँजी भी है.

'काम में लगा रहने से मन इधर-उधर भटकता नहीं है.' बसन्त के पिताजी का यह तर्क सुदीप को सही लगा था.

अपरिमित सौन्दर्य की सम्राज्ञी सुकर्मा की आयु भी तो सिर्फ तेइस वर्ष थी. अधिकांश युवतियों की तो इस उम्र में शादी भी नहीं होती हैं. बिन कहे ही सुदीप ने सुकर्मा के लिए ढाल बन जाना स्वीकार कर लिया था. बसन्त के जाने के बाद एक दिन के लिए भी सुकर्मा अकेली नहीं रही.

सात्त्विक ने सुदीप के पास डॉलर भेजे थे. वे सब जानते हैं कि वे सुकर्मा के दु:ख को कम नहीं कर सकते हैं. उसकी आर्थिक कठिनाई को जरूर कम कर सकते हैं.

सुकर्मा स्वाभिमानिनी है. वह किसी से एक पैसा लेने को भी तैयार नहीं है. वैसे भी बसन्त के जाने के बाद उसकी जरूरतें सिमट गई हैं. कुन्ती दी और रागिनी की जिद के आगे उसने सफेद कपड़े पहनने की अपनी जिद को छोड़ दिया है. अपने-आप ही गाढ़े चमकीले रंगों के कपड़े बक्से में बन्द हो गये हैं.

कुन्ती दी को सुदीप ने समझाया था, "धैर्य रखो. धीरे-धीरे समय के साथ ही ज़ख्म भरता है."

यह तो गहरा ज़ख्म है. सुकर्मा ने उस पर कभी खुली हवा-धूप का साया पड़ने ही नहीं दिया, तो फिर यह घाव भरता कैसे? कहीं भीतर, बहुत गहरे

समेट लिया था सारा दु:ख. चेहरे पर विषाद के साथ-साथ अजीब शान्ति का नूर आ गया है.

निर्विकार भाव से जीने का अन्दाज़ आ जाए, तो दलदल में कमल के पत्ते की तरह हो जाता है औरत का मन. छोटे-बड़े दुखों से उमड़े आँसुओं की बूँदें सूखने से पहले फिसलकर गायब हो जाती हैं.

राह में वह स्थान देखकर सुदीप का मन विदीर्ण हो गया, जहाँ पर बस-दुर्घटना हुई थी. सुदीप के दिल पर वह हृदय-विदारक दृश्य अमिट छाप छोड़ गया है. उस दिन के बाद वह कभी चैन की नींद सो नहीं सका है. लहू का इतना विकृत रूप कोई कैसे भुलाए ! रक्त जीवन के लिए ज़रूरी है, उसका हरे पत्ते पर उफनकर बिखर जाना जीवन के ह्रास का भीषणत्तम रूप था. सड़क पर जिस स्थान पर बसन्त को कुछ देर के लिए रखा गया था, वह भी लहू से भर गया था.

'जवान पुरुष की धमनियों का अनमोल रक्त ज़मीन पर !' सुदीप ने आँखें बन्द कर लीं. उसके चेहरे पर उभरती लकीरों को सुकर्मा ने गौर से देखा.

फैक्टरी के सामने पहुँचकर सुकर्मा के पैर काँपने लगे. सुदीप ने उसे गिरने से पहले थाम लिया. चौकीदार भागकर आ गया. पानी पीकर सुकर्मा सुदीप की बाँह का सहारा लेकर मैनेजर के ऑफिस में पहुँची. उन्होंने खड़े होकर सुकर्मा का स्वागत किया. उनको लगा, सुकर्मा मुरझा गई है.

"मैडम! आपको कुर्सी पर बैठना है बस! हम आपको कोई तकलीफ नहीं होने देंगे." मैनेजर ने विनम्र स्वर में कहा.

"जी, मैं काम करने के लिए आई हूँ. सीखने में थोड़ा वक्त लग सकता है...मैं पूरे मनोयोग और निष्ठा से काम करना चाहूँगी." सुकर्मा के अप्रत्याशित उत्तर से सुदीप का कद गर्व से ऊँचा हो गया.

मैनेजर साहब ने हकलाते हुए कहा, "दरअसल एकाउन्ट्स आप कैसे सँभालेंगी. टाइपिंग आपको आती नहीं होगी."

"मैं एकाउन्ट्स कर सकती हूँ. बैलेंस-शीट की बारीकियाँ सीख लूँगी और टाइपिंग का तीन महीने का कोर्स तो मैंने किया है." सुकर्मा में न जाने कहाँ से आत्मविश्वास जाग गया है.

"जी, मैं आपको एकाउन्ट्स में अटैच कर देता हूँ. जितनी देर भी आप ऑफिस में बैठना चाहें..."

सुकर्मा ने वाक्य पूरा होने से पहले कहा,"ऑफिस टाइमिंग क्या है ?"

"जी, दस से पाँच." मुखर्जी साहब असहज हो गए थे.

"ठीक है." सुकर्मा ने कहा.

"नहीं, आपको इतनी दूर से आना है. बच्ची भी अभी पाँच साल की है, जो आपको सहूलियत हो, उसी हिसाब से अपने लिए आने का समय तय कर लें..."

"मैं कल दस बजे पहुँच जाऊँगी." सुकर्मा की आवाज़ की दृढ़ता से सुदीप को भी आश्चर्य हुआ. वह बहुत खुश है. उसका जी चाहता था कि सुकर्मा को पीठ थपथपाकर शाबाशी दे.

"नहीं, आपको दूर से आना है." आखिरी कोशिश की मुखर्जी साहब ने.

"मैं जल्दी-से-जल्दी यहाँ आस-पास घर ले लूँगी." उठते हुए सुकर्मा ने कहा.

अपनी असहजता को ढकने के असफल प्रयास में मुखर्जी साहब ने कहा, "आप काम शुरू करें, स्पीड धीरे-धीरे बढ़ जाएगी."

सुकर्मा ने कठोर दृष्टि से उन्हें देखा. वह हिल गए. सुदीप मन-ही-मन मुस्कराया.

दोनों ने फैक्टरी का एक चक्कर लगाया. मज़दूरों ने झुक-झुककर नमस्ते की. ऑफिस-स्टाफ ने भी सुकर्मा को श्रीमती बसन्त के रूप में सम्मान दिया. सुदीप सबसे परिचित है. आई.आई.पी. की नौकरी में जाने से पहले उसने यहीं पर वैज्ञानिक की हैसियत से नौकरी की थी. कैन्टीन में बैठकर दोनों ने चाय पी.

सुकर्मा और सुदीप एक ही नाव में सवार हैं. उनका नाविक बसन्त कहीं खो गया है. वे दोनों अपनी दिशा खोजने के लिए बेकाबू होकर चप्पू चला रहे हैं मानो.

'समुद्र की कुछ लहरें कभी भी किनारे तक नहीं पहुँचती हैं.' सुदीप ने सोचा. उसने सुकर्मा की ओर बिना देखे पूछा, "आपके लिए शौर्ट-हैण्ड का संस्थान ढूँढा जाए क्या ?...या घर में ही किसी लड़के का इन्तजाम कर देता हूँ. वह रोज़ शाम को एक घण्टा अभ्यास करा देगा."

सुकर्मा ने धीमे स्वर में कहा, "मेरे खयाल से इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी. मुझे सीखी हुई बातें भूलती नहीं हैं और अभ्यास तो काम करते हुए हो ही जाएगा."

सुदीप ने सुकर्मा का ऐसा आत्मविश्वास पहले कभी देखा नहीं था. वह मन-ही-मन इस बात से आश्वस्त हो गया कि सुकर्मा अपना काम भली-भाँति सँभाल लेंगी. उसे औरत का दयनीय रूप कभी भी अच्छा नहीं लगा. सच बात तो यह है कि सुकर्मा को दया की पात्र के रूप में वह न स्वयं देखना चाहता है और न ही अन्य लोगों से ऐसी अपेक्षा करता है...।

उन्नीस

'बसन्त अपनी प्रतिबद्धता के लिए मशहूर था. वह काम के प्रति, अपने परिवार के प्रति पूर्ण निष्ठावान् था. उसका यह गुण सुकर्मा की धमनियों के प्रवाह में एकरंग हो गया था. किसी भी तरह अपनी प्रतिबद्धता से उसे कोई डिगा नहीं सकेगा.' इस आश्वस्ति से सुदीप अपने-आपमें खुश है. यह उसका पुरुषोचित अहम् है या अपने सखा-सम्बन्धी बसन्त के प्रति निष्ठाभाव...! वह सुकर्मा के लिए बसन्त की पत्नी के रूप के अतिरिक्त अन्य किसी स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सकता है. दरअसल, जब बसन्त के पिताजी ने पुनर्विवाह की बात की थी, तो सुदीप ने ज़रूरत से ज्यादा जोर से प्रतिवाद किया.

"नहीं, नहीं, सुकर्मा की दूसरी शादी असम्भव है."

दामाद के रुख को भाँपकर वह दुबारा कभी भी इस बात का जिक्र नहीं कर सके, जबकि वह आर्य समाज की सोच से प्रभावित थे. अपनी प्रगतिवादी सोच के कारण विधवा पुनर्विवाह में विश्वास रखते थे. अकसर वह दकियानूसी रूढियों और समाज की स्टीरियो-टाइप रिवाज़ों पर भी नाक-भौं सिकोड़ लेते थे.

उनका विश्वास था कि व्यक्ति को पूरे समाज के बदलने की प्रतीक्षा करने की ज़रूरत नहीं है. हरेक व्यक्ति को अपने उसूलों के अनुसार निडर होकर काम करना चाहिए. फिर भी, दामाद से तर्क करने की हिम्मत नहीं थी उनमें. विशेष रूप से, उस दामाद से जो केवल कुन्ती का पति ही नहीं अपितु बसन्त का मित्र भी है.

सुदीप का ही प्रभाव था कि उनके भाई भी सुकर्मा की दूसरी शादी के पक्ष में नहीं थे. उन्हें अभी सुकर्मा की दो बहनों की शादी करनी है. उनका कहना है, "सुकर्मा अभी तेईस बरस की है. पहले राधा और वर्षा की शादी हो जाने दो. तीन बरस बाद उसके बारे में सोचेंगे."

बसन्त के पिता ने इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए सुकर्मा की नौकरी का विचार किया था. वे नहीं चाहते थे कि वह चढ़ती उम्र में बुजुर्गों

के तानों और बंदिशों को सहने को मजबूर हो. सुदीप भी इसके लिए तैयार है. उसने सुकर्मा की नौकरी के लिए भाग-दौड की. कुन्ती ने सुकर्मा का निरन्तर साथ दिया.

बिन कहे ही कुन्ती सुकर्मा की माँ जैसी बन गई है. सुकर्मा के शरीर में उसके भाई का अंश पल रहा है. वह अनजाने में ही उस अजन्मे शिशु से इतना अधिक लगाव महसूस करने लगी है. न जाने उसे कैसे विश्वास हो गया है कि नये शिशु के रूप में बसन्त जन्म लेगा.

सुकर्मा ने नौकरी के लिए हर रोज़ देहरादून जाने का सिलसिला शुरू किया, तो वह बेचैन हो उठी. वह नहीं चाहती थी कि सुकर्मा रोज़ सफर करे, विशेष रूप से पहाड़ी रास्तों पर. वह प्रतिदिन सुदीप और सुकर्मा के साथ देहरादून आने लगी. वे दोनों अपने-अपने काम के लिए चले जाते तो कुन्ती सुकर्मा के लिए घर ढूँढ़ने के लिए निकल जाती.

वह चाहती थी कि सुकर्मा उनके साथ ही उनके सरकारी आवास में रहे. सुकर्मा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया. आखिर कालिदास रोड की ढलान पर एक मकान किराए के लिए खाली मिला. मकान-मालिक की दो लड़कियाँ कॉलेज में पढ़ रही हैं. वह स्वयं कभी सरकारी कर्मचारी रहे थे. अवकाश-प्राप्ति के बाद स्थानीय सिनेमाघर का हिसाब-किताब देख रहे हैं. सुदीप को भी यह व्यवस्था सही प्रतीत हुई.

इतवार को सुकर्मा ने मसूरी से भारी मन से विदा ली और देहरादून आकर नये सिरे से अपनी गृहस्थी की शुरुआत की. हर क्षण बसन्त की याद घेरे रही उसे. वास्तव में, उसने यह घर भी ठीक उसी तरह व्यवस्थित किया, जैसे कि उन दोनों ने मिलकर मसूरी में किया था. खिड़कियों की लम्बाई पर्दों से अधिक थी, तो भी उसने पर्दों के नीचे झालर लगाना तो स्वीकार किया, पर्दे नहीं बदले.

चारों ओर बसन्त की उपस्थिति का आभास होता है. उसके शरीर के भीतर बसन्त का जीवन नई साँसें भर रहा है. वह रात-रात भर बसन्त को महसूसते हुए करवटें बदलती रही. देखते-देखते नौवाँ माह आ गया.

उसने ऑफिस में डिस्पैच का काम अच्छी तरह सँभाल लिया. उसके ऑफिस इन्चार्ज मुखर्जी साहब खुश हैं उससे. उन्होंने उसकी छुट्टी की अर्जी गिल साहब के दफ्तर में भिजवाई और नये भर्ती हुए पंकज को डिस्पैच का काम समझने का आदेश दिया.

सुकर्मा को छः माह की वरिष्ठता का भान हुआ और उसने रजिस्टर-चाबी पंकज को सौंप दिये. इस मुलाकात में ही दोनों के बीच सौजन्यता का जो

रिश्ता कायम हुआ, वह ताउम्र निभता रहा.

सुकर्मा के यहाँ पुत्र के जन्म की खुशी में फैक्टरी में पूजा की गई और प्रसाद बाँटा गया.

कुन्ती ने नये शिशु की पहली किलकारी पर कहा, "बसन्तऽऽऽ"

सुकर्मा के आँसू बह चले, "बसन्त का सौरभ."

पहले दिन नर्स ने सौरभ को कुन्ती की झोली में डाला था और कुन्ती ही उसकी असली माँ बन गई. कुन्ती नहीं जानती थी, कब सुबह हुई और कब रात. वह तो सुकर्मा के खाने-पीने की व्यवस्था के साथ सौरभ की परवरिश में तन-मन से जुट गई.

तीन सप्ताह बाद ही सुकर्मा ने जिद करके ऑफिस जाना शुरू कर दिया. ऑफिस के लोग उसकी काम के प्रति निष्ठा से प्रभावित हैं. दफ्तर की अन्य स्त्रियों के लिए वह ईर्ष्या का कारण बन गई. लोग उसके नाम से उदाहरण देते थे कि वह अपने स्त्रीत्व के तकाज़े पर काम में कोई अतिरिक्त लाभ नहीं लेती है. वस्तुतः कई पुरुषों से बेहतर काम कर रही है वह.

मुखर्जी साहब ने उसे कार्मिक विभाग में ले लिया है. धीरे-धीरे वह वेतन का रजिस्टर बनाना सीख गई. वेतन का भुग़तान फैक्टरी में सबसे ज्यादा जिम्मेदारी का काम समझा जाता है.

सुकर्मा ने दफ्तर में ही नहीं, अपितु फैक्टरी में भी अपनी जगह बना ली है. आम मज़दूर के लिए वह बसन्त की पत्नी ही नहीं, बल्कि उन सबके लिए अन्नपूर्णा है. आम मज़दूर के लिए वेतन देनेवाला भगवान से कम तो नहीं होता न!

वेतन के लाल रजिस्टर में आँकड़े भरते हुए सुकर्मा का हाथ 'क्वालिटी कन्ट्रोलर' के सामने हमेशा थम जाता था. उस नाम को वह सिर्फ बसन्त के रूप में ही पढ़ना चाहती थी. संजय भट्ट को भी प्राय: अपराधबोध महसूस होता है, जैसे कि उसने सुकर्मा के घर डकैती की हो. बसन्त के सामने वह फैक्टरी में अपने विद्यार्थी-समूह के साथ एजुकेशनल टूर पर आया था. दुर्माला में पहाड़ के सीने पर होते विस्फोट से वह घबरा गया था, तो बसन्त ने उसे थाम लिया था, "यंग मैन, प्रगति के सिद्धान्त को समझो. यह खाद में प्रयोग होने वाला द्रव्य... न हो तो हमारे खेत उर्वरक कैसे होंगे."

"जी, उर्वरक नहीं होंगे, तो निरन्तर बढ़ती जनसंख्या का पेट कैसे भरेगा..?" संजय ने रटा हुआ वाक्य दोहराया और मन-ही-मन सोचा, 'हम जनसंख्या को बढ़ने से रोक लें, तो पहाड़ को छीलना नहीं पड़ेगा.'

उसकी चिन्तन-मुद्रा को देखते हुए बसन्त ने सवाल किया था, "तुम कुछ

और सोच रहे हो क्या?"

"जी, सर..." संजय ने उत्तर दिया और जाकर बस में बैठ गया. वह बसन्त से बहस करने की बात सोच ही नहीं सकता है. फिर भी, सोचने के लिए तो हरेक को स्वतन्त्रता है. वह सोच रहा है, 'क्यों न कुछ बरस के लिए शादी पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए !' उस समय उसे इस बात का आभास ही नहीं था कि बच्चे शादी के बिना भी हो सकते हैं.

सुकर्मा के शिशु की खबर से भी उसकी भृकुटि पर सवाल चिपक गया, 'एक और शिशु का आगमन यानी कि जनसंख्या वृद्धि...!'

अब वह नौकरी पर आ गया था. स्वयं दुर्माला और हर्रावाला के बीच 'शटल-कॉक' की तरह आने-जाने के क्रम में कहीं-न-कहीं बसन्त का नाम संग रहता था. आखिर वह बसन्त के स्थान पर काम कर रहा था. कई बार उसने सुकर्मा की घूरती आँख को सहा था.

धीरे-धीरे सुकर्मा सहज होने की कोशिश कर रही है. काम में दिन का आना और जाना मालूम नहीं होता है. सुबह और शाम सौरभ के नाम है. छुट्टी का दिन वत्सला के बोर्डिंग स्कूल आने-जाने में बीत जाता है.

कुन्ती और सुदीप ढाल बनकर संग खड़े हैं निरन्तर. कौन कह सकता है, कुन्ती बसन्त की चचेरी बहन है? वह तो अपनों से भी ज्यादा सगी बहन बन गई है. सौरभ के पालन-पोषण का दायित्व तो उसने अपने ऊपर ले लिया है. सुदीप को भी वह सुकर्मा के कामों में अपने साथ लगाए रहती है. स्वयं दोनों ने नि:संतान रहने का व्रत-सा ले लिया हो जैसे. ब्याह के बन्धन से वे दोनों पति-पत्नी की भूमिका निभा रहे हैं. एक कमरे में सोने की रस्म भी निभा रहे हैं. प्राय: कुन्ती की रातें भी सौरभ के बिस्तर बदलने में निकल जाती हैं.

सुदीप ने कभी शिकायत नहीं की. शरीर की ज़रूरतें उसके लिए अहम् स्थान पर कभी भी नहीं रहीं. याद है उसे, जब बसन्त-सुकर्मा के चहकने से ही अभिभूत रहता था वह. कुन्ती के साथ शादी होने के बाद वैसी अनुभूति उसे कभी नहीं हुई.

उन दोनों के बीच रस्मी विवाह का नाता बहुत मजबूत है. प्रतिबद्धता को दोहराने के लिए दैहिक स्तर पर रोज़-रोज़ जुड़ना ज़रूरी नहीं रह गया है.

चाय की चुस्कियों के साथ सात्त्विक के फोन की प्रतीक्षा करते-करते सोना रुटीन बन गया है. कुन्ती ने सुदीप को रजाई ओढ़ाई और बत्ती बन्द करके आँखें मूँद लीं...।

बीस

गत पाँच दिनों से सात्त्विक का फोन न आने के कारण सुदीप बेचैन है. सात्त्विक सप्ताह में कम-से-कम तीन बार फोन जरूर करता है. वह हर माह वत्सला और सौरभ के नाम सौ-सौ डॉलर के ड्राफ्ट भी भेजता है. सुकर्मा का हाल-चाल जानने के लिए सात्त्विक कुन्ती और सुदीप से ही सम्पर्क कर सकता है. देहरादून में सुकर्मा के घर पर टेलीफोन की सुविधा नहीं है और ऑफिस में फोन करना ठीक नहीं है. दस तरह से सोचनेवाले लोग होते हैं. अकेले सिर उठाकर जीने के लिए स्त्री एक नहीं, हजार लक्ष्मण-रेखाएँ अपने चारों ओर खींच लेती है.

सुदीप ने कठोरता से कहा था, "सात्त्विक ! कभी भी यह नहीं समझना कि सुकर्मा कमजोर स्त्री है. वह अपने पैरों पर खडा होना जानती है."

"मैं अच्छी तरह से जानता हूँ. बसन्त के साथ होते हुए भी वह कभी मुझे कमज़ोर नहीं दिखी. अपने फैसले खुद करना जानती है वह."

सुदीप का स्वर मुलायम हो गया था, "मेरा कहने का आशय यह है कि वह बसन्त के नाम के सहारे को छोडेगी नहीं."

"ऐसा करने की ज़रूरत भी नहीं है. बसन्त उसके जीने का संबल है ...फिर, भारत में पुरुष के नाम का साथ जुड़े रहना बेहतर भी है." सात्त्विक ने कहा था.

"हाँ, तुम ठीक ही करते हो, मुझे फोन करते हो. गलती से भी सुकर्मा को दफ्तर में फोन नहीं करना. यहाँ के लोग स्त्री के साथ पुरुष के नाम जोड़ने की जल्दी में रहते हैं." सुदीप ने अपनी तंगदिली नि:संकोच जाहिर कर दी थी.

सात्त्विक ने स्वर बदलते हुए कहा, "रागिनी की तबीयत आजकल ठीक नहीं है. वह हॉस्पिटल में है."

"क्यों, क्या हुआ ?" सुदीप ने पूछा.

"बेबी आनेवाला है."

"ओह, वेरी गुड!" सुदीप को राहत मिली हो जैसे. हाशिए खिंचे रहें तो सुरक्षा का आश्वासन रहता है.

पिछले कुछ दिनों से सुदीप आशंकित-सा रहता था कि सात्त्विक सुकर्मा के बच्चों के लिए पैसे क्यों भेज रहा है! कहीं उसके मन में सुकर्मा के लिए अतिरिक्त लगाव तो नहीं है? शायद इसीलिए उसने एक बार फिर कहा, "अब तो तुम रागिनी का पूरा खयाल रखो. यहाँ की चिन्ता नहीं करो. सुकर्मा सँभल गई है, वत्सला बोर्डिंग में है और सौरभ को कुन्ती सँभाल रही है."

बिना प्रतिक्रिया दिखाए सात्त्विक ने कहा, "अच्छा, सुदीप, बाय, बाय!"

फोन कटने की आवाज़ सुदीप के सिर में हथौड़े-सी बजी. उसने खिडकी से बाहर झाँककर देखा, दूर कहीं ढोल बजने की आवाज आ रही है. 'शादी हो या रामलीला, यह ढोल तो बजता ही रहता है.' उसने सोचा. पास ही रखे अखबार की सुर्खियों में खबर है, 'जनता पार्टी में परस्पर मतभेद.'

सुदीप ने अखबार पलटकर रख दिया. सरकार के बनने-बिगड़ने में उसकी रुचि कम हो गई है, कहाँ बसन्त के साथ घंटों राजनीति पर चर्चा होती थी. आपातकाल के दौरान तो छुप-छुप कर गोष्ठियाँ भी आयोजित होती थीं. अब तो सब रुटीन-हो गया है. नौकरी की औपचारिकता, शाम को सुकर्मा के घर का चक्कर, रात को सात्त्विक से फोन पर बात, फिर कुन्ती और सौरभ के अबूझे वार्तालाप को सुनते हुए निद्रा में खो जाना—यही रोज़ का क्रम है.

कुन्ती का चौकोर चेहरा कसे बालों में और भी चौड़ा दिखता है. सूती धोती में कसा-बँधा शरीर एकदम सपाट लगता है. सौरभ को कमर पर बिठाए वह इधर-से-उधर घूमती हुई नर्स की फुर्ती की याद दिलाती है. सुदीप को याद है, उसने बसन्त से एक ही चीज़ की माँग की थी, "लड़की छुईमुई-सी नाज़ुक नहीं होनी चाहिए. मुझे मजबूत औरत चाहिए, जो थके नहीं और फालतू नखरे न करे."

अन्य लड़कों से अलग सुदीप की इस तरह की माँग सुनकर बसन्त ने उसे हैरानी से कुरेदा था, "यार, मुझे भी ईमानदार और मजबूत लड़की की चाह थी. फिर भी, मैं फँसा तो सुकर्मा के खूबसूरत आकर्षण मे ही न! तुम कोई भी फैसला करने से पहले अच्छी तरह से सोच लो."

सुदीप ने अडिग स्वर से कहा था, " मैं अपनी पूरी उम्र किसी औरत के नाज़-नखरे उठाने में ही नहीं बिता सकता हूँ."

इसी बातचीत के दौरान बसन्त को मालूम हुआ, यह सुदीप की बचपन की यादों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी. उसकी मम्मी सेना-अधिकारी की बेटी

थीं. वह उसके पुलिस अधिकारी पिता के लिए ताउम्र सिरदर्द ही बनी रहीं. वह तो अपना पर्स भी सिपाही से ही उठवाना चाहती थीं. अकसर सुदीप को शर्म आती थी कि मम्मी का दिन बीमारी के बहाने से शुरू होता और शाम डॉक्टर को बेवजह सिरहाने बिठाए बिताती थीं.

सुदीप का समय नौकर के साथ बीतता था. स्कूल में छुट्टियाँ होते ही वह चाचा के घर जाना पसन्द करता था. उसकी चचेरी बहन मेखला उसकी हमउम्र थी और भाई मेघ उससे कई वर्ष छोटा था. वह और मेखला दिनभर मस्ती करते थे और मेघ को जी भरकर चिढ़ाते थे. मेघ खुद ही उससे दूर छिटक जाता था और उसने अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए पढ़ने की आदत बना ली थी. किताबों से घिरकर उसे यह मालूम ही नहीं होता था, कब साँझ ढल गई और कब सुबह हुई. रात के खाने के समय भी वह अपनी किताब में आँख गड़ाए रहता था.

सुदीप उसके लिए बड़ा भाई था, जिससे बात करने में उसे अजीब-सा डर लगता था. मन से सुदीप अपने चाचा-चाची के नजदीक था और मेखला मेघ के साथ भावनात्मक रूप से अधिक जुड़ी हुई थी. इस सबके बावजूद सुदीप में 'एकला चलो रे' का भाव घर कर गया था. वह जानता था कि वह अपनी पत्नी के साथ भी एक सीमा तक ही हिस्सेदारी बर्दाश्त कर सकेगा. अपने-आप में खोकर रहना, अपने-आप से बतियाना और अकेले जीना उसके जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है. कुन्ती के साथ भी उसने हमेशा अपने निजी क्षेत्र की सीमाएँ बनाकर रखी हैं.

कुन्ती में मजबूती तो बला की है. शादी के चार बरस में उसने कभी काँटा चुभने जैसी शिकायत नहीं की. सुदीप ने भी उस पर कुछ ज्यादा ही भरोसा कर लिया है. सुकर्मा के घर के लिए वह राशन खरीदता है, जबकि कुन्ती अपने घर की सारी ज़रूरतें बिना 'उफ' किए खुद पूरी कर रही है. दीवाली पर भी कुन्ती अकेले बाज़ार गई और सुदीप तथा सौरभ के लिए कपड़े खरीद लाई.

साँझ ढले सुदीप ने घर में कदम ही रखा था कि कुन्ती ने चिहुँककर एक पैकेट उसके सामने रख दिया. सुदीप के लिए यह अप्रत्याशित है. कुन्ती की पायल की झंकार के अतिरिक्त और कुछ भी कोमलता उसने नहीं जानी है. प्रेम के मायने ही बदल गए थे उसके लिए. देह का जुड़ना शादी की रस्म की ज़रूरत थी, इसलिए सब कुछ घटा—रात के अँधेरे में रोशनी की तरह कुछ चमका और चुभन छोड़ गया.

समय के साथ देह की माँग उठती-बुझती रही. इस बीच मन का तार

रिवाज़ी तौर से जुड़ा. धीरे-धीरे आदतन ज़रूरतें पूरी होती रहें, इसका खयाल दोनों रखते रहे. न शिकवे-शिकायत का मौका आया, न ही उपहार जैसी औपचारिकता का खयाल आया.

तीज-त्यौहार पर कुन्ती के घर से सौगात आती है. सुदीप बिना खोले जान जाता है, इस ढेर में क्या होगा. वह अपनी धुन में कहता है, "सब बहुत अच्छा है." धीरे-धीरे इसकी भी ज़रूरत नहीं रही.

आज यह पैकेट उन सब चीज़ों से अलग है.

सुदीप ने एक नज़र पैकेट पर डाली और पूछा, "यह क्या है?"

"खोलकर देखो न?" कुन्ती के स्वर में कोमलता है.

सुदीप के मन में पैकेट उठाते हुए मिठास तैर गई, "क्या है जानेमन? कौन दे गया है?"

"कोई क्यों देकर जाता...! हम लाए हैं अभी।" तनिक खीज-भरा मीठापन बिखर गया.

"ये 'हम' कौन हैं?" उसने पैकेट से स्वेटर बाहर निकाला.

"मैं और सौरभ, और कौन!" आगे बढकर स्वेटर को सुदीप के बदन से नापने का उपक्रम किया.

"अरे, वाह! वत्सला और सुकर्मा के लिए...?" सौरभ का स्वेटर उठाते हुए पूछा उसने.

"क्या मतलब?" कुन्ती के स्वर में तल्खी है.

"दीवाली तो सबके लिए है न!"

"जी, मेरे लिए भी...!" पहली बार सुदीप के लिए शादी के मायने बदल गए. अब उसकी शादी भी क्या उसके दोस्तों की शादी जैसी हो गई है! वही ताने, कड़वे बोल और एहसान जताने के स्वर और माँगों की लम्बी सूची.

"आप कल अपने लिए और सुकर्मा-वत्सला के लिए भी कुछ ले आएँ. तभी हम पहनेंगे." स्वेटर को कुर्सी के हत्थे पर रखकर वह गुसलखाने में जाकर मुँह पर छींटे मारने लगा.

सौरभ को गोद में उठाए कुन्ती दरवाज़े पर खडी होकर उड़ते पानी से भीगती रही. सुदीप ने बिना मुड़े तौलिए की माँग की. तौलिए के छोर के बहाने कुन्ती की साड़ी का पल्लू खींचा और रगडकर मुँह पोंछा.

कुन्ती की आँख में सुकर्मा-बसन्त का अक्स उभर आया. उसने सुदीप की बाँह को पकड़ लिया. सुदीप ने सौरभ को गोद में लेते हुए कुन्ती की चिबुक के नीचे खुरदरी दाढ़ी से लाल निशान बना दिए. कुन्ती को बाईं बाँह के घेरे में लेकर बेडरूम का दरवाज़ा खोला.

'टिन-टिना-टिन...टिनन्न्...' फोन की घंटी ने खामोशी को चीर दिया. दोनों ने फोन की ओर उड़ती निगाह से देखा. कुन्ती ने फोन उठाने के लिए हाथ बढाया तो सुदीप ने उसका हाथ थामकर उसे अपनी ओर खींच लिया. उसने धीरे से सौरभ को चटाई पर बिठा दिया और उसके खिलौनों की टोकरी उसके सामने पलट दी.

फोन की घंटी फिर बजी, 'टिन-टिना-टिन... टिनन्न्.'

फोन उठाने की फुर्सत किसे थी अब ! दोनों के हाथ एक-दूसरे में उलझे हैं. कुछ ही क्षण में फोन की घंटी की कर्कश ध्वनि मधुर संगीत बन गई.

मानवीय प्रेम की सघनता का जादू सिर चढ़कर गूँजता है. धरती पर इसका अपवाद ढूँढ़ते न मिले तो बेहतर...!

इक्कीस

दो घंटे बाद फोन की घंटी दुबारा बजी. कुन्ती ने आगे बढ़कर फोन उठाया, "हैलो! कुन्ती दीदीऽऽऽ!"

"जी, बोल रही हूँ."

सुदीप ने भौंहें उठाकर पूछा, 'कौन है?'

कुन्ती ने 'मालूम नहीं' का इशारा किया. सुदीप ने फोन उसके हाथ से ले लिया. कुन्ती को अच्छा नहीं लगा ; हालाँकि सुदीप नहीं जानता कि दूसरी तरफ से महिला का स्वर है.

"हैलो! जी, मे आई नो हूस ऑन द लाइन ?"

"रागिनी!" सुदीप के कान में अजनबी-सा स्वर बजा.

"ओ, रागिनी, वॉट अ प्लैज़ेन्ट सरप्राइज! कैसी हैं आप ? बेबी कब आ रहा है?" सुदीप ने उत्साहपूर्वक पूछा.

"आपको कैसे मालूम?"

"क्यों, हमारा भी तो कुछ रिश्ता है नये शिशु से."

"हॉ-हाँ, क्यों नहीं ? मैं सुकर्मा का डाक-पता जानना चाहती हूँ।"

सुदीप ने पुलिसिया अन्दाज में पूछा, "क्यों?"

"दीवाली है भई! कार्ड ही भेजना पड़ेगा. फोन का तो कोई लिंक है नहीं." रागिनी ने शंका दूर की.

सुदीप ने सुकर्मा का पता लिखवाया, तो कुन्ती ने हैरानी से पूछा, "सुकर्मा भाभी ने घर बदल लिया है क्या ?"

"हाँ, बदलने वाली हैं. इस घर की छत टपकती है. सर्दी की बारिश तो बड़ी ज़ालिम है. सो नया घर ढूँढ़ा है मैंने."

कुन्ती कहीं भीतर आहत हुई. इतनी बड़ी बात भी उसे नहीं बताई गई. बिना कुछ बोले वह रसोईघर की ओर चली गई. सुदीप ने सौरभ के साथ गेंद उछालने का क्रम जारी रखते हुए कहा, "कोई डाक है क्या आज?"

"जी!" कुन्ती ने कुछ लिफाफे उसके सामने रख दिए. उलट-पलटकर

सुदीप ने एक लिफाफा खोला, रागिनी का भेजा हुआ दीवाली-कार्ड था. उसने हैरानी से कार्ड को दो बार पढ़ा, *'प्रिय कुन्ती दी, सुदीप भाई एवं सौरभ'* और नीचे सिर्फ *'रागिनी'*. सुदीप अचानक परेशान हो गया, 'सात्त्विक का नाम क्यों नहीं है.' झुककर दूसरे लिफाफे पर सरसरी निगाह डाली और कुन्ती को आवाज़ दी, "देखो, रागिनी का दीवाली-कार्ड आया है."

कुन्ती ने चाय की ट्रे मेज पर रखी और कार्ड को खोलकर पढ़ा. उसके माथे में सिलवटों का पड़ना स्वाभाविक था, "सात्त्विक का नाम क्यों नहीं लिखा होगा? लन्दन में तो ब्याह होने से पहले टूट जाते हैं. भगवान ठीक रखे, दोनों को." कुन्ती ने आँखें छत की ओर उठा दीं.

"पिछले हफ्ते तो बात हुई है मेरी सात्त्विक से. उसी ने तो मुझे बताया था कि रागिनी गर्भवती है." कुछ सोचते हुए बोला, "सब ठीक है. काफी खुश नज़र आ रहा था."

"आप फोन पर किसी को देख भी सकते हैं?" कुन्ती खिलखिलाकर हँस दी.

सुदीप ने टेढ़ी ऑख से उसे देखा, फिर चाय की ट्रे की ओर ऑखें घुमा दीं.

कुन्ती ने चाय बनाकर कप सुदीप के सामने रख दिया. अपने लम्बे बालों को जूड़े में कसने के लिए दोनों बाँहें ऊपर उठाईं तो ब्लाउज़ का 'हुक' चटख गया. सुदीप की आँख ने गौर से देखा, "मोटी हो रही हैं आप!"

"हाँ, कल डॉक्टर के पास जाऊँगी."

"मेरा यह मतलब नहीं था. हमने शादी के सात वचनों में यह कसम तो नहीं खाई थी कि आप कभी मोटी नहीं होंगी."

कुन्ती ने पल्ला खींचते हुए आँखें झुका लीं. सुदीप खिलखिलाकर हँस दिया. हँसी के बीच उसने सुना ही नहीं कि कुन्ती कुछ टेस्ट कराने की बात कर रही है. कुन्ती ने भी दोहराने की ज़रूरत नहीं समझी.

चाय पीकर सुदीप रोज़ की तरह सुकर्मा के घर चला गया. कुन्ती सौरभ के साथ पार्क में जाकर बैठ गई. हवा में तैरती चाय-बागान की खुशबू उसे अच्छी लगती है. वह सिल्वर ओक के पेड़ों के पीछे ढलते सूरज के लाल गोले में उगते हुए अपने अजन्मे शिशु के चेहरे को महसूस करती रही. उसे बच्चे की चाह है—अपने बच्चे की चाह. पास-पड़ोस की औरतों से सुना है उसने, 'प्रसव-पीड़ा के बाद अद्भुत सुख की अनुभूति होती है.'

वह भी जानना चाहती है, बच्चे को जन्म देने का आनन्द क्या है. वह लेडी डॉक्टर के पास नियमित रूप से जा रही है. कल टेस्ट के बाद मालूम

होगा कि उसमें कोई कमी नहीं है. 'कहीं कुछ गड़बड़ी हुई तो?' आशंका मात्र से सिहर गई वह.

सौरभ को वह पाल रही है. अब तो पहले की तरह दूध पिलाने के लिए भी उसे सुकर्मा के पास रोज़ नहीं जाना पड़ता है. कुछ दिनों में सौरभ उसे ही माँ समझेगा, शायद सुकर्मा को पहचाने भी न! कुन्ती ने सोचते हुए एक तिनका दाँत में दबा लिया. मिट्टी का किरकिरापन अच्छा लगा उसे. जुबान को मुँह में घुमाया उसने और सौरभ को सीने से लगाकर कस लिया.

सामने से दीप्तिजी आ रही हैं. वह नवें माह के बोझ से सुन्दर लग रही हैं. रोज़ घूमना जरूरी है उनके लिए. वह अकसर शाम को कुन्ती के साथ गप-शप करती हैं. कुन्ती के मन में शिशु की चाह उन्होंने ही जगाई. वही जिद करके उसे अपने साथ डॉक्टर के पास ले गई.

डॉक्टर ने कुन्ती को हैरानी से देखा. कुन्ती बच्चा न होने की समस्या लेकर गई है जबकि डॉक्टर उसमें गर्भवती होने के चिह्न देख रही है. डॉक्टर ने कुन्ती के लिए बिना कुछ कहे टेस्ट लिख दिए. हालाँकि कुन्ती ने अपने टेस्ट के परिणाम दीप्तीजी को बताने की जरूरत नहीं समझी थी.

आज वह मानसिक रूप से तनिक अस्थिर है. उसने ऑख की कोर में उलझे हुए ऑसू को साड़ी के पल्लू से पोंछ लिया. वह इतनी गहरी है कि अपनी बात किसी को बताने की गलती वह कर नहीं सकती है. उसने गुट में खड़े होकर अपने ही कॉलोनी के लोगों पर टिप्पणियाँ सुनी हैं. वह अपने-आपको चर्चा का विषय बनाना नहीं चाहती है. दीप्तिजी की कुरेदती आँखों से अपने को बचाते हुए वह पाँच मिनट में ही घर के रास्ते की ओर मुड़ गई.

दूर से अपने घर को देखना अच्छा लग रहा है. उन्नाबी पर्दे और बल्ब की हलकी रोशनी में दीवार की सफेदी कुछ गुलाबी दिखाई दे रही है. सौरभ की 'कूँ-चूँ' कानों में संगीत के स्वर का सुख है. उसने सौरभ की कनपटी पर अपने होंठ गोल करके रख दिए. नन्हे पैर की छुअन से झुरझुरी उठ रही थी. 'घर पहुँचकर फोन करती हूँ.' सोचकर उसके कदमों की गति तेज़ हो गई.

घर पहुँचते ही वह फोन की ओर बढ़ रही थी, फोन की घंटी झनझना कर बजी. कुन्ती ने हड़बड़ाकर फोन उठाया, "हैलो."

"हैलोऽऽ! कुन्ती दी, सात्त्विक हियर. कैसी हैं आप?"

"एकदम ठीक. आप कैसे हैं? रागिनी का क्या हाल है? कल उनका भी फोन आया था."

"अच्छा...!"

कुन्ती को सात्त्विक का हैरान होना अच्छा नहीं लगा.

"वह कल ही अस्पताल से वापस आई है. 'बेबी इज़ ऑन द वे.' आप अपनी कहें, क्या-क्या हो रहा है?"

"कुछ नहीं, मैं और सौरभ मजे में हैं. सुदीपजी सुकर्मा भाभी के पास गए हैं!" कुन्ती ने कहा.

बात का छोर पकड़ते हुए सात्त्विक ने तुरन्त सवाल दागा, "सुकर्मा का क्या हाल है?"

"मैं पिछले इतवार मिली थी. वह ठीक हैं. उतनी ही ठीक, जितनी बसन्त भैया के बिना हो सकती हैं."

"वह कमी तो रहेगी हमेशा. तुम लोगों का बहुत सहारा है उन्हें."

"आप कब आएँगे भारत?" अचानक कुन्ती ने पूछा.

"अभी जल्दी तो नहीं. देखो, जनवरी में शायद कुछ प्रोग्राम बन सके. आप सुकर्मा का डाक-पता दे सकेंगी क्या?" सात्त्विक ने नम्रतापूर्वक कहा.

कुन्ती ने सुदीप की डायरी से पता लिखवा दिया. उसे हैरानी थी कि रागिनी और सात्त्विक दोनों ने ही सुकर्मा का डाक-पता अलग-अलग माँगा है. दोनों अलग-अलग पता क्यों माँग रहे हैं? कुन्ती ने बेवजह की शंकाओं को झटका दिया. थाली में दाल निकाली, सरसरी नज़र से देखा और गैस पर कुकर रख दिया.

औरतें अधिकांश काम आदतन करती हैं; जैसे–रोज़-रोज़ पाँच अनाज की दाल में नमक-हल्दी डालना, गीले कपडों को अरगनी पर डालना, मेज पर फैले अखबारों को तह करके रखना, साँझ ढलते ही खिड़की पर झूलते पर्दों को खींचकर बन्द करना, उनींदी आँखों से दरवाजा खोलकर दूध लेना और पति के घर आते ही चाय बनाना.

बाईस

ग्यारह बजे घंटी बजी. कुन्ती ने सौरभ को ढकते हुए अपना शॉल उठाया. दरवाज़ा खोला, "आज देरी हो गई मुझे. कोई फोन आया क्या ?"

"जी, सात्त्विक का फोन था." कुन्ती ने बुझी-सी आवाज़ में कहा.

"कुछ खास बात...?"

"नहीं, कुछ खास बात नहीं. सुकर्मा भाभी का पता पूछ रहे थे." रसोई से ही कुन्ती ने कहा.

सुदीप ने हैरानी से आँखें उठाई. कुन्ती आस-पास नहीं थी. वह जुराबें पहने हुए ही रसोई में आ गया. कुन्ती ने उलझन-भरे स्वर में कहा, "चप्पल पहन लीजिए. ठण्ड लग जाएगी."

बिना कुछ कहे सुदीप वापस आ गया. उसने सुकर्मा का फोन नम्बर डायल किया. फिर कुछ सोचा और बिना बात किए ही फोन वापस रख दिया.

कुन्ती ने चाय की ट्रे मेज पर रखी और स्वयं बेडरूम में चली गई. सुदीप ने महसूस किया, कुन्ती उससे आँखें चुरा रही है. उसने बिना प्रतिक्रिया दिखाए चाय कप में डाली और यथासम्भव सामान्य होने की कोशिश करते हुए कहा, "आओ, कुन्ती ! चाय पी लो. फिर आज खाना जल्दी लगा लेना. कुछ बुखार की हरारत-सी हो रही है."

सब कुछ भूलकर कुन्ती भागते हुए आई, सुदीप का माथा छूकर देखा, वापस कमरे में चली गई. एक मिनट में ही शॉल लेकर लौटी. सुदीप के कन्धों को ढकते हुए पूछा, "कुछ दवा दूँ क्या ? डॉ. गुप्ता से फोन पर बात कर लेते....!"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है. सुबह तक ठीक हो जाएगा. मौसमी बुखार है." सुदीप ने शॉल को कन्धों के चारों तरफ कसते हुए कहा, "यह वही शॉल है न, जो सुकर्मा-बसन्त बद्रीनाथजी से लाए थे ?"

"जी... माणा गाँव से." कुन्ती की आवाज आर्द्र हो गई. दूर कहीं क्षितिज में कोई तारा टूटा. कुन्ती ने घबराकर खिड़की बन्द कर दी.

सुदीप ने कहा, "अशुभ नहीं होता है तारा टूटना...."

"अब और अशुभ क्या होगा...?"

कुन्ती के निराश स्वर से सुदीप आहत हो गया. उसने चाय का आधा कप ट्रे में रख दिया. चाय छलक गई थी.

कुन्ती ने ट्रे में बिछे कपड़े पर नज़र डाली. सुदीप को हैन्ड-टॉवल दिया हाथ पोंछने के लिए और पूछा, "और नहीं पीएँगे...?"

"जी नहीं चाह रहा है." फिर तनिक रुककर कहा, "रागिनी और सात्त्विक दोनों ने ही सुकर्माजी का पता पूछा है."

कुन्ती ने सोचा, 'हम दोनों के मन में एक-सी आशंका जाग रही है.' फिर छत की ओर हवा में स्वर उछला, "ग्रीटिंग्स कार्ड भेजना होगा."

"सो तो ठीक है, भाई! अमेरिका है. हमारे यहाँ तो पति-पत्नी संयुक्त रूप से एक ही कार्ड भेजते हैं."

कुन्ती ने कुछ भी नहीं कहा. सुदीप ने उसकी प्रतिक्रिया न आने पर हैरानी से देखा.

"आज सुकर्माजी के साथ दुर्माला गया था." सुदीप ने सूचनात्मक स्वर में कहा.

"जी, दुर्माला कहाँ है ? ऑफिस के काम से गए थे क्या ?" कुन्ती ने सहज होने की नाकाम कोशिश की.

"मसूरी से आगे खानें हैं, जहाँ से पत्थर काटा जाता है." सुदीप ने विशेषज्ञ की तरह कहा.

"बसन्त भैया तो हर्रावाला की ओर कहीं जाते थे न ?" कुन्ती ने याद करते हुए कहा.

सुदीप ने कुन्ती के माथे पर खिंची लकीरों को गौर से देखा और कहा, "हर्रावाला में तो पत्थर की पिसाई होती है. बसन्त वहाँ टैस्टिंग के लिए जाते थे. दुर्माला में खदानें हैं जहाँ से खाद बनाने के लिए पत्थर निकाला जाता है."

थोड़ी देर में, जैसे अपने-आपसे कहा, "बसन्त और सुकर्मा के काम में अन्तर है. दोनों का पद भी तो अलग है न!"

"सो तो है." कुन्ती ने बेमायने-सी बात कही.

"वहाँ आज एक दुर्घटना हो गई थी. सुकर्मा को डैमेज क्लेम बनाना होगा. इसलिए साइट देखना ज़रूरी था." कुन्ती की ओर देखकर सुदीप ने कहा.

"ओह, क्या हुआ ? सब ठीक तो है न ?" कुन्ती ने पूछा.

बात को छोटा करने के लिए सुदीप ने 'हाँ' में सिर हिला दिया.

मन-ही-मन सोचा, 'दुर्घटना और सब ठीक...? ऐसा होता है क्या ? ऐसा होता तो बसन्त बच नहीं जाता क्या ?' आज दुर्घटना-स्थल पर चट्टान से लुढ़कने के कारण मज़दूर का शव देखकर सुदीप का मन अतीत में चला गया था.

बसन्त की मृत्यु तो एक बार हुई थी. उसकी झकझोर देनेवाली स्मृतियाँ न जाने कितनी बार सुदीप को मृतप्राय: बनाएँगी.

ठीक ही तो कहते हैं लोग, 'मरनेवाला तो मुक्त हो जाता है, पीछे जीनेवालों के लिए उम्रभर जीना मुश्किल हो जाता है.' सुदीप ने माथे पर दोनों हाथ कस लिए. कुर्ते की ढीली बाँहों से आँखें ढँक गईं.

सीने पर झाँकते चाँदी के बटन कुन्ती को बसन्त की याद दिला रहे हैं. यह बटन का सैट जयपुर से लाया था बसन्त. शोध के दौरान वहाँ एक ट्रेनिंग प्रोग्राम में गया था.

कुन्ती ने बसन्त की याद में गीली होती अपनी आँखों को पोंछा. सुदीप की छाती पर कंबल डालते हुए कहा, "खाना लगाऊँ क्या..? दस बज रहे हैं."

सुदीप के मौन को स्वीकृति समझकर कुन्ती रसोई में चली गई. सुदीप ने सवाल सुना ही नहीं है. आँसुओं से उसका कुर्ता भीग रहा है।

तेईस

सूरज की पहली किरण के साथ सुदीप ने अँगड़ाई ली और आदित्य-स्तोत्र को बोलना शुरू कर दिया. कुन्ती ने मुड़कर देखा, "नमस्ते जी..."

सुदीप ने 'नमस्ते' की मुद्रा में सिर हिला दिया. दृष्टि दीवार पर ही टिकी रही. कुन्ती ने उठकर बाहर का दरवाज़ा खोला. अभी अखबार नहीं आया था. उसने चारों ओर आँख घुमाकर देखा. सुधा और दिव्या सुबह की सैर के लिए अपने-अपने घर से निकल रही थीं. उसका मन चाहा कि आज वह भी उनके साथ सुबह की सैर के लिए चली जाए. डॉक्टर ने उसे रोज़ घूमने की सलाह दी है.

'नया शिशु आनेवाला है.' इस ख्याल से रोमांचित हो उठी वह. वापस आकर चाय बनाई और सुदीप के पास मेज पर ट्रे रखकर गुसलखाने में चली गई. सुदीप ने चाय की केतली को उठाया और फिर वापस रख दिया. ट्रे उठाकर बाहर आ गया.

"बाल्कनी में चाय पीएँगे." उसने कुन्ती को आवाज़ दी.

"जी, आती हूँ."

कुन्ती के आने से पहले ही फोन की घंटी बजी. सुदीप ने अनमने मन से फोन उठाया और अलसाए स्वर से 'हैलो' कहा. उधर से सुकर्मा का स्वर सुनाई दिया, "आप तो शायद अभी सोकर उठे हैं. क्या मैंने नींद से जगा दिया ? मैंने तो शुक्रिया कहने के लिए फोन किया है."

सुदीप ने पूछा, "क्यों ? शुक्रिया किसलिए ?"

सुकर्मा ने कहा, "आपके साथ आने से बड़ा सहारा रहा. इतनी दूर, पहाड़ों के बीच अकेले जाने की मेरी तो हिम्मत ही नहीं थी."

"पहली बार ऐसा ही लगता है, सुकर्मा ! धीरे-धीरे हिम्मत आ जाएगी." वह सुकर्मा को कैसे बता सकता था, कल उसकी हिम्मत टूट गई थी.

'सुकर्मा भी कल बेहद परेशान हो गई थी. इतनी सुबह फोन आने का भी निश्चित रूप से यही कारण है,' सुदीप ने सोचा.

आज उसका अनुमान गलत था. सुकर्मा ने तो सुदीप को यह बताने के लिए फोन किया था कि रागिनी का खत आया है. सुदीप ने सहज भाव से कहा, "ठीक है, हमें भी उसका भेजा हुआ ग्रीटिंग कार्ड पिछले हफ्ते मिला है."

"यह केवल ग्रीटिंग कार्ड नहीं है, उसके साथ खत भी है."

"ठीक है, सँभालकर रख लो. समय निकालकर जवाब दे देना." सुदीप ने कहा और फोन रख दिया.

सुदीप के रूखेपन ने सुकर्मा को क्षण-भर के लिए स्तब्ध कर दिया. सुदीप ने उसकी पूरी बात सुनी ही नहीं थी. सुकर्मा यह नहीं सोच रही थी कि सुदीप ने अचानक फोन क्यों रख दिया.

उसकी सोच का बिन्दु है, 'वह सुदीप पर बोझ बन रही है.'

सोचते-सोचते अकस्मात् सुकर्मा सीधी खड़ी हो गई. आँगन में बिखरी सुबह की उजली धूप को साक्षी मानकर उसने संकल्प किया, अब और नहीं. कभी नहीं. उसके लिए नियति ने एकाकी जीवन दिया है, इसके लिए अन्य कोई दोषी नहीं है. अन्य किसी को दण्ड क्यों दिया जाए ?

अपनी कमर पर हाथ टिकाकर तनिक कन्धों को पीछे धकेल दिया. पीठ में उभरता हुआ वक्र उसकी रीढ की हड्डी में नया जीवन संचार कर रहा था. उसके चेहरे पर लालिमा का बढना सुबह के सूरज को चुनौती देने जैसा था. उसने दोनों हाथों को फैलाकर लकीरों में कुछ पढा, दोनो हाथों को जोडा, आकाश की ओर आँखें उठाईं. बसन्त ने कुछ उत्तर दिया या नहीं, यह तो खुदा जाने. उसके भीतर से आत्मबोध की नई किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं.

कमरे के भीतर जाकर उसने ऑफिस फोन किया. एक दिन की छुट्टी लेना वाजिब है. नये तरीके से जीने की तैयारी करने के लिए इतना तो करना ही पड़ेगा.

जल्दी-जल्दी नहाकर तैयार हो गई. वह कॉफी का कप हाथ में लिए हुए ही बाहर गेट तक आ गई. पड़ोस से सुमेधा दीदी ने उसको हैरानी से देखा, "सुकर्मा ! आज इतनी सवेरे कहाँ जाने की तैयारी है ?"

"जी ! खास नहीं. आज सौरभ आ रहा है."

"अच्छा, अच्छा, कुन्ती दी आ रही हैं!" सुमेधा दीदी ने मन-ही-मन सुकर्मा के प्रति दया-भाव से सोचा, 'आखिर माँ है, अपने बच्चे से दूर रहना कठिन तो है ही.'

अगले ही क्षण आम स्त्री की तरह कठोर आलोचक बन गई, 'क्यों दूर रखा है अपने बच्चे को? अपना सुख-आराम छोड़े और अपनी छाती से लगाकर रखे अपने बच्चे सौरभ को. बेचारी कुन्ती दी के ऊपर कितना बोझ है! उनके

पति पर भी जादू किए है. शाम भर यहीं रहता है.'

अपनी सोच में गुम सुमेधा दीदी को सुकर्मा का स्वर सुनाई नहीं दे रहा था, "जी ! मैंने फैसला किया है कि अब सौरभ यहीं रहेगा मेरे पास." सुकर्मा ने दोहराया. कुछ कदम उनके करीब जाते हुए कहा, "आपको तनिक इस घर का खयाल रखना होगा. वैसे मैं जसवन्तीजी को दिन भर यहीं रहने के लिए कहूँगी."

आखिरी वाक्य के जसवन्ती नाम से चौंकी वह, "क्या कहा सुकर्मा ? जसवन्ती दिन भर तुम्हारे यहाँ रहेगी, तो हमारे घर का चूल्हा-चौका, साफ-सफाई...?"

"जी, आज ही बात की है मैंने. अब उन्हें सुबह छ: बजे से पहले आपके घर पहुँचना होगा. हमारे यहाँ साढ़े सात बजे से शाम छ: बजे तक रहेंगी. सौरभ के सोने पर आपके और मेरे घर के काम निपटा लेंगी. मैं तो दिन-भर ऑफिस में रहती हूँ."

"हॉं, सो तो है." उनके स्वर से ऐसा झलक रहा है, जैसे वह इस बन्दोबस्त से काफी खुश हैं. दिन-भर पड़ोस में जसवन्ती का रहना उनके सुख का नया अध्याय हो मानो.

"और तुम फिक्र मत करो. बच्चा तो सबका साझा होता है. मैं तो सारा दिन घर पर ही रहती हूँ. जरूरत पडने पर जसवन्ती यहॉं आ सकती है." सुमेधा दीदी ने कहा.

"जी, आपका ही तो सहारा है." कहकर सुकर्मा भीतर चली गई. बिन पिए ही कॉफी का मग रखा, पर्स उठाया और जसवन्तीजी को सुमेधा दीदी के घर भेजकर स्वयं कुन्ती दी के घर की ओर चल दी.

अचानक सुकर्मा को देखकर सुदीप हैरान हो गया, "क्या बात है आज, सुकर्मा! ऑफिस नहीं गईं आप...?"

"मैने एक दिन की छुट्टी ली है."

"क्यों ?" सुदीप ने पूछा. उसके पौरुष को चोट लगी. पहली बार सुकर्मा ने उससे पूछे बिना छुट्टी लेने का फैसला किया है.

"मैं सौरभ को लेने के लिए आई हूँ." सुकर्मा ने बिना किसी भूमिका के साफगोई के साथ कहा.

कुन्ती पर तो गाज गिरी हो जैसे, "यह आप क्या कह रही हैं! यहाँ सौरभ को कोई तकलीफ नहीं है. आप अपनी नौकरी के साथ उसे कैसे सँभाल सकेंगी?"

"कुन्ती दी ! जैसे दुनिया में अनगिनत नौकरी करनेवाली औरतें बच्चे

पालती हैं..."

कुन्ती उसके वैधव्य की ओर इशारा नहीं करना चाहती है. वह चुपचाप अन्दर चली गई. सुकर्मा के बदले हुए स्वर को समझने मे असमर्थ वह मशीन की तरह घर के काम निबटाने में लग गई.

चाय-नाश्ता टेबल पर सजाकर उसने आवाज दी, "आप दोनों अन्दर आ जाएँ, चाय ठण्डी हो जाएगी." कुन्ती को अपना वहॉ होना अजनबी-सा लग रहा था. सुदीप-सुकर्मा बहस में मग्न हैं. कुन्ती ने दुबारा आवाज़ दी और बरामदे के दरवाजे में आकर खड़ी हो गई.

उसने सुना, सुदीप ने खड़े होते हुए कहा, "ठीक है, जैसा तुम ठीक समझो. हम दोनों यहीं हैं. जब ज़रूरत हो, बुला लेना."

सुकर्मा की आँख ने कृतज्ञता व्यक्त की. नाश्ते की टेबल पर तीनों जहरबुझे सन्नाटे को पीते रहे.

यह क्या हो जाता है? कभी-कभी इनसानी रिश्ते इतने नाजुक मोड पर पहॅुच जाते हैं कि सब कुछ तार-तार हो जाता है. चटखने से बचाने के लिए मौन ही सहारा है. अपना परॉठा खत्म करके सुकर्मा उठी. वह प्लेट और कप रखने के लिए रसोई में गई. गैस पर सौरभ की बोतलें उबल रही हैं. उसने प्यार से उधर देखा और सोचा, 'कल से तो यह काम उसका होगा ! उसे वत्सला का बचपन याद हो आया. रोज ऑफिस जाने से पहले बसन्त उसकी बोतलें खुद उबालता था. उसे सुकर्मा पर भरोसा न हो, यह बात नहीं थी. उसका कहना था, 'मैं भी वत्सला के लिए कुछ करना चाहता हूँ. बुढ़ापे में, वत्सला के बचपन की मधुर स्मृतियाँ मेरे पास भी तो होनी चाहिए.'

सुकर्मा स्मरण के सुख में दु:खी होना भूल गई. पहली बार ऐसा हुआ कि उसे तुरन्त यह याद नहीं आया कि बसन्त अपने बुढापे को छू ही नहीं सका.

बाहर से उसने सुदीप की गड़गडाती हुई आवाज सुनी, "कुन्ती, सौरभ का सामान पैक करो."

कुन्ती ने सुदीप की बात सुनी और वह मुड़कर बेडरूम में चली गई. सौरभ गहरी नींद में सोया है. कुन्ती ने रोते हुए उसका सामान इकट्ठा करना शुरू कर दिया।

सुदीप ने आकर धीरे से उसके कान में कहा, "चिन्ता मत करो. दो-चार दिन में सौरभ उसी तरह अचानक वापस आ जाएगा, जैसे आज अचानक जा रहा है. सुकर्मा अकेले सब कुछ सँभाल नहीं सकेगी." कुन्ती नें आश्वस्त होकर आँसू पोंछ लिए. सुदीप ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया. अपनों का स्नेह-स्पर्श मुश्किल में जीने का सहारा बन जाता है।

चौबीस

आते-आते साँझ हो गई है. कुन्ती दी ने सुकर्मा के साथ आने का फैसला किया है. उन्हें सुदीप की बात का विश्वास हो गया है, 'सुकर्मा बच्चों जैसी जिद कर रही है. दो दिन में नौकरी और बच्चे के बीच डोलती नाव को अस्थिर देखकर अपने-आप ही नानी याद आ जाएगी.'

सुदीप अब कुछ भी नहीं सोच रहा है. बसन्त की मृत्यु से शोकाहत उसका मन द्रवीभूत हो चुका है और मस्तिष्क खालीपन से घिर गया है. 'अगले पल का भरोसा ही नहीं है–क्या योजना बनाना और क्या भविष्य की सोचना !' वह अकसर कहता है.

वह रोज़ की तरह ऑफिस से सीधा सुकर्मा के घर पहुँचा. दोनों स्त्रियों को घुल-मिलकर बातें करते हुए देखना उसे अच्छा लगा. सुबह का ठण्डा सन्नाटा फुर्र हो चुका है. सौरभ कालीन पर खेल रहा है. उसने सौरभ के घुँघराले बालों में हाथ घुमाया और लाल गाड़ी को उठाकर चाबी भरने लगा.

सुकर्मा ने जसवन्ती को आवाज़ दी, "चाय बना दीजिए तीन कप."

कुन्ती ने सुदीप को देखा और मौन ही कुछ वार्त्ता-सी हुई दोनो में. सुदीप एक कुर्सी को खिसकाकर सौरभ के एकदम पास आकर बैठ गया.

सुकर्मा के शरीर में तनिक अधिक स्फूर्ति प्रतीत हो रही है. वह सौरभ के द्वारा फेंकी गई चीजों को भाग-भागकर समेट रही है.

सुदीप ने ऑख के कोने से उसे देखा, कुन्ती ने सुदीप को और सुकर्मा ने कुन्ती दी को उसी क्षणांश में देखा. तीनों के बीच नए सम्बन्ध का वृत्त-सा खिंच गया, जिसका केन्द्रबिन्दु निश्चित रूप से सौरभ है.

सुदीप का दिन इस उधेड़बुन में बीता, आखिर ऐसी क्या नई बात हुई है, जो सुकर्मा ने सौरभ को अपने पास लाने का निश्चय किया है? कुन्ती दी का अनुमान है कि शायद सुकर्मा को उनकी प्रेग्नैंसी का अन्दाज़ हो गया है.

सुकर्मा ने किसी प्रकार के एक्सप्लेनेशन देने की ज़रूरत ही नहीं समझी. उसने तो अपना फैसला सुनाया सीधे-सपाट अन्दाज़ में. कुन्ती को बार-बार

लगता है, शायद सुदीप को इस बात का पहले से अनुमान हो. हो भी, तो क्या फर्क पड़ता है! दो-चार दिन में गाड़ी फिर अपने पुराने रास्ते पर आ जाएगी. इस उम्मीद के सहारे मुस्करा रही है वह.

कुन्ती दी ने यथासम्भव सहज होकर रात को करीब ग्यारह बजे सुकर्मा से विदा ली. सौरभ सो चुका है. जसवन्ती ने मटर-पनीर और सूखी मेथी बनाकर रख दी है सुबह के लिए. वह भी इस उम्मीद के साथ देर तक रुकीं रहीं कि लौटते समय सुदीप-कुन्ती उन्हे रास्ते में उतार देंगे.

उन तीनों के जाने के बाद सुकर्मा को अकेलापन और ज्यादा लगा. सौरभ की चिन्ता में रात-भर ठीक से सो नहीं सकी. सुबह अलार्म बजने से पहले ही वह नहाने के लिए जा चुकी है. नहाकर पूजा के तुरन्त बाद उसने सौरभ की बोतलें उबलने के लिए रख दीं. एक ओर उसके लिए पीने का पानी उबाला और बीच-बीच में पर्दे से झाँककर देखती रही कि सौरभ सो रहा है.

लगभग आठ बजे जसवन्ती के आने पर उसने अपने लिए चाय बनाई और स्वर में यथासम्भव मिठास भरके कहा, "जसवन्तीजी ! कल कोशिश करें कि साढ़े सात बजे यहाँ पहुँच जाएँ."

जसवन्ती ने कुछ जवाब देना ज़रूरी नहीं समझा. वह गुसलखाले में बेबी के कपडे धोने के लिए चली गई. सुकर्मा ने जल्दी-जल्दी तैयार होकर कहा, "मैं जा रही हूँ, आप सौरभ के कपड़े बदल देना... मैंने निकालकर रख दिए हैं."

"जी...अच्छा." जसवन्ती ने कहा और दरवाजा बन्द करने के लिए बाहर आ गई.

"आपने नाश्ता नहीं किया." जसवन्ती ने धीरे से कहा.

"कोई बात नहीं." कहकर सुकर्मा गेट की ओर चल दी. चारों ओर की खिड़कियाँ-दरवाजे बन्द हैं, फिर भी उसे लग रहा है कि सैंकड़ों आँखें उसे घूर रहीं हैं. ऑफिस में पहुँचकर चैन की साँस ली. छोटू ने रोज़ की तरह पानी का गिलास लाकर मेज पर रखा. वह एक साँस में पूरा गिलास पी गई. छोटू ने उसे हैरानी से देखा और खाली गिलास उठा लिया. इतने दिन में, पहली बार सुकर्मा ने पानी पिया है, वरना रोज़ सुबह वह गिलास भरके रख जाता और साँझ पाँच बजे उठाकर पानी फेंक देता.

धीरे-धीरे टाइप करते हुए वन्दना ने पूछा, "आप ठीक हैं न, सुकर्मा दीदी?"

'हाँ' की मुद्रा में सिर हिलाकर सुकर्मा ने वेतन-रजिस्टर खोला, फिर बन्द करके रख दिया. छोटू उसकी मेज़ के कोने पर डिस्पैच-रजिस्टर में फँसी हुई डाक रखकर बाहर धूप में जाकर बैठ गया.

सुकर्मा ने डाक को सरसरी निगाह से देखा और रजिस्टर बन्द कर दिया.

'काम शुरू करने से पहले फोन कर लेना ठीक रहेगा.' उसने सोचा और पर्स से सुमेधा दीदी का नम्बर देखने के लिए डायरी निकाली. डायरी से पहले हाथ में रागिनी का खत आ गया.

'प्रिय सुकर्मा जी,

नया साल मुबारक हो! मैं ग्रीटिंग कार्ड भेज रही हूँ. यह नॉटिंघम युनिवर्सिटी का चित्र है. मैंने यहाँ से डिग्री लेने का फैसला किया था. वह विचार अभी बीच में रुक गया है. अगले माह बेबी के आने के बाद एक-डेढ़ साल तक बच्चे के अलावा कुछ और नहीं सोच सकूँगी. मुझे मालूम है कि आपने वत्सला के जन्म के बाद पढ़ाई जारी रखी थी. मैं ऐसा नहीं कर सकूँगी. मातृत्व का बोझ अकेले उठाने का आनन्द पूरी तरह से भोगना चाहती हूँ. मेरी इस बात को जानकर न तो हैरान होना और न ही दु:खी. यह बच्चा सात्विक का नहीं है—मेरा, सिर्फ मेरा है!

मुझे विश्वास है, आप मेरी बात को समझ सकेंगी और हमेशा मजबूती से मुझे बल देंगी.

प्यार,

आपकी ही,
रागिनी'

सुकर्मा ने खत को पढ़कर पर्स में रख दिया. आँखें बन्द करके सोचा, वह रागिनी के खत की अपनी तरह से व्याख्या नहीं करना चाहती है. फिर भी, एक प्रश्न उसके जेहन में लगातार घूम रहा है, रागिनी ने ऐसा क्यों लिखा कि यह बच्चा सात्विकं का नहीं है.?

'इन दिनों सात्विक से नाराजगी चल रही होगी. ऐसा तो हमेशा से ही पति-पत्नी के बीच होता ही रहता है.' सुकर्मा ने सोचा और सहज होने का प्रयास किया.

वन्दना ने सुकर्मा को गौर से देखा और बिना पूछे ही छोटू को आवाज़ लगाकर कहा, "दो कड़क चाय ला दो, छोटू."

छोटू फुर्ती से उठा और सड़क के किनारे बनी कैन्टीन की ओर चला गया. वन्दना ने अपनी कुर्सी पर बैठते हुए देखा, सुकर्मा की कुर्सी खाली है. वह सामनेवाली बड़ी मेज़ के पास खड़े होकर फोन पर बात कर रही है.

ऑफिस के सभी लोग अचम्भित हैं. सुकर्मा किसको फोन कर रही है? उन सबने उसे पहली बार फोन पर व्यक्तिगत बात करते हुए देखा है.

'घर में सब ठीक है,' इस बात से आश्वस्त होकर वह वापस अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गई. डिस्पैच-रजिस्टर की डाक पर सन्दर्भ-संख्या अंकित

करके उसने छोटू को रजिस्टर वापिस दे दिया. "छोटू! तुम आज चाय जल्दी ले आए हो." सुकर्मा ने पूछा.

"जी! वन्दना मैडम ने कहा है."

सुकर्मा ने चाय की ओर देखा, वन्दना को मुस्कुराकर 'थैंक्यू' कहा. चाय रखे-रखे ठण्डी हो गई. सुकर्मा ने लंच-टाइम से पहले वेतन-पंजिका से सिर नहीं उठाया. लंच-टाइम पर सबने नोटिस किया, सुकर्मा आज टिफिन नहीं लाई हैं. उसने कहा, "आज समोसे खाने का मन है."

पंकज ने कहा, "शाम को, अभी तो इधर आएँ." उसने पराँठे-सब्जी फैलाते हुए कहा.

देखते-देखते सब लोग कुर्सियाँ खींचकर वन्दना की टेबल को घेरकर बैठ गए. सबने खाना खाया. सुकर्मा ने सबके खाने में से थोड़ा-थोडा हिस्सा लिया और कहा, "आप तो बहुत खुशकिस्मत हैं. रोज-रोज़ इतना स्वाद खाना, वह भी बिना मेहनत किए मिल जाता है."

"सो तो है. कभी आप भी अपने घर बुलाएँ."

पंकज के कहते ही सुकर्मा ने आँखें उठाकर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा, "जरूर आएँ, भाभी जी के साथ. मैं उनसे कुछ नई 'रेसिपी' सीख लूँगी."

सबने ज़ोर से ठहाका लगाया. सुकर्मा सपाट एवं भावविहीन चेहरा लिए वापिस अपने काम में व्यस्त हो गई.

साँझ पाँच बजे तक ऑफिस में अजब सन्नाटा छाया रहा. सबकी नज़र में सुकर्मा के प्रति सम्मान-भाव तनिक बढ गया.

मुखर्जी साहब ने वेतन-पंजिका पर हस्ताक्षर किए और सुकर्मा की ऊँचे स्वर में तारीफ की, "बहुत अच्छा काम कर रही हैं आप. ऐसे ही करती रहें."

सुकर्मा ने हल्की मुस्कान के साथ कहा, "जी..." वन्दना ने अपनी टाइप-मशीन पर कवर डाला और सुकर्मा को हाथ हिलाकर विदा कहा. सुकर्मा ने उसकी तेज चाल के साथ कदम मिलाते हुए कहा, "आप सब बहुत भले हैं..."

पच्चीस

जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए सुकर्मा और अधिक आकर्षक दिख रही है–गर्दन में सजा बड़ा-सा जूड़ा, कन्धे पर बैग और ऊँची एड़ी के बन्द जूते!

जूतों की टिकटिक का स्वर उसकी सधी हुई चाल की तीव्र गति से जैसे मुकाबला कर रहा है. चलते हुए वह तेजी से सोच रही है, 'अपने घर पर फोन का बन्दोबस्त करना होगा. रोज़-रोज़ सुमेधा दीदी को तंग करना ठीक नहीं होगा.'

घर के दरवाज़े पर हलकी थाप देकर उसने सुमेधा दीदी के घर की ओर देखा, 'अभी भी सौरभ उन्हीं के घर न हो.'

जसवन्ती ने दरवाजा खोलते ही कहा, "बेबी सो रहा है. आज दिन-भर सुमेधा मेमसाहब के साथ धूप में खेलता रहा."

सुकर्मा ने कहा, "हाँ, ठीक है. उनको ज्यादा तंग तो नहीं किया न?"

"तंग क्या ? बेऔलाद के घर बच्चा आए, रब की मेहरबानी है...वह तो बहुत खुश रहीं..."

सुकर्मा ने उसकी बात पर गौर न करने में ही समझदारी समझी. गुसलखाने में जाकर ठण्डे पानी के छींटे आँखों पर मारे. तौलिया हाथ में लेकर बेडरूम की ओर जाते हुए कहा, "कुछ सैण्डविच बना लें, जसवन्ती."

"जी, अच्छा ! साहब के लिए भी चाय का पानी रख दिया है." जसवन्ती ने दबे स्वर में कहा.

सुकर्मा नहीं जानती, जसवन्ती को कैसे मालूम है कि शाम को सुदीप यहीं आएगा. वह सोच ही रही थी कि कुन्ती दी ने दरवाजे से प्रवेश करते हुए जसवन्ती से पूछा, "मेमसाहब आ गईं क्या ? मुन्ना कैसा है? दिन-भर रुलाया तो नहीं न उसे?"

"नमस्ते, कुन्ती दी! आइए. सौरभ ठीक है. सुमेधा दीदी के घर में खेलता रहा धूप में."

"तुम्हें कैसे मालूम?" कुन्ती दी की आवाज़ का तीखापन सुकर्मा को खल

गया.

"मैंने फोन किया था सुमेधा दीदी के घर. अपने घर पर भी फोन की व्यवस्था जल्दी करनी होगी." सुकर्मा ने दृढतापूर्वक कहा.

कुन्ती दी बिना उत्तर दिए सौरभ को देखने के लिए चली गई. सौरभ आराम से सो रहा है, यह देखकर उन्हें तसल्ली के साथ कुछ परेशानी भी हुई.

सुकर्मा साड़ी बदलकर रसोईघर में चली गई. उसने सौरभ की बोतलों को खंगालकर भगौने में रख दिया. जसवन्ती सैण्डविच बनाने में मग्न है. सुकर्मा ने फ्रिज खोलकर सब्जियाँ निकालीं और जसवन्ती से पूछा, "आपने खाना नहीं खाया क्या ?"

"खाया था, सुमेधा मेमसाहब के यहाँ ही खा लिया था."

सुकर्मा को अच्छा नहीं लगा. वह जानती है, कोई भी किसी के लिए कुछ ज़रूरत से ज्यादा मदद का भाव दिखाए, तो सावधान हो जाना चाहिए. वैसे भी अपनी जिम्मेदारियाँ खुद उठाना चाहती है. वह किसी की दया की पात्र क्यों बने ?' सुकर्मा ने मजबूती से कहा, "कल सुबह मेरा टिफिन तैयार करते हुए आप अपने लिए भी परौँठा बना लें."

"जी, मेमसाहब ! मैंने तो आज भी कहा था, 'आप सौरभ बाबा के साथ खेलें, मैं खाना खाकर आती हूँ.' वह मानी ही नहीं."

सुकर्मा ने एकदम मुड़कर कहा, "सौरभ को अकेले नहीं छोड़ना. एक क्षण के लिए भी नहीं."

जसवन्ती डर गई, "जी, मेमसाहब !"

चाय की ट्रे के साथ बाहर आते हुए सुकर्मा ने पुन: कहा, "आप समझ गईं न? किसी के साथ भी अकेले नहीं छोड़ना. एक मिनट के लिए भी नहीं."

सुदीप ने घर में प्रवेश करते ही सुकर्मा की ज़रूरी ताकीद सुनी, तो मन्द-मन्द मुस्कराते हुए पूछा, "हम सभी तो अकेले हैं. यह किसको अकेले न छोड़ने की बात हो रही है?"

सुकर्मा ने सिर घुमाकर देखा, "सौरभ बाबा को... और किसे...?"

सुदीप हँस दिया, "आप तो एक ही दिन में परेशान हो गईं. कुन्ती के पास ही रहने देतीं तो क्या बुरा था ?"

कुन्ती को देखकर एकदम ठिठक गया सुदीप, "आप यहाँ कब पहुँचीं ?"

"अभी दस-पन्द्रह मिनट पहले. सौरभ के बिना पहाड़-सा दिन बीत ही नहीं रहा था."

"अच्छा किया आपने, इधर आ गईं. हैं कहाँ छोटे जनाब ? लाओ तो

ज़रा, गोद में लेकर हम भी गर्म हो जाएँ." सुदीप ने सुकर्मा की ओर देखकर कहा.

रसोई से जसवन्ती ने जवाब दिया, "बेबी सो रहे हैं."

चाय पीने के बाद सुदीप ने अखबार उठाया, तो एक बन्द लिफाफा जमीन पर गिर गया. सुदीप ने झुककर खत उठाने का उपक्रम किया और पूछा, "किसका खत है भाई?"

जसवन्ती दौड़ती हुई रसोईघर से आई, "मेमसाहब! डाकिया बाबू खत दरवाज़े के नीचे से डाल गए थे. गलती से मेरा गीला पैर पड़ गया था. मैंने अखबार के साथ धूप में रखा था."

सुदीप ने लिफाफे पर लिखे नाम को पढ़ने की नाकाम कोशिश की. पानी के लगने से वह सिर्फ स्याही का धब्बा बन गया है. सुदीप को याद आया कि कल सुकर्मा रागिनी के खत की बात कर रही थी. उसने बन्द लिफाफे को गौर से देखते हुए सुकर्मा से पूछा, "आपने रागिनी का खत खोला नहीं क्या?"

कुछ भी बोले बिना सुकर्मा ने सुदीप से खत ले लिया. वह खुद हैरान है, रागिनी ने इतनी जल्दी दूसरा खत क्यों भेज दिया. उसने खत को किनारे से खोलकर देखा. उसके चेहरे के बदलते भाव को कुन्ती और सुदीप दोनों ने पढ़ा.

सुकर्मा ने सहजता से कहा, "इंग्लैण्ड से आया है." और खत को दुबारा लिफाफे में रख दिया.

शालीनतावश सुदीप और कुन्ती दोनों ही खत के विषय में ज्यादा कुछ पूछ नहीं सके. दूसरे का खत पढ़ना तो शिष्टाचार के विरुद्ध है. दोनों में ही यह नीला लिफाफा अजीब-सी उत्सुक्ता जगा गया.

सुकर्मा ने खाने के लिए उठते समय पत्र को हाथ में ले लिया और भीतर जाकर पर्स में रख दिया. कुन्ती और सुदीप की आँखें खत का पीछा कर रही हैं. दोनों को आभास हो रहा है, सुकर्मा कुछ छुपा रही है.

"आप खत पढ़ तो लें. रागिनी ठीक तो है न?"

"हाँ, ठीक है."

"और सात्त्विक...?" सुदीप के सवाल ने सुकर्मा को हिला दिया.

"हाँ, क्यों नहीं. ठीक ही होंगे."

"क्या मतलब...?" सुदीप ने पैनी निगाह से देखते हुए पूछा.

सुकर्मा ने मौन साधे रखा. उस दिन वह रागिनी के खत की एक-एक बात सुदीप को बताना चाहती थी लेकिन आज उसने यह भी बताना ज़रूरी

नहीं समझा कि यह खत सात्विक का है, रागिनी का नहीं.

खाने की मेज पर अजीब-सा सन्नाटा पसर गया. कुन्ती दी को अपनी भाभी का बदला हुआ रुख अखर रहा है. वह कुछ कहने की स्थिति में नहीं है. सुदीप ने हमेशा बसन्त की दोस्ती के रिश्ते को ज्यादा अहमियत दी है. अकसर कुन्ती को महसूस होता है, वह अपनी भाभी पर अधिकार का रिश्ता खो रही है. शिकायत करने की आदत न होने के कारण वह कभी भी खुलकर कुछ नहीं कह सकी.

सुकर्मा ने चुप्पी को तोड़ते हुए बताया, "इतवार को पिताजी आ रहे हैं."

"कुछ खास वजह...?" सुदीप ने कर्त्तव्यवश पूछा.

"नहीं, चाचाजी कुन्ती दी से मिलना चाहते हैं. सो, चाचा-चाची के साथ पिताजी भी आ रहे हैं."

"आपने हमें बताया नहीं!" कुन्ती की ओर मीठी शिकायत का स्वर उछला.

"हमें तो मालूम ही नहीं है. माँ-पिताजी ने इस बारे में कोई जिक्र नहीं किया. पिछले इतवार को फोन तो आया था," कुन्ती ने कहा.

"हमें तो वर्षा का पत्र आया है गोरखपुर से. वहाँ चाचाजी ने राधा के लिए शादी की बात चलाई है," सुकर्मा ने बिना किसी लाग-लपेट के कहा.

कुन्ती दी के जिगर में सुई-सी चुभी. सुदीप ने कहा, "मैं सुबह फोन करूँगा. आप परेशान न हों. मैं स्टेशन से ले भी आऊँगा उन सबको. ताऊजी भी हमारे साथ ही रहेंगे."

रिश्ते के अधिकार के सामने सुकर्मा ने कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं की. उसके देहरादून आने के बाद पिताजी पहली बार आ रहे हैं. कायदे से तो उनको सुकर्मा के साथ ही रहना चाहिए.

कुन्ती-सुदीप के जाने के बाद, सुकर्मा ने दरवाज़ा बन्द किया और भागकर अलमारी से पर्स निकाला. पर्स से चिट्ठी निकाली।

'सुकर्मा जी

कैसी हैं आप? आपको नव वर्ष की मंगल कामनाएँ भेज रहा हूँ. रागिनी ठीक है, बेचैनी से नए शिशु का इन्तजार कर रही है. प्रभु उसे स्वस्थ रखे.

मेरे दोस्त संदीप के पिता विधायक हैं. वह आपके लिए टेलीफोन की व्यवस्था कर रहे हैं. शुल्क आदि सब जमा हो गया है. 15 जनवरी तक फोन लग जाएगा. अपना खयाल रखें. सुदीप एवं कुन्ती जी को प्रणाम.

—सात्विक

खत को मोड़ने से पहले सुकर्मा ने दाहिने कोने पर लिखा हुआ शहर का

नाम पढ़ा : 'ग्लासगो'. 'रागिनी ने तो किसी और जगह का जिक्र किया था. क्या था वह...? लन्दन तो नहीं था और ग्लासगो तो बिलकुल भी नहीं था.'

उसने पर्स में हाथ डालकर रागिनी का खत निकाला, खोला और गौर से देखा. दायें किनारे पर किसी शहर का नाम नहीं लिखा है. तारीख भी नहीं है. सभी लोग पत्र-लेखन के मूलभूत रटे-रटाए तरीके को अपनाएँ, यह ज़रूरी तो नहीं है. वैसे भी व्यक्तिगत पत्रों में किसी नियम-कायदे को मानना ज़रूरी समझा भी नहीं जाता है

सरसरी निगाह से खत दुबारा पढ़ा और सुकर्मा ने सोचा, 'वह शायद नॉटिंघम शहर में हो. हालाँकि उसने यही लिखा है, कार्ड में चित्र वहाँ के विश्वविद्यालय का है. डिग्री करने का विचार तो उसने छोड़ ही दिया है. वह नॉटिंघम में क्यों होगी ? नहीं, नहीं, वह ग्लासगो में ही होगी—सात्त्विक के साथ.'

अपने मन को आश्वस्त करके वह कपड़े बदलने के लिए चली गई. सौरभ के लिए गर्म पानी और गर्म दूध फ्लास्क में रखकर उसने बिस्तर पर लेटकर आँखें मूँद लीं...।

छब्बीस

जनवरी की ठण्ड में ठिठुरते हुए रात बीती. दिमाग में लगातार विचारों का घमासान युद्ध चलता रहा, 'पिताजी कहाँ रहेंगे ? रागिनी-सात्त्विक के सम्बन्ध...? सात्त्विक ने बिन कहे फोन की व्यवस्था कैसे कर दी ? सौरभ कब बड़ा होगा ?'

असली सवाल कौन-सा है, वह नहीं जानती या जानते हुए भी जानना नहीं चाहती है. सुबह उठकर रूटीन में फिरकी की तरह घूमते हुए कब ऑफिस पहुँच जाती है, मालूम भी नहीं होता—यही सोचकर उसे कुछ राहत मिली. उसने ट्रांजिस्टर को हलके स्वर में चला दिया. रामचरितमानस के पाठ का स्वर सुनकर उसे खयाल आया, 'सात्त्विक ने यह कैसे लिखा : प्रभु रागिनी को ठीक रखे? उसे विश्वास नहीं हुआ कि घोर मार्क्सवादी बदल सकता है, वह भी सात्त्विक जैसा स्पष्ट एवं दृढ़ विचार वाला व्यक्ति. उसने मार्क्सवाद को औरों की देखा-देखी या महज फैशन या विचारवान होने के स्टेटस-सिम्बल की तरह स्वीकार नहीं किया था.'

सुकर्मा जानती है, सात्त्विक गहरे तक इस विश्वास से बँधा है कि हरेक इनसान को आत्मसम्मान के साथ जीने का मूलभूत अधिकार प्राप्त होना ही चाहिए. यहाँ तक कि वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक बार नक्सलवादी बनने को भी तैयार हो गया था. सुकर्मा को याद है, उसे बसन्त ने बताया था कि कभी पूना में फिल्म देखते हुए सात्त्विक जेल जाते-जाते बचा था. उस समय सुकर्मा को समझ नहीं आया था, कोई फिल्म देखते हुए गिरफ्तार क्यों और कैसे हो सकता है. बसन्त ने खुलासा किया था कि उन दिनों फिल्म शो के अन्त में राष्ट्रीय गान गाया जाता था. उस समय सभी दर्शक सावधान की मुद्रा में खड़े होते थे. सात्त्विक ने राष्ट्रीय गान के समय खड़े होकर हिस्सा लेने से इनकार कर दिया था.

ऐसे कट्टर मार्क्सवादी व्यक्ति का लिखकर प्रभु में विश्वास जताना कुछ अजीब-सा लगा. सुकर्मा ने अन्दर जाकर चिट्ठी को दुबारा पढ़ने के लिए

खोला ही था कि दरवाजे की घंटी बजी. खत लिए हुए ही सुकर्मा ने यह सोचकर दरवाज़ा खोला, 'जसवन्ती जी आई होंगी.' वह सामने सुदीप को देखकर हैरान हो गई, "अरे, आप? गुड मॉर्निंग!"

"गुड मॉर्निंग, क्या पढ़ रही हो इतनी सुबह?"

"कुछ नहीं." सुकर्मा ने खत मेज पर रखे कप के नीचे दबा दिया.

"मैं तुम्हें 'सॉरी' कहने के लिए आया हूँ."

"जी...मैं कुछ समझी नहीं?" सुकर्मा ने एक कदम पीछे हटते हुए कहा.

सुदीप ने आगे बढ़कर उसे कन्धों से पकड़ लिया और कुर्सी पर बिठाते हुए कहा, "कुन्ती ने जान-बूझकर तुमसे कुछ नहीं छुपाया. मैं जानता हूँ, तुम्हें कितना दु:ख हुआ होगा. मैं भी आहत हूँ."

"क्यों? किसलिए...? क्या बात हुई?" एक साँस में सुकर्मा ने सुदीप से उसके आहत होने का कारण पूछा.

"मैं जानता हूँ, माँ-पिताजी ने तुम्हें ज़रूर बताया होगा."

"क्या...?" सुकर्मा के स्वर में तनिक झुँझलाहट थी.

"कुन्ती माँ बनने वाली है."

सुकर्मा का मुँह खुला-का-खुला रह गया, "अच्छा! बधाई हो आपको."

अब सुदीप के हैरान होने की बारी थी, "यानी कि तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं है?"

"न तो, मैं कैसे जानूँ? आपने तो अभी बताया है."

"मुझे भी आधा घंटा पहले ही मालूम हुआ है. मैं माँ-पिताजी को फोन मिला रहा था, तो घबराकर कुन्ती ने मुझे बताया. वह जानती थी, वे लोग फोन पर मेरी आवाज सुनते ही इसी बारे में बात शुरू करेंगे."

"क्या सच में आपको भी मालूम नहीं था? मैं तो चलो भाभी हूँ." सुकर्मा को यकीन नहीं हुआ. वह सोच रही थी, 'रागिनी ने जो लिखा, वह कोई अनहोनी तो नहीं है? यहाँ भारत में, कुन्ती दी जैसी परम्परावादी गृहस्वामिनी अपने पति को आनेवाली सन्तान की सूचना देने जैसी महत्त्वपूर्ण बात को पेट में रख सकती हैं, तो...तो कुछ भी हो सकता है.' उसने रागिनी और सात्त्विक के खत सुदीप के हाथ में दिए और स्वयं चाय बनाने के लिए रसोई में चली गई.

सुदीप ने दोनों खतों को दो-दो बार पढ़ा और रसोई के दरवाज़े पर आकर कहा, "यह क्या है?"

सुकर्मा ने सवालिया निगाह से देखा.

"फोन के लिए आपने कुछ कहा था क्या...?" सुदीप के सवाल से सुकर्मा को चोट पहुँची.

"हम कैसे कहते...? हमारे पास फोन की सुविधा है क्या...?"

सुदीप को अपनी गलती का एहसास हुआ, "सॉरी"

सुकर्मा ने मुडकर चाय केतली में डाली और ट्रे उठाकर सुदीप की टेढ़ी आँख से बचते हुए बरामदे में आ गई. उसे बाहर फैली हुई उजली धूप की चमक से सुख मिला. उसने कप में चाय बनाकर सुदीप की ओर देखा. वह चुपचाप सामने रखे मोढ़े पर आकर बैठ गया. एक घूँट भरते ही सुदीप ने कहा, "चाय बहुत अच्छी बनी है."

"धन्यवाद !" सुकर्मा ने चाय का घूँट भरने से पहले कप को होंठ से हलका स्पर्श किया.

सुदीप को उसकी यह अदा बहुत अच्छी लगती है. वह मन-ही-मन मुस्करा दिया. उसने रागिनी का खत दुबारा पढने के लिए खोला.

"अब आप इसे बार-बार क्या पढ़ रहे हैं ? बिलकुल वैसे, जैसे हम इम्तहान से पहले एक ही पृष्ठ पर अटक जाते थे."

"बात ही कुछ अजीब-सी है." सुदीप ने कहा.

सुकर्मा आकाश के नीले फैलाव को देखती रही. उसके मन में इच्छा जाग रही थी कि वह भी साफ लफ्ज़ों में कह दे, 'हॉं, बात तो अजीब है. दुनिया जानती है और आपको ही नहीं मालूम कि आप पिता बनने वाले हैं.' मर्यादा की रेखा ने उसे चुप रहने के लिए बाध्य किया.

"रागिनी ने ऐसा क्यों लिखा है कि यह सिर्फ उसका बच्चा है ?" सुदीप ने पूछा.

"मैं क्या जानूँ?" सुकर्मा के खिलखिलाकर हँसने से सुदीप झेंप गया.

"हाँ, सो तो है. यूरोप में तो कुछ भी हो सकता है. हो सकता है, कोई स्थायी मित्र हो या शायद कोई एक रात का मित्र हो..." सुदीप ने चिढ़कर कहा.

"हम नहीं सोचते थे कि आप भी ऐसा सोच सकते हैं." सुकर्मा का दु:ख-भरा स्वर था. 'ये पुरुष स्त्री पर लाँछन लगाने से पहले एक क्षण भी नहीं सोचते. स्वयं की कायरता को स्त्री के माथे मढ़ने में इनका कोई सानी नहीं.' सुकर्मा ने सोचा.

"क्यों, मैं भी आम इन्सान हूँ. और इसमें गलत कहा ही क्या है मैंने? यदि सात्त्विक का बच्चा नहीं है तो..."

सुकर्मा ने पूरी बात सुने बिना सुदीप के हाथ से खत ले लिया. प्यार से खत को मोड़कर अपनी गोद में रखकर जता दिया कि वह रागिनी के विरुद्ध कुछ नहीं सुनेगी. एक ही घूँट में चाय खत्म करके उठते हुए सुदीप ने कहा, "अच्छा, चलूँ... शाम को मिलते हैं."

सुकर्मा का जी चाह रहा था कि वह उत्तर दे, 'नहीं, काफी हो गया आज के लिए. अब कल मिलेंगे.'

जाने कैसी विवशताएँ हैं चारों ओर! जो मन चाहो, कह नहीं सकते; जो चाहो, पहन नहीं सकते और जो चाहो, वह खा भी नहीं सकते.

उसने ऊँचे स्वर में कहा, "शाम को कुन्ती दी को भी लेते हुए आना. मैं काले भट्ट और लोहे की कड़ाही में पालक-पनीर बनाऊँगी."

सत्ताईस

कुन्ती ने अब अपने दिमाग से यह बात निकाल दी कि सुकर्मा उसकी गर्भवती होने के कारण सौरभ को ले गई है. साथ ही, यह सोचना भी छोड़ दिया कि सौरभ चार-छ: दिन में वापस आ जाएगा. वह जान गई थी, लोग ऊपर से जो दिखाई देते हैं, उससे कहीं ज्यादा गहरे होते हैं. कम-से-कम सुकर्मा के बारे में तो यह बात सौ प्रतिशत सच है.

वह सुदीप के साथ शाम को सुकर्मा द्वारा बनाई गई हाई-आयरन सब्जी और हाई-प्रोटीन दाल खाकर खुश हो गई. सुकर्मा उसका कुछ ज्यादा ख्याल रख रही है, इस बात से उसका सरल मन स्नेह से सराबोर हो गया. मतलब साधने वाले व्यावसायिक रिश्तों से कुन्ती पूर्णतया अनभिज्ञ हो, ऐसी बात नहीं है.

उसका विश्वास है, 'जब आप मतलबी रिश्ता नहीं गाँठ रहे हों, तो दूसरी ओर से भी सच्चा स्नेह मिलता ही है. कुछ भी हो, सुकर्मा चालाक हो सकती है, स्वार्थी नहीं.'

अपने मन में यह विचार आते ही वह मुखरित रूप से सुकर्मा के प्रति उदारचेता हो गई, "मेरे लिए तो तुम्हीं यहाँ माँ की जगह हो. उम्र में छोटी होने से क्या...? रिश्ते में तुम भाभी हो–माँ जैसी और फिर दो बच्चों की माँ हो."

"एक की." सुकर्मा के मुँह से निकला.

कुन्ती और सुदीप ने एक-दूसरे को देखा और कहा, "अब सौरभ हमारा नहीं, आपका बेटा है. आप सौरभ को कैसे भूल सकती हैं ?"

दोनों के मिश्रित स्वर से सुकर्मा को अपनी भूल का एहसास हुआ. झेंप छुपाते हुए उसने कहा, "सौरभ की बड़ी माँ तो आप ही रहेंगी."

"हाँ, क्यों नहीं...!" कुन्ती ने हवा में कह दिया. जाते समय कुन्ती ने सुकर्मा को प्यार से गले लगाया. न जाने क्यों दोनों के नेत्र भर आए ! कहीं-न-कहीं बसन्त की अनुपस्थिति का आभास दोनों को रहता ही है. सुदीप पुरुष

होने के नाते कठोर कवच ओढ़े रहता है ; हालाँकि कई बार सुकर्मा सोचती है कि उससे भी ज्यादा सुदीप को बसन्त की कमी खलती होगी. अकेली महिला से कर्त्तव्यवश रोज़ मिलने आना एक बात है और अपने मित्र से गप-शप, विचारोत्तेजक परिचर्चा करना अलग तरह का सुख है. सुकर्मा लाख चाहे, तो भी वैसा कुछ नहीं कर सकती है. बसन्त के होने पर उसके सहारे वह बड़ी-बड़ी बातें कह लेती थी, सोच लेती थी, मार्क्स-लेनिन के उद्‌गारों को शब्दश: सुना देती थी. अब तो सुबह की बात साँझ तक भूल जाती है. सौरभ ही भूल गया उसे तो. उसने घुटने मोड़कर माथा रख दिया.

आँसू आए या नहीं, मालूम नहीं. दिल तो तार-तार क्रन्दन करता है. पेट में उमेठन होती है. टाँगें काँप-काँप जाती हैं. हाथ में टुथ-ब्रश पकड़ने की हिम्मत भी बाकी न बची हो जैसे.

कपड़े बदले बिना सोना उसे अच्छा नहीं लगता है. अब कौन कम्बख्त अच्छा लगने के लिए जी रहा है. उसने टाँगें लम्बी कीं, रजाई को पेट तक खींच लिया और सीने पर दोनों हाथ बाँधकर छत की ओर देखना शुरू किया. रोशनदान में कबूतरों की जोड़ी गर्दन घुसाकर बैठी है. सुकर्मा को हँसी आ गई. बसन्त अकसर रात को कहता था, 'चलो, कबूतर बनते हैं.'

बाद में तो सुकर्मा भी स्वर मिलाकर कहने लगी थी, 'और गुटरगूँ करते हैं.'

उसने करवट ली, शरीर को थपथपाकर सुलाने की कोशिश की. रोम-रोम से बसन्त के लिए पुकार उठ रही है.

'क्या रागिनी का बच्चा सचमुच... क्या कोई स्त्री एक पुरुष के रहते अन्य के साथ दैहिक हो सकती है? नहीं! ऐसा स्त्री नहीं कर सकती. पुरुषों की बात और है...' मन-ही-मन मुस्कराते हुए उसने सोचा, 'ऐसा कैसे हो सकता है? आखिर हरेक पुरुष का विवाहेतर सम्बन्ध किसी-न-किसी स्त्री के साथ ही होता होगा न! उसमें विवाहित औरतों का अनुपात भी कम नहीं होगा!' सोचते-सोचते कब नींद आ गई, मालूम नहीं.

रात-दिन के झंझावात में भी सुकर्मा का मन तारीखों की गिनती नहीं भूला. वह लगातार रागिनी के शिशु के आने की प्रतीक्षा करती रही है। वह उसकी तस्वीर भेजने के लिए लिख भी चुकी थी. रागिनी ने जवाब में लिखा था :

'प्रिय सुकर्मा जी,

जन्म से पहले तस्वीर भेजने की तकनीक मुझे नहीं मालूम है. आप अनुभवी हैं, आप ही रास्ता सुझाएँ. यहाँ सर्दी बढ़ रही है. तीखी हवाएँ और

आर्द्रता तो मेरी जान ही ले लेती ! बस, नये बच्चे के लिए उधार का जीवन जी रही हूँ...

आप कैसी हैं ? अपना खयाल रखें. औरत को अपने पैरों पर खड़ा होते देखकर मेरा जी बल्लियों उछलने लगता है.

मैं मार्च में आपके पास आकर तीन माह के लिए रहूँगी. चाइल्ड-केयर के गुर जो सीखने हैं. मैं अपने बच्चे को भारतीय तरीके से पालना चाहूँगी. मेरा तो जी करता है, उसकी पंडितों की तरह चोटी रखूँ.

शेष फिर,
रागिनी'

सुकर्मा हैरान थी, 'यह क्या होता जा रहा है रागिनी एवं सात्त्विक को! एक ही जीवन में कोई विचार से इतना कैसे बदल सकता है? वह भी साम्यवादी विचारधारा के लोग उलटे पैर कैसे खड़े हो सकते हैं ?'

उसने सोचा, 'कभी फोन पर बात होगी, तो पूछूँगी.'

जनवरी बीत गया, फोन नहीं लगा. फरवरी की आठ तारीख को नम्बर मिला. उसने सोचा, 'सात्त्विक को फोन करूँ.' सारी डायरी, सारे कागज़ ढूँढ़ने के बाद भी सात्त्विक का फोन नम्बर नहीं मिला. पहला फोन सुदीप का आया, फिर कुन्ती दी ने कहा, "चलो, अच्छा हुआ, देर-सवेर आने की बजाय सौरभ का हाल फोन से ही जान लूँगी."

सुकर्मा को अच्छा नहीं लगा. उसने कहा, "हाँ, मैं भी अब दिन भर सुमेधा दीदी को फोन करके तंग नहीं करुँगी."

"फोन तो उन्हीं को करना होगा. दिन भर सौरभ उन्हीं के घर तो रहता है न ?" कुन्ती ने सरल-भाव से कहा. सुकर्मा को बात चुभ गई. सच को साफ-साफ सुनना मुश्किल होता ही है न!

रात को सात्त्विक ने फोन किया. 'उसने सुदीप से नया नम्बर ले लिया होगा.' सुकर्मा ने सोचा.

वही उत्साह से भरा स्वर सुनाई दिया, "सुकर्माऽऽऽ! कैसी हैं आप ?"

"जी, अच्छी हूँ।"

"वह तो आप हैं ही. तभी तो हम आपके प्रशंसक हैं." सात्त्विक ने चिहुँक के साथ कहा. यही वाक्य सुकर्मा ने बसन्त की उपस्थिति में सात्त्विक के मुँह से अनगिनत बार सुना होगा. आज उसके कन्धे सकुचा गए.

"रागिनी कैसी है?" उसने जल्दी से पूछा.

"अरे, वन्डरफुल। कल रात नये शिशु ने आँखें खोली हैं. यही बताने के लिए तो सुदीप को फोन किया था, तो उससे भी ज्यादा अच्छी खबर सुनी."

"वो क्या...?" सुकर्मा ने सात्त्विक की आवाज़ में उभरते नए भाव की छाया को नहीं पकड़ा.

"अरे! आप नहीं जानतीं... आपके यहाँ फोन का लगना." सात्त्विक खिलखिलाकर हँस दिया.

सुकर्मा ने फोन को अपने कान से दूर किया और एक हाथ अपने धड़कते दिल पर रख लिया.

"आपको बहुत बधाई. पिता बनने का सुख अद्‌भुत होता है."

बिना जवाब दिए सात्त्विक फोन काटना चाहता है. शिष्टाचारवश उसने कहा, "मैं तो ब्रह्मचारी हूँ."

"प्ले ब्वाय रहे हैं आप. अब इंग्लैण्ड में जाकर बातें बनानी और आ गईं है आपको." सुकर्मा को अपने-आप पर हैरानी हुई, यह बात उसने कैसे कह दी. दोस्तों के बीच की बात उसके पति ने उसे बता दी, तो इसका मतलब यह तो नहीं है कि वह विश्वास तोड़े. घबराहट में उसने चारों ओर देखा.

उधर से लम्बे सन्नाटे के बाद सात्त्विक ने कहा, "वह पुरानी बातें हैं. सुकर्माजी! औरत के इतने रूप देख लिए हैं कि अब वितृष्णा हो गई है."

सात्त्विक के स्वर की गहन गम्भीरता भीतर तक छू गई, "कभी मिलेंगे, तो बात करेंगे, बाय." और फोन खटाक से कट गया।

अट्ठाइस

गिरजाघर के घंटे की आवाज़ सुनकर सुकर्मा चौंकी. रोज़ सुनाई देनेवाली आवाजें भी डरावनी हो सकती हैं, यह उसने पहली बार जाना. अपनी कलाई को मोड़कर स्ट्रीटलाइट की रोशनी में टाइम देखा और वह एक झटके में उठ खड़ी हो गई. आज वत्सला से मिलने के लिए मसूरी जाना है. उसकी फरमाइश है कि गाजर का हलवा लेकर आना. रसोई में जाकर गाजर को बड़ी कड़ाही में रखा, दूध डाला और दूसरी ओर चाय का पानी रख दिया.

जसवन्ती के आने तक आधा काम हो चुका था. उसने सोचा, 'आज जसवन्ती और सौरभ को भी साथ ले जाऊँगी. भाई-बहन को आपस में मिलते रहना चाहिए. मैंने भी आँखें मूँद लीं, तो वे दोनों ही तो एक-दूसरे का सहारा होंगे.' फिर, खुद ही, अपने गाल पर हलकी चपत लगाई, 'गन्दी बात...! अपनी जिम्मेदारी पूरी करनी है मुझे. अपनी ही क्यों, बसन्त की भी.'

पीछे से सुदीप कब आकर खड़ा हो गया था, उसे मालूम ही नहीं हुआ. हलवा डिब्बे में डालकर मुड़ी तो देखा, जनाब खड़े-खड़े मुस्करा रहे हैं. "बुरी बात, ऐसे कोई चुपके से आता है क्या?"

"आपने ही तो दरवाज़ा खोलकर रखा था हमारे स्वागत के लिए." सुदीप ने चुटकी ली.

"वो तो जसवन्ती के लिए..." सुकर्मा कहते-कहते चुप हो गई. 'यह क्या कह दिया मैंने. सुदीप बुरा मान गए तो? किसी को भी फॉर-ग्रान्टेड नहीं लेना चाहिए.' अपनी अधूरी बात को ढकते हुए कहा, "मेरा मतलब है, रोज़ ही जसवन्ती के लिए दरवाजा खुला छोड़ती हूँ, वरना नहाते समय खट-खट से बहुत परेशानी होती है."

"मेमसाहब! सावधान. किसी दिन कोई दिल-फेंक आशिक आ गया तो..." सुदीप ने अपनी जुबान काटी, 'यह क्या बके जा रहा हूँ मैं. यहाँ सुकर्मा है सामने, उसके ऑफिस की लड़कियाँ नहीं, जो हर बेवकूफी की बात को सुनकर बेवजह खिलखिलाती रहती हैं.'

सुकर्मा की भृकुटि तन गई थी, "मैंने राजपूत घराने में जन्म लिया है. जौहर नहीं किया, तो क्या! अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जान दे सकती है औरतें, तो जान ले भी सकती हैं." उसके गाल-कान लाल हो गए थे.

पहली बार सुदीप ने सुकर्मा को चण्डी-रूप में देखा. सुदीप के पुरुष-भाव को कहीं भीतर तक सुकून मिला. वह सुकर्मा की सुरक्षा के लिए नाहक परेशान होता है. सुकर्मा तो अपनी रक्षा करने में स्वयं ही सक्षम है.

जसवन्ती के आने से दोनों को हवा के भारीपन से राहत मिली. जसवन्ती मसूरी जाने की बात से बेहद खुश हो गई. भाग-भागकर काम खत्म किया और सौरभ को गोद में लेकर सबसे पहले कार में बैठ गई.

वत्सला ने सौरभ को हाथों-हाथ लिया. नन्ही-सी जान को समझ नहीं आ रहा है, अपनी खुशी कैसे जाहिर करे. वह चाहती थी कि सारा गाजर का हलवा सौरभ खा ले. सुदीप ने उसे चॉकलेट दिए, तो वह भी उसने सौरभ के हाथ में देने की नाकाम कोशिश की. सौरभ उसे टुकुर-टुकुर देखता रहा और सुकर्मा एवं सुदीप आह्लादित होते रहे.

सूरज के ढलने के साथ ही आसमान में जामुनी-नारंगी विन्टर-लाइन फैल गई. सुदीप ने कैमरे से तस्वीरें खींचते हुए होशियारी से सुकर्मा को भी कैद कर लिया. फ्रेम में लेते हुए उसकी आँख सुकर्मा के लहराते बालों की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकी. रीढ़ की हड्डी का तिर्यक् होना उसकी गोलाइयों को और आकार दे रहा है. सुदीप को याद है, जब बसन्त ने प्रथम दर्शन का शब्दचित्र खींचा था तो उसके नवयौवन में भी रक्त-संचार की ऊष्मा बढ़ गई थी.

औरतें ठीक कहती हैं, पुरुष तो बस पुरुष ही होते हैं. सुदीप सोच रहा है, 'औरतों में अभीप्सा नहीं जागती क्या ? झूठ बोलती हैं. हिप्पोक्रेट हैं, वरना सब-की-सब ठण्डे कोलतार की तरह सड़क पर जमी हुई न मिलतीं क्या ?' अपनी उपमा पर खुद ही हँसी आ गई उसे.

सुकर्मा ने चौंककर देखा, "क्या हुआ...?"

"कुछ नहीं." सुदीप ने क्लिक किया.

"आप भी शैतानी करते हैं क्या ?" सुकर्मा ने हलके मन से कहा.

'वह भी सुबह के तनाव को कम करना चाहती है.' सुदीप ने सोचा.

"क्यों, हमारे सीने में दिल की जगह आग का गोला है क्या या जमी हुई बर्फ ?" सुदीप ने अपनी ओर इशारा किया.

"यह तो आप जानें. हमें तो इतना मालूम है, आप एक अच्छे इनसान हैं—थॉरो जेन्टलमैन. आप पर कोई सोलह साल की लड़की भी भरोसा कर

सकती है."

"आम आदमी ऐसा ही होता है सुकर्मा ! लडकी पर बाघ की तरह आक्रमण करनेवाले जंगली या फिर दिमाग से पागल ही होते हैं." सुदीप ने अध्यापक की तरह कहा.

सुकर्मा ने 'हाँ' में हामी भरी. वापसी में वह सोचती रही कि सुदीप, सात्त्विक, उसके सहकर्मी सभी तो भलेमानस हैं. किसी ने गन्दी निगाह से उसकी ओर नहीं देखा.

वन्दना के पति ने लोहड़ी की पार्टी में उसको देखकर कहा था, 'शी इज़ मिसिंग बसन्त बैडली. सेन्ड हर होम.'

उस दिन उसने महसूस किया था, आदमी में भी औरत को समझने की कुव्वत होती है. उसी दिन वह आश्वस्त भी हो गई थी कि कोई औरत खुद न्यौता न दे, तो आदमी उसके नज़दीक आने की हिम्मत नहीं कर सकता है.

वह अपना काम दिल लगाकर कर रही है. ऑफिस में उसकी कार्य-कुशलता की तारीफ होती है. उसने कभी औरत होने के नाम पर दफ्तर जल्दी नहीं छोड़ा और न ही स्त्री होने के कारण किसी अधिकारी से अकारण फायदा उठाने की कोशिश की.

गली-मोहल्ले के लोगों से मिलने-जुलने का मौका ही नहीं मिलता है. उसकी दुनिया कुन्ती दी, सुदीप तक सीमित है और आउटिंग के नाम पर वत्सला से मिलना काफी है जीने के लिए.

रागिनी-सात्त्विक का फोन आता रहता है, सो अलग. दोनों जन खत भी लिखते हैं, वह तो बोनस है. सुकर्मा का काफी समय इन खतों की गुत्थियाँ सुलझाने में बीत जाता है. कल रागिनी का अजीब-सा खत मिला.

'सुकर्मा जी!

न जाने क्यों आज मन के वातायन खुलने को आकुल हैं. आपसे ज्यादा भरोसा मैं और किसी पर भी नहीं कर सकती हूँ. यदि मुझे कुछ हो गया, तो तापस को आप अपने पास रखना. मेरा इंश्योरेंस काफी हैवी है. उसकी नॉमिनी भी आपको बनाया है मैंने. कागज साथ भेज रही हूँ. हस्ताक्षर करके तुरन्त लौटा दें.

तापस के पिता का नाम सिद्धान्त है. वह पेजली में रहते हैं. इससे ज्यादा और मैं भी नहीं जानती हूँ.

प्यार

–रागिनी'

सुकर्मा ने घर लौटकर रागिनी का खत सुदीप को देने के लिए पर्स से

निकाला. न जाने क्या सोचकर खत सुदीप को देने के स्थान पर स्टडी-टेबल के दराज में रख दिया.

किसी के विश्वास को तोड़ने की भूल वह कैसे कर रही है? रागिनी अपनी निजी बात सुदीप को बताना चाहे, तो खुद कहे. सुकर्मा को उसके व्यक्तिगत सत्य को जगजाहिर करने का हक नहीं है. फिर, कुछ भी हो. है तो सुदीप भी एक पुरुष ही। उसकी तंगदिली भी देखी है उसने.

वह जानती है कि उसके पुनर्विवाह की बात के विरुद्ध सुदीप पिताजी के सामने अड़ गया था. उसके ऐसा करने से सुकर्मा को सहारा मिला था. वह पुनर्विवाह के लिए सोच भी नहीं सकती है. एक-पुरुष-भोग्या स्त्री के सम्मान को बहुत मानती है वह. एक जमाने में तो उसे सुदीप या सात्त्विक से बात करके भी गिल्ट घेर लेता था. फिर भी, सबके अपने-अपने विचार होते हैं. परिस्थितियाँ भी जुदा होती हैं. अपने पैमाने से दूसरे के जीवन को नाप-तोलकर जजमेंट देना उसके स्वभाव में नहीं है. खत पढ़ने के बाद रागिनी के प्रति उसका मन और आर्द्र हो गया है.

डायरी खोलकर उसने रागिनी का फोन मिलाया. बच्चे के रोने की आवाज सुनकर अच्छा लगा, जैसे अभी-अभी डॉक्टर ने आवाज दी हो, 'बेटा हुआ है, स्वस्थ है !'

सुकर्मा ने तपाक से पूछा, "रागिनी ! कैसी हो ?"

रागिनी जानती थी, सुकर्मा को खत मिल चुका है. फिर भी बात शुरू करने के लिए पूछा, "आपको पत्र मिल गया है क्या?"

"हाँ, मेरी बहादुर लड़की, मैं तुम्हारे साथ हूँ। निराशा की बात मत सोचो. तुम तापस के बूढ़ा होने तक जिओगी..."

रागिनी की भर्राई आवाज़ सिसकी में गुम हो गई. "अच्छा, बताओ, मार्च में आ रही हो न?"

"हाँ, पक्का ! कल फोन करूँगी, बाय." रागिनी ने फोन रख दिया.

उन्तीस

ऑफिस में लोग क्रिकेट की चर्चा में मशगूल हैं. कुछ लोग धूप में खड़े होकर मौसम की चर्चा कर रहे हैं. सुकर्मा को अपना काम शुरू करने की जल्दी है. उसे दो मजदूरों का 'क्लेम' बनाना है. पिछले कई दिन से यह काम टलता आ रहा है. आज वह सोचकर आई है, हर हालत में यह काम पूरा करना है. रागिनी और सात्त्विक के बदलते रुख से परेशान होकर उसके भीतर का साम्यवाद सिर उठाकर खड़ा हो गया है.

सात्त्विक के एक वाक्य से वह भीतर तक हिल गई है. कल रात उसने फोन पर कहा था, 'मैं राधा के समर्पित प्रेम में विश्वास करता हूँ.'

चाहे सन्दर्भ कोई भी हो, बात तो मूल धारणा की है. उसके इस एक वाक्य में सुकर्मा को निहितार्थ का आभास हो रहा है. इस समय इस अर्थ को समझने में वह असमर्थ है. सोचते-सोचते उसने सिर को जोर से झटका दिया. वह अपनी ऊर्जा इस अनावश्यक पहलू पर क्यों खर्च कर रही है? इससे कहीं ज्यादा ज़रूरी है मजदूरों के क्लेम बनाने का काम. किसी भी हालत में वह अपनी छवि को खोना नहीं चाहती है. वह बसन्त के विश्वास को चोट नहीं पहुँचाना चाहती है. बसन्त प्रबन्धन में रहते हुए भी मौका मिलते ही मज़दूरों के साथ खड़ा हो जाता था. किसी भी मुद्दे पर मज़दूरों के संघर्ष की आग को सहारा ही नहीं, हवा भी देता था.

सुकर्मा ने फाइलें खोलीं और गम्भीर मुद्रा में पढ़ते हुए नोट्स बनाने शुरू किए. बन्द दरवाज़ों के पीछे प्रबन्धन क्या बात करे, कौन जाने. वह अपनी तरफ से कोई ढील नहीं छोड़ना चाहती है. केस मजबूत बनाने में उसकी अहम् भूमिका है. मजदूरों के साथ उसकी सहानुभूति का आभास प्रबन्धन को हो चुका है. यह कोई नहीं जानता है कि वह भी बसन्त के साथ लाल सलाम कहना सीख गई थी और अकसर उसके साथ बहस में हिस्सा लेती थी.

जब सात्त्विक ने पहली बार उससे मार्क्स के द्वन्द्ववाद पर जिरह की थी,

तो सिर झुकाकर कहा था, 'मैंने आपकी योग्यता को छोटी नजर से जाँचा था. मैं अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के लिए शर्मिन्दा हूँ. माफी चाहता हूँ. मैं नहीं जानता था कि आपने मार्क्स को गहराई से पढ़ा है.'

सुकर्मा ने बसन्त की ओर इशारा किया था, 'यह तो हमारे पति का, बल्कि यूँ कहो कि यह हमारे गुरु का प्रभाव है. हमें क्या से क्या बना दिया.'

सात्त्विक ने बसन्त का घुटना छूकर कहा था, 'हमें भी अपना चेला बना लो.' तीनों देर तक हँसते रहे थे.

कितना जोश था तीनों की शिराओं में! दुनिया को बदल देना चाहते थे. उनका विश्वास था, गरीब-अमीर का भेद मिट जाए, तो दुनिया में दु:ख की छाया न रहे. अमीर ही अधिसंख्य गरीबों के दु:ख का कारण है.

उस समय वे तीनों इस बात से अनभिज्ञ थे कि अमीरों का जीवन भी दु:ख से लबालब भरा है. वे तीनों समृद्ध परिवारों की सुख-सुविधा में पले-बढ़े हैं. तीनों ने धन-अनाज की कमी अपने घरों में नहीं, अपने घर से बाहर देखी है. किसी-न-किसी समय तीनों ने अपने हिस्से का सुख त्यागने का दु:साहस यह सोचकर किया कि गरीबों को सुख दे सकें.

सुकर्मा जानती है, बसन्त इस चाह को सीने में लिए चला गया. सात्त्विक के स्वर में समझौतावादी दृष्टिकोण झलक रहा है. वह स्वयं भी विवशता की अरगला से जकड़ी है. वह किसी को हीनकोटि का नहीं समझती है, फिर भी चाहकर भी उनके दु:ख-सुख में बराबर की साझेदारी नहीं कर सकती है.

उसका बस चले, तो क्लेम की प्रक्रिया की जटिलता को दूर कर दे. मज़दूर के हादसे में शिकार हो जाने के बाद इतनी लम्बी तहकीकात महज़ अविश्वास के कारण है या जानबूझकर देरी करने की इच्छा के कारण है, वह नहीं जानती है. जब से क्लेम की फाइलों पर उसने काम शुरू किया, तब से ही जाना, यह केवल प्रबन्धन की प्रभुता के प्रदर्शन का मोह है कि जवाब जानते हुए भी सवाल दागा जाता है.

अब वह जानती है, कितनी भी पूर्ण जानकारी हो, कोई-न-कोई घुन्डी में वे चतुर लोग अपना सिर फँसा ही लेते हैं. महाप्रबन्धक गिल साहब बहुत अच्छे हैं, तब यह हाल है. और जगह, जहाँ गिल साहब जैसे अधिकारी न हों, वहाँ क्या होता होगा?

ताज्जुब नहीं, हरेक टिप्पणी नकारात्मक रहती हो. सोचते-सोचते साँझ हो गई. लोगों के साथ लंच खाने का भी मन नहीं हुआ. सुकर्मा को लग रहा था, न जाने उन घायल मज़दूरों के घर में दाल-भात भी न बन रहा हो, वह बिरयानी के साथ पेट कैसे भर ले?

साँझ में घर लौटते हुए उसने सोचा था, रागिनी को फोन करके उसका कार्यक्रम पूछ लेगी. वह अभी न आ रही हो, तो वत्सला के साथ गाँव हो आए. उसे वत्सला को विन्टर-ब्रेक में भी स्कूल-मेट्रन के यहाँ छोड़ना अच्छा नहीं लग रहा है.

घर पहुँचकर उसने देखा, सुदीप पहले ही पहुँच चुका है. सौरभ उसके साथ खेल रहा है. जसवन्ती चाय के साथ पकौड़े बना रही है. सुकर्मा को घर की खुशबू अच्छी लगी. वह कपड़े बदले बिना ही सौंठ के साथ पकौड़े खाने के लिए बैठ गई.

सुदीप ने छेड़ते हुए पूछा, "आज तो जन्मों की भूख मिटा रही हो."

"हाँ, दिन में खाना नहीं खाया था." पकौड़ा लेते हुए उसने कहा.

"क्यों?" सुदीप ने पूछा.

"यूँ ही मज़दूरों के क्लेम बनाने में दिन बीत गया." वह हैरान है कि अपने घर के सुख में पहुँचते ही वह दिन-भर सोची गई बातें भूल कैसे गई.

अजीब है यह मनुष्य का मन! पल-पल में रंग बदलता है. अपने बदल जाने के सत्य स्वीकार करते ही उसे रागिनी और सात्त्विक के बदल जाने की बात समझ आने लगी. जीवन में, यूँ कह लीजिए, जगत में ही परिवर्तन न हो, तो विकास कैसे हो? रागिनी ने अपने बदल जाने की बात को सीधे-सीधे स्वीकार करते हुए लिखा है :

'सुकर्मा जी,

आप कैसी हैं?मुझे विश्वास है, बिलकुल नहीं बदली होंगी. मेरे विचार एक दिन में नहीं बदले हैं. यह एक लम्बी कहानी है. कभी मिलने पर विस्तार से बताऊँगी. अभी इतना जान लो कि मैं बिना जल की मछली की तरह छटपटा उठी थी, जिस दिन सात्त्विक घर में राधा-कृष्ण की प्रतिमा ले आए. सात्त्विक का कहना था, वह राधा-कृष्ण के प्रेम से अभिभूत है. मुझे लग रहा था कि हमारा परिचय मार्क्स के कारण हुआ था. हमारे रिश्ते का आधार मार्क्सवाद में विश्वास ही है. वही नहीं रहा, तो बाकी क्या रहेगा? तुम समझ रही हो न!

सात्त्विक सुनने-समझने को तैयार नहीं है. उसने मन्दिर जाने का नया शौक पाल लिया है. मेरा मानना है, यह कीर्तन, यहाँ इंग्लैण्ड में एशियन कम्यूनिटी का सोशलाइज़ेशन का तरीका है, और कुछ नहीं.

—रागिनी'

सुकर्मा ने जवाब में रागिनी को समझाया था, 'यदि तुम्हें मालूम है, यह सिर्फ मिलने-जुलने का एक बहाना है, तो इतना परेशान होने की कोई

ज़रूरत नहीं है. लोग रोज़ बार में जाकर भी तो बैठते हैं या क्लब जाते हैं या किसी खेल में दिलचस्पी पाल लेते हैं, महज सोशलाइज़ेशन के लिए.'

रागिनी ने जवाब में कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई थी. वह कैसे कहती कि सात्त्विक और उसके बीच का रिश्ता मर रहा है? बार या क्लब जानेवाले लोग अपनी पत्नी को छूने से इनकार नहीं करते, 'सात्त्विक तो निर्मोही हो गया है,' इतना ही कहा था रागिनी ने फोन पर.

सुकर्मा ने उसकी बात पर गौर नहीं किया. सात्त्विक निरन्तर उसे फोन करता है. महीने में लगभग दो खत भी भेजता है. निर्मोही तो नहीं है रे वह...!

तीस

सात्त्विक के बारे में सोचते-सोचते सुकर्मा कब सो गई, उसे खुद भी नहीं मालूम. सुबह सात्त्विक के फोन से ही वह जागी.

"गुड मॉर्निंग! मैंने आपको जगा दिया न!"

"नहीं, हाँ ! कैसे हैं?"

"मैं ...? अपनी धुन में मस्त हमेशा की तरह. आपको यह बताने के लिए फोन किया है कि मैं भारत आ रहा हूँ."

"जी! भारत...?" सुकर्मा को अपने हैरान होने पर हैरानी हुई. ठीक ही तो कहा है सत्विक ने 'भारत'. बचपन में तो हम भारत को भारतमाता कहते थे, अब 'इण्डिया' कहते-कहते अपने देश का नाम ही भूल गए हैं हम ! उसने सिर को झटका दिया.

"कब...? कब आ रहे हैं आप भारत?"

"मैं नीदरलैण्ड जाऊँगा. वहाँ सम्भवतः 9 से 12 जुलाई तक नॉर्थ सी जैस फेस्टिवल देखने के बाद 14 जुलाई को भारत पहुँच जाऊँगा."

"मानसून होगा तब तो."

"याद नहीं तुम्हें, मुझे बरखा पसन्द है." सात्त्विक ने पहली बार 'तुम' कह दिया.

सुकर्मा सावधान हो गई, "आपके साथ रागिनी-तापस भी आ रहे हैं क्या?"

"अरे नहीं, रागिनी...रागिनी...तो उसने बताया नहीं आपको? वह तो पहले आ रही है, वैलेन्टाइन डे के आस-पास."

"ओह! आप सब साथ ही आते तो..."

"क्यों, मेरे अकेले आने पर परहेज है आपको?"

"नहीं, आप सब साथ आते, तो अच्छा लगता..."

"ये तो अब हो नहीं सकता... मैं आऊँ या नहीं?"

सुकर्मा जानना चाहती है, 'क्यों नहीं हो सकता.' साथ ही बात को लम्बा

खींचना भी नहीं चाहती. उसने धीमी आवाज़ में कहा, "आप आएँ. वत्सला बहुत खुश होगी..."

सात्त्विक पूछना चाहता है, 'और आप...?' न सुनने के जोखिम उठाने के भय से उसने बात पलट दी, "मौसम कैसा है वहाँ?"

"जी, बहुत अच्छा है. लोग धूप का मज़ा लेते रहते हैं."

सात्त्विक पूछना चाहता है, 'और आप क्या करती हैं.' फिर जुबान घुमाकर कहा, "तो ठीक है, मिलते हैं, हम बादलों का मजा लेंगे आकर."

न जाने कैसे सुकर्मा को हँसी आ गई. अपने ही गिल्ट से घिर गई वह. दिनभर मन उडा-उड़ा रहा. कभी यहाँ, कभी ग्लासगो में. पर्स में से रागिनी का खत निकालकर पढ़ा उसने.

'प्रिय सुकर्मा जी,

तापस बहुत नटखट हो रहा है. उसके स्पर्श से मेरा स्त्रीत्व पूर्णता पा गया है. आप बार-बार क्यों पूछ रही हैं कि शक्ल किसके जैसी है? मेरे लिए वह मेरा बच्चा है, सिर्फ मेरा बच्चा. मैं उसकी शक्ल में किसी और को तलाश नहीं करना चाहती हूँ. उसका अस्तित्व ही मेरे जीने के लिए काफी है. अन्य किसी की ज़रूरत नहीं है मुझे. हाँ, आपसे मिलने के लिए उत्सुक हूँ. आप मेरे लिए प्रेरणा हैं और आलम्बन भी.

—रागिनी'

उठकर दीवार पर लटके कैलेण्डर में होली की तारीख देखी. पेट में किसी चीज ने खुदखुदी मचा दी. 'कैसा होगा तापस? सात्त्विक जैसा ही होगा निश्चित रूप से. इसी कारण रागिनी इस एक सवाल का सीधा जवाब नहीं दे रही है. वह अपनी इस बात को झूठा सिद्ध होते हुए देख नहीं पा रही होगी कि तापस सिर्फ उसका बेटा है, सात्त्विक का नहीं.' सुकर्मा को हँसी आ गई.

'पगली है रागिनी. प्रकृति के मूलभूत नियम को लाँघने का दु:साहस कर रही है. आने दो यहाँ, सब झूठ हवा हो जाएगा. आएँ अपनी मरजी से, अलग-अलग; जाएँगे एक-साथ.' वह गुमान से तनिक तनकर बैठ गई.

पंकज ने उसे गौर से देखा. उसका सीधा, एकदम सीधा बैठना पंकज को अच्छा लगता है. कन्धों की कम चौड़ाई उसे आम औरतों से अलग कर देती है और उभरती गोलाई में नारीत्व खिल उठता है. उसके प्रति विकृत भाव जन्म नहीं लेता है.

कई बार पंकज ने सोचा, 'यह भाव कुछ ऐसा ही है जैसा कि दुर्गा की प्रतिमा के सामने जागता है.' कई बार पंकज को हँसी भी आती है अपने-आप पर. यह कैसी अजीब बात है, दुर्गा माँ के सामने सुकर्माजी की याद

आती है और सुकर्माजी के सामने दुर्गाजी की.

अपनी ओर देखते हुए पंकज को सुकर्मा ने घूरकर देखा. तीखी आवाज़ में छोटू को आवाज़ दी, "आज की डाक कहाँ है?"

पंकज ने सकपकाकर अपने पीछे के डेस्क पर रखी डाक को रजिस्टर के बीच फँसाया और लाकर सुकर्मा की मेज के बायें कोने पर रख दिया.

निरपेक्ष भाव से सुकर्मा ने रजिस्टर उठाया और डाक पर सन्दर्भ-संख्या अंकित करने का काम शुरू कर दिया. पंकज चिक उठाकर बाहर आ गया. मुखर्जी साहब ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "जेन्टलमैन, गोइंग फॉर स्मोकिंग?"

अकबकाकर पंकज ने कहा, "या, यस! बट आई डॉन्ट स्मोक."

मुखर्जी साहब को हँसी आ गई, "गोइंग फॉर बर्ड वाचिंग...?"

"नो, सर! आई डोन्ट..."

उसे अपने छात्रकाल के दिन याद आ गए, जब वह सर्वेश और विक्रम के साथ राजपुर रोड की गेड़ियाँ काटते थे और एस्टले हॉल में खड़े होकर बर्ड-वॉचिंग करते थे.

मुखर्जी साहब भीतर जाकर अपनी ऊँची कुर्सी पर बैठ गए. अपनी लम्बाई के अनुरूप उन्होंने ऊँची कुर्सी बनवाई है. वह पंकज की बर्ड-वॉचिंग को निश्चित रूप से नहीं जानते हैं. उनके पास तो अपनी बर्ड-वॉचिंग का प्रमाण है : विभिन्न पक्षियों की मोटी एल्बमें और डिब्बा भरके स्लाइड्स. कोई गलती से भी उनके घर चला जाए, तो पक्षियों की तस्वीरों का ब्यौरा सुनना ही पड़ता है. यह सुखद है, पंकज जैसे लोगों के लिए ज्ञानवर्द्धक भी.

ऑफिस में सुकर्मा के सिवाय सब लोगों ने उनकी स्लाइड्स की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है. मुखर्जी साहब तो बहुत सीनियर हैं. उनके घर जाने का मौका भी था. उनके बेटे ने एम.बी.बी.एस. की डिग्री ली थी. उसके वापस आने की खुशी में पार्टी थी. सुकर्मा ने पंकज के हाथ पैन-सेट भिजवा दिया था. खुद नहीं गई थी.

बसन्त के बिना वह सिर्फ एक बार लोहड़ी की पार्टी में गई थी और वहाँ से आधे में वापस आ गई थी. उसके बाद किसी ने उसके साथ जिद करने की कोशिश भी नहीं की.

भारतीय समाज में विधवा के प्रति परम्परागत रूप से निर्दयी रवैया है. धीरे-धीरे सोच बदली है. चाहे सहानुभूति और दया दिखाने में अपना बड़प्पन सिद्ध करने का स्वार्थ हो, यह आम बात हो रही है कि लोग ज्यादा मदद करने को उत्सुक रहते हैं. सुकर्मा को पहले-पहले अटपटा लगता था. अब

आदत हो गई है.

उसे याद है : जब पहली बार मुखर्जी साहब ने करवा चौथ के अवसर पर केवल महिलाओं के लिए छुट्टी का नोटिस निकालते हुए खास ध्यान रखा था कि सुकर्मा के पास वह नोटिस न पहुँचे. उन्होने चलते-चलते उससे कह दिया था, आप चाहें तो कल न आएँ. उस दिन से पहली बार एहसास हुआ था कि वह बाकी महिलाओं से अलग है. उसे इस बात से राहत मिली कि अपने लोगों ने उसे वैधव्य का तमगा कभी नहीं दिखाया.

कुन्ती दी ने पहले की तरह रंगीन कपड़े पहनने की बात कही थी. उसके बाद जीवन ने धूप-छाँव के रंग में कोई फर्क नहीं दिखाया था, यह बात तो नहीं थी. बार-बार सुकर्मा को मन बाँधना होता था, बिखरे धागों को समेटना होता था, कभी बिनसुलझी गाँठ को खोलने के लिए जद्दोजहद करनी होती थी.

बाहर-भीतर की सुलगती आँच से अपने को बचाकर रखना कितना कठिन है! आँच ने कभी छुआ न हो, यह भी दावा नहीं किया जा सकता है.

गत सप्ताह की तो बात है ; वन्दना ने सुकर्मा से पूछा, "हम कल कैन्टीन जा रहे हैं, आपको कुछ चाहिए तो..."

सुकर्मा ने अपनी बात कहने के लिए सिर उठाया. वह कुछ कहे, इससे पहले ही वन्दना ने जोड़ा, "मेरे पति ने कहा है, हमें आपकी ज़रूरत का ख्याल रखना चाहिए. आपकी मदद करना हमारा फर्ज़ है."

कोई किरच भीतर तक चुभ गई. उसने कब मेजर साहब से दया या मदद की भीख माँगी है? मुँह में भर आए कसैलेपन को खंगालकर सुकर्मा ने कहा, "शुक्रिया! कुछ ज़रूरत नहीं है मेरी." वन्दना को तीखा उत्तर अच्छा नहीं लगा.

चिक उठाकर बाहर निकलते ही उसने शिल्पा से कहा, "हम तो मदद करना चाहते हैं, इसमें खफा होने की क्या बात है?"

शिल्पा ने अल्हड़पन से कहा, "हमारे लिए बेबी-लोशन और डॉक्टर ब्राण्डी ज़रूर ले आना."

वन्दना ने जानबूझकर स्वर ऊँचा करते हुए कहा, "हाँ, ज़रूर ले आऊँगी. मुझे भूलने की आदत नहीं है."

सुकर्मा को पहली बार महसूस हुआ, औरतें भी किसी औरत को मज़बूती से सिर उठाकर जीते हुए नहीं देख सकती हैं. उन्हें वही स्त्री अच्छी लगती है, जो उनके कन्धे पर सिर रखकर रोए और मदद माँगे.

'सहायता के नाम पर दूसरे को छोटा दिखाने का भाव कितना दु:ख दे सकता है! सुकर्मा ने सोचा. 'मैंने तो कभी वन्दना के पति को देखा भी नहीं है. अपनी पत्नी पर रोब दागे, ठीक है. अपना प्रभाव मुझ तक क्यों फैलाना

चाहते हैं ?' उसे इस रुख में सामंतवादी ताकतों की बू आने लगी और उसका जी मिचलाने लगा.

लाख कोशिश करने पर भी सुकर्मा भूल नहीं पा रही है. उसने सुदीप को यह बात बताकर अपना दु:ख दोगुना कर लिया.

सुदीप को मेजर साहब की बात में कुछ और बू आने लगी. वह आदमी के पंजों से वाकिफ है और उसके लिए अपनाए जानेवाले हथकण्डों को भी पहचानता है. सुकर्मा की सुरक्षा को लेकर वह ज़रूरत से ज्यादा सावधान भी है. उसने सावधानियों की लम्बी फेहरिस्त उसे थमा दी.

सुकर्मा को पहली बार महसूस हुआ, तंगदिली का प्रमाण माथे पर नहीं लिखा होता है. मौका आने पर बड़े-से-बड़ा उदारचेता भी रंग बदल सकता है. बहस करने का कोई फायदा नहीं था. वह 'हाँ' में सिर हिलाती रही, इस बात पर कि अपनी महिला-सहकर्मियों से भी अधिक बात करने की ज़रूरत नहीं है. वह मौन ही रही.

जब सुदीप ने कहा, 'तुम्हें सौरभ के बड़ा होने तक अपनी हिफाजत खुद करनी है," तो सुकर्मा का चेहरा तमतमा गया.

वह उठकर खड़ी हो गई. एक शब्द भी बोले बिना वह कितना कुछ कह गई!

उसे महसूस हुआ कि सात्त्विक ठीक ही तो कहता है, 'भारत में औरत का अकेले रहना अन्धी सुरंग से गुजरने जैसा है. चारों ओर चट्टानें हैं या बीहड़ के काँटे.'

आग से तपकर लोहा पिघलता है. मजबूत होने के लिए उसमें कुछ और तत्त्व भी मिल जाएँ तो लोहे का भार हलका होता है और मज़बूती बढ़ जाती है.

आज की तारीख ने सुकर्मा को किसी नवनिर्मित धातु का नया रंग दे दिया. कत्थई नाइटी में उसके बदन का सुनहरापन आईने में चमका. सुकर्मा को शादी के तुरन्त बाद आईने में उभरते अक्स की याद ताजा हो गई.

सर्दी की रात में, नीले आकाश पर चमकते तारों को देखते हुए उसने मुट्ठियाँ कस लीं. नाभि के चारों ओर उठते ज्वार-भाटे को नियन्त्रित करने के लिए दोनों हाथ कमर के पीछे टिका लिए. तेज गति से टहलते हुए उसका माथा कपड़े सुखाने की रस्सी से टकरा गया. बिना आवाज किये रस्सी टूट गई और सुकर्मा के पैरों में उलझ गई. सुकर्मा ने पंजों के बल बैठकर रस्सी की उलझन से निकलने की कोशिश की, तो उसके हाथ में छत पर गिरे कील से घाव हो गया. बहते खून को रोकने के लिए उसने उंगली दबाई.

बसन्त के अधरों का स्पर्श ताजी चोट पर हरा हो गया. घुटनों में सिर दबाकर उसने सिसकियाँ रोकने का असफल प्रयास किया.

इकतीस

गदराए हाथ पर मालिश करते हुए जसवन्ती के मुँह से निकल गया, "आपका आदमी बहुत किस्मत वाला था, जी!"

सुकर्मा ने उलटे लेटकर ही सिर तनिक उठाकर घुमाया. जसवन्ती डर गई, "आप बुरा नहीं मानना. मैंने जो मन में आया, सच कह दिया."

"क्या मतलब ?" सुकर्मा ने तनिक और घूमकर उसकी ऑख में देखने की कोशिश की.

"ऐसी नाजुक कद-काठी की और मजबूत मन की औरतें किस्मत से ही पैदा होती हैं." जसवन्ती ने मजबूती से कहा.

"वह जन्म से मजबूत मन की नहीं होती हैं, धीरे-धीरे आत्मानुशासन से मजबूत बनती हैं." अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रिया से सुकर्मा स्वयं ही सकुचा गई.

अब चौंकने की बारी जसवन्ती की थी, "क्या मतलब ?"

"अपने जिस्म को ठीक आकार में रखने के लिए और मन को साधने के लिए मेहनत करनी पड़ती है. तुम नहीं समझोगी." कपड़े ठीक करते हुए उठ गई वह.

जसवन्ती ने कहा, "एक हाथ पर तो मालिश हो गई, दूसरा रह गया."

हुक बन्द करते हुए सुकर्मा ने कहा, "कल हो जाएगा..." मालिश की चादर हटाते हुए आदेश दिया, "इसे धो लेना आज."

दो-दो सीढ़ी फलाँगते हुए सुकर्मा छत पर आ गई. कल रात को उसने एक ही टक्कर में रस्सी तोड़ दी थी. जसवन्ती कहती तो ठीक है, है तो वह मजबूत!

उसे याद आया, एक बार बसन्त ने भी ऐसा ही कुछ कहा था. उसने दरी पर बैठकर अपनी टाँगें सामने सीधी फैलाकर घुटनों पर सिर रख दिया था. अचानक बसन्त ने अखबार से अपनी आँख उठाते हुए कहा था, 'वाह! क्या बात है! मैं तुम्हारे ऊपर बैठ जाऊँ तो...?'

हँसते हुए सुकर्मा ने कहा था, 'तो क्या! टूट जाँऊगी?'

ज़ोर से हँसते हुए वह एकदम सुकर्मा के पास आकर घुटनों के बल बैठ गया, 'टूटोगी तो नहीं तुम.'

सुकर्मा ने सिर घुमाकर सवालिया निगाह से देखा था. बसन्त ने उसकी कमर के आर-पार पैर टिकाते हुए कहा था, 'बहुत मजबूत हो, भाई.' और फिर उसकी फैली हुई बाँहों के नीचे से पकड़कर उठाने की कोशिश की थी. सुकर्मा ने अपने टखनों को कसकर पकडा था, तो वह टॉगों समेत उठने की मुद्रा में आ जाती कि गुदगुदी के कारण खिलखिलाते हुए उससे पैर धम्म से छूट गए.

उस दिन भी सुकर्मा ने यही कहा था, 'खेतों में मीलों दौडकर मजबूती कमाई है.' तनिक दम्भ था सुकर्मा की आवाज में.

बसन्त ने उसको ज़मीन पर लाते हुए कहा था, 'नहीं, पेड़ों से चढ़-कूदकर मांसपेशियों को आकार में साध लिया है.'

सुकर्मा ने मुट्ठियों से बसन्त के चौड़े सीने पर ढोल-सा बजा दिया था. लय-ताल में नृत्य जैसी मुद्राओं में कुश्ती-सी करते हुए हाँफ गए थे वे दोनों.

सुकर्मा ने लाल सूरज की ओर देखा, 'मेरा बसन्त मुझे लौटा दो.'

उसने रस्सी को दुबारा बाँधने का उपक्रम किया, 'टिक' की आवाज़ से उसका ब्लाउज का हुक टूट गया. अपनी ऑख नीची करके खुद को देखा उसने. हार मानना सीखा नहीं है. नीचे गिरी हुई रस्सी को झुककर उठाया उसने और कसकर बॉधा.

जसवन्ती गीली चादर लेकर ऊपर आ गई. उसने सुकर्मा की कसावट को अपनी अनुभवी आँखों से तौला. शॉल से अपने को ढकने का नाकाम प्रयास करते हुए सुकर्मा नीचे आकर गुसलखाने मे चली गई.

सूखी तोरी के सुनहरी झाँवे से रगड़-रगडकर अपना बदन लाल कर लिया सुकर्मा ने. सौरभ का रोना सुनकर किसी तरह बाथरोब पहनकर कमर को कसते हुए बाहर निकली. कुन्ती दी और सुदीप को सामने देखकर सकुचा गई.

तीनों जन हर इतवार को इकट्ठे होते ही हैं : सुकर्मा की गलती है, उसे समय का अन्दाज़ ही नहीं रहा. कुन्ती ने उसके पास आकर कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "बहुत सुन्दर लग रही हो." अपनी ऑख के काज़ल से कान पर टीका लगा दिया. सुकर्मा लाल होते चेहरे को छुपाते हुए कमरे में चली गई.

हलके नीले रंग के सूट पर सफेद शॉल में वह आसमानी परी-सी लग रही है. कुन्ती दी मूली के पराँठे बनाकर लाई हैं. सुकर्मा ने कल ही सफेद

मक्खन तैयार किया था. मक्खन के गोले को हाथ में उठाकर कुन्ती दी ने सजल आँख से कहा, "आज तुमने गाँव की याद दिला दी."

सुकर्मा ने सही मौका देखकर कहा, "मैं गाय पाल लूँ क्या?"

उसकी आवाज़ के उछाह के सामने सुदीप भी 'न' नहीं कह सका.

कुन्ती दी को सुकर्मा से जलन हुई, "इतना सब कैसे कर सकोगी तुम ?"

"मैं...? मैं तो कुछ भी नहीं कर रही हूँ. सारा समय खाली हूँ." सुकर्मा कैसे समझाती अपनी प्यारी ननद को कि तुम्हारे भाई के जाने के बाद उसका जीवन रीत गया है. सारा आहार-व्यवहार आदमी के साथ होता है. औरत होकर भी वह खुद क्यों नहीं समझ सकती ?

सुदीप ने फोन की घंटी बजते ही सुकर्मा की ओर देखा. सवाल पूछ रहा था या सुकर्मा से फोन लेने की अनुमति माँग रहा था, वही जाने. सुकर्मा निरपेक्ष भाव से बैठी रही. कुन्ती दी ने उठकर फोन सुना.

रागिनी की आवाज़ सुनकर वह एक ही सवाल पूछना चाहती है, 'तापस का पिता कौन है ?' रागिनी ने मौका ही नहीं दिया. औपचारिक राजी-खुशी के तुरन्त बाद उसने कुन्ती दी से कहा, "कृपया सुकर्मा से बात करा दो."

सुकर्मा की आवाज सुनते ही रागिनी ने जल्दी-जल्दी अपने पहुँचने का कार्यक्रम बताया, "पाँच फरवरी को पहुँच रही हूँ."

"जी !" कहते ही सुकर्मा ने फोन कटने की आवाज़ सुनी. सुदीप की आँख उसके खुले बालों का मौन पीछा करती रही. सुकर्मा ने कंघी उठाकर बाल सुलझाए और फिर जूड़े में बाँध लिए.

कुन्ती दी ने टोका, "गीले बाल मत बाँधो, सिर-दर्द हो जाएगा."

सुकर्मा ने बाल खोलकर रसोई की खिड़की से झाँका. जसवन्ती बर्तन साफ कर रही है.

सुकर्मा ने हाथ लम्बा करके मटर की थाली उठाई. मेज पर थाली रखकर वह कटोरा लेने के लिए रसोई में चली गई. कुन्ती ने अखबार फैलाकर मटर छीलना शुरू कर दिया. सुदीप ने मैगज़ीन उठाई और बरामदे में जाकर बैठ गया.

सुकर्मा ने पूछा, "थोड़ी कॉफी और लेंगे?"

"हाँ, ज़रा स्ट्रांग बनवा दीजिए." सुदीप ने कहा.

"मैं खुद बनाती हूँ." सुकर्मा ने जाकर दूध गैस पर रख दिया.

कॉफी का रंग देखकर कुन्ती दी भी खुश हो गई, "अपने हाथ की बात और ही होती है."

सुकर्मा सिर झुकाकर कॉफी पीती रही. उसे महसूस हुआ, कहीं कोई

उसे घूर रहा है. उसने चारों तरफ नज़र घुमाकर देखा. रसोई की सर्विंग विन्डो से जसवन्ती की आँख दिखाई दी. वह जानती है, कुन्ती को जसवन्ती का यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता है.

सुकर्मा के लिए जसवन्ती मजबूरी है. सौरभ को वही तो पाल रही है. अकस्मात् उसकी समझ में आ गया, कुन्ती दी को जसवन्ती पसन्द क्यों नहीं है. इस समय वह जसवन्ती को खो नहीं सकती है.

उसने यथासम्भव मीठे स्वर से कहा, "जसवन्ती जी, आपके लिए मैंने कॉफी रखी है, आपने ले ली न?"

"जी..." जोर से कप रखने की आवाज आई.

बाहर आकर ट्रे में जूठे कप रखते हुए उसने सुकर्मा से पूछा, "मटर-पनीर आप बनाएँगी क्या?"

तनातनी को चीरते हुए सुदीप ने कहा, "आज मटर-पनीर मैं बनाऊँगा." सुकर्मा और कुन्ती दी ने मुस्कराकर एक-दूसरे को देखा.

सुदीप ने कहा, "मटर-पुलाव कुन्ती बनाएगी और अण्डे की भुरजी सुकर्मा."

जसवन्ती ने पूछा, "और मैं...?"

"आप तब तक सौरभ की मालिश करें, उसे नहलाएँ. तब तक मेरा काम हो जाएगा. मैं सौरभ के साथ खेलूँगा और आप सलाद काटना."

कुन्ती ने चुटकी ली, "क्या बात है, इसी को तो कहते हैं अच्छा मैनेजमेन्ट!"

जसवन्ती ने कप रसोई में धोकर रखे और सौरभ की मालिश की तैयारी में जुट गई. सुकर्मा ने आवाज़ देकर कहा, "पहले आप प्याज, अदरक और लहसुन को अलग-अलग पीसकर रख दें."

सुदीप ने खड़े होकर कहा, "वाह, क्या बात है! शुक्रिया." फिर कुन्ती से इजाज़त माँगी, "मैं तब तक छत पर जाकर ब्यूटी स्लीप ले लूँ." हलकी-सी आँख दबा दी उसने यूँ ही. सुकर्मा ने दरवाज़े से बाहर दूर नीले आकाश में उड़ती हुई एक पतंग को देखा।

बत्तीस

अजनबी शहर में धीरे-धीरे पहचान बनाने की कोशिश कर रही है सुकर्मा. वह चाहती है, ज्यादा से ज्यादा काम वह खुद करे. हर चीज में वक्त लगता है. सुकर्मा को अपने अधिकांश कामों के लिए सुदीप पर निर्भर रहना पड़ता है.

शाम को घर पहुँचते ही सुकर्मा ने देखा, सुदीप राशन की लिस्ट मिला रहा है. जसवन्ती धोबी से कपड़े गिनवा रही है. सौरभ बरामदे में सो रहा है.

"अरे, धूप जा चुकी है, अभी तक बाबा बाहर है !" सौरभ को उठाते हुए उसने कहा.

"सो रहा है." जसवन्ती ने कहा.

सुदीप ने मुस्कराकर 'गुड ईवनिंग' कहा.

पर्स किनारे पर रखकर वह सौरभ को गोद में लेकर ही बैठ गई. सुदीप ने उसे टोकना बन्द कर दिया है. उसके दिल में बार-बार आ रहा है कि सुदीप कहे, 'सौरभ को बिस्तर पर लिटा दें.'

सुदीप ने अपना काम जारी रखा. जसवन्ती चाय लेकर आई, तो उसने सौरभ को बेडरूम में ले जाकर सुला दिया. अनावश्यक रूप से सुकर्मा ने कहा, "रजाई ओढ़ा दें ठीक से."

जसवन्ती ने उसकी बात पर कोई गौर नहीं किया. अपनी रफ्तार और अपने तरीके से अपना काम करती रही. सुदीप ने सैण्डविच नहीं खाया है, यह देखकर सुकर्मा ने पूछा, "आपके लिए कुछ और बनवा दूँ?"

"नहीं, आज ऑफिस में बहुत खा लिया."

"ऐसा क्या..."

"हाँ, मिस्टर दूबे की शादी की पच्चीसवीं सालगिरह की पार्टी थी आज. मध्य आयु में पहुँचने पर खाने-पीने के सिवाय और क्या बचता है जीवन में !"

सुकर्मा की प्रश्नात्मक दृष्टि से अकबका गया वह. उसने अपनी सफाई देने की कोशिश की, "मेरा मतलब है, बीबी-बच्चे तो होते ही हैं."

सुकर्मा ने सधी हुई आवाज में कहा, "आप बदल रहे हैं, सुदीप."

सुदीप ने मुद्दत बाद सुकर्मा के मुँह से अपना नाम सुना. उसकी दृढ़ता के सामने कोई झूठ ठहर नहीं सकता है, वह जानता है. उसने मौन स्वीकृति दे दी.

"आदमी को आत्म-विश्लेषण के लिए थोड़ा समय सिर्फ अपने लिए देना ही चाहिए." सुकर्मा ने उपदेश दिया. "और हाँ, आत्म-शोधन भी करना चाहिए." सुकर्मा ने जोड़ा.

"मैं इस ओर ध्यान दूँगा, मोहतरमा."

"यह कुछ ज्यादा ही नाटकीय अन्दाज हो गया, सुदीप! मैं चाहती हूँ, आप सुदीप बने रहें. जैसे हैं, वैसे अच्छे हैं."

सुदीप कहना चाहता है, 'आप भी तो पहले जैसी सुकर्मा नहीं हैं.' अपने को रोककर उसने कहा, "कोई भी व्यक्ति सदा एक-सा नहीं रह सकता है. मनुष्य का जन्म विकास के लिए होता है और विकास के लिए परिवर्तन ज़रूरी है."

सुकर्मा सोचने की मुद्रा में चुप बैठी रही. फिर अचानक तीखे स्वर में बोली, "कुछ भी हो, जीवन से रस नहीं मरना चाहिए."

बात को विराम देते हुए सुदीप ने कहा, "आप ठीक कह रही हैं...अब मैं चलूँ."

"थोडी कॉफी और पी लेते." सुकर्मा ने आग्रह किया.

"जो हुक्म!" सुदीप दूसरी कुर्सी पर दुबारा बैठ गया. सुकर्मा कॉफी बनाने के लिए रसोई में आ गई.

जसवन्ती ने आकर धीरे से कहा, "आपके लिए खत है."

सुकर्मा का चेहरा उत्सुकता से तमतमा गया. लिफाफा उलट-पलटकर देखा. "रागिनी का खत है," कहकर किनारे रख दिया.

कहीं भीतर सुकर्मा के मन में अकेले बैठकर रागिनी का खत पढ़ने की जल्दी है. उसने गर्म कॉफी से अपनी जीभ जला ली है. सुदीप ने आराम से कॉफी पी और विदा ली.

दरवाज़ा बन्द करके सुकर्मा सीधे रसोई में गई और रागिनी का खत खोलते हुए बेडरूम में आ गई.

'प्रिय सुकर्मा,

तुमसे मिलने को मन उत्सुक है. ढेर सारी बातें कहनी हैं तुमसे. सबसे पहली और ज़रूरी बात अभी बता रही हूँ. तापस के पिता सात्त्विक नहीं है. हम दोनों के बीच पिछले पाँच वर्ष से कोई शारीरिक सम्बन्ध नहीं है. कारण

मैं खुद नहीं जानती हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ ?

इतना जानती हूँ कि वह इंग्लैण्ड आकर बदलने लगा है. वेशभूषा बदलना या नाम का छोटा रूप सिर्फ 'सत्' हो जाना एक बात है, विचार से बदल जाने से आदमी पूरा का पूरा अजनबी हो जाता है.

हमारे बीच की दूरी कब दरार बन गई, नहीं मालूम. इसी बीच मैंने नाटिंघम विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया. वहीं सिद्धान्त मिला मुझे. तापस का पिता, सिद्धान्त.

सुकर्मा साँस रोककर बैठ गई.

'वह डिज़ाइनर है. स्कॉटलैण्ड में रहता है. इससे ज्यादा कुछ नहीं बता सकती हूँ।

तुम सोच रही हो न ! मैंने पाप किया है.'

सुकर्मा ने सोचा, 'पाप-पुण्य की बात तो ईश्वर तय करेगा, मैं कौन हूँ, निर्णय सुनाने वाली...?' सोचकर आगे पढ़ना शुरु किया.

मेरा विश्वास है, मेरी पूरी बात सुने बिना तुम कोई फैसला नहीं करोगी.

कुछ अजीब-सा घटा मेरे साथ. सिद्धान्त मुझसे उम्र में छोटा है, इस तथ्य से मैं इतनी अधिक आश्वस्त हो गई कि उसके साथ खुलकर बात करने लगी. उस अनजान शहर में वह मेरे लिए सहपाठी से ज्यादा सहयोगी बन गया.

एक दिन, साँझ में हम संग-संग शॉपिंग करने के बाद रेस्तरॉ में बैठे सपर ले रहे थे. उसने मेरी ओर देखे बिना पूछा—आप कभी खजुराहो गई हैं ?

मैंने कहा—हॉ। ·

सिद्धान्त ने सरल भाव से कहा—आपकी देहयष्टि वहॉ पर उकेरी गई प्रतिमा जैसी है : गोल चेहरा, छोटी नाक, दबी-सी गर्दन, सुडौल वक्ष, नाभि के पास हल्का उभार...।

मैंने गर्दन झटककर बात को हवा में उडा दिया. लौटते समय वह मुझे छोड़ने से पहले एक मिनट के लिए अपने मित्र से मिलने के लिए गाड़ी से उतरा. उसके चेहरे पर तनिक घबराहट के चिह्न दिखाई दिए. मेरे बहुत पूछने पर उसने बताया, यह उसकी बहन का बॉय-फ्रेण्ड है. वह उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर रहा है. यह क्षण बहुत दु:खदायी होता है, इसीलिए यहाँ रहते हुए भी मेरी कोई महिला मित्र नहीं है.

मैंने यूँ ही छेड़ने के लिए कहा—बन जाएगी. अभी तुम छोटे हो.

आहत होकर उसने कहा—मैं छोटा नहीं हूँ. चौबीस बरस का हूँ. मुझे उस प्रतिमा जैसी भारतीय स्त्री चाहिए, जैसी खजुराहो में है.

मेरे शरीर में अजीब-सी हरकत हुई. मैंने अपने कमरे में हमेशा की तरह

उसे आने दिया. जितना मैं सहज होना चाहती थी, उतनी ही गड़बड़ होती चली गई. मैं दरवाजे से टकरा गई और दीवार के सहारे खड़ी हो गई. चोट को सहलाने के लिए उसने मेरा सिर दबाया. क्षण भर में ही मेरे अधरों पर उसका अधिकार हो चुका था. मुझे मालूम ही नहीं हुआ, कब मैं उसकी कमर पर टाँग कसकर उसके इतनी करीब आ गई. उसका एक हाथ मेरी टेल बोन पर मुझे सहारा दिए था. इतना ही याद है मुझे. बाकी सब जादुई क्षण की तरह बीत गया. इतना समझती हूँ, तापस का आना मेरी नियति है.

मैं सात्त्विक को खोना नहीं चाहती हूँ. इसलिए सिद्धान्त से दुबारा न मिलने का फैसला मेरा है.

तुम्हारे सामने बैठकर सबकुछ कहने का साहस मुझमें नहीं है. तुमसे कुछ छुपाना गलत होगा, यह भी मानती हूँ.

इसलिए, सब सच लिख दिया है. सात्त्विक के बाद सिर्फ तुमने इस सत्य को जाना है.

जो सजा दो, स्वीकार है.

अकेली आ रही हूँ, निश्चिन्त रहना.

तुम्हारी
–रागिनी'

सुकर्भा आँख बन्द कर निःस्पंद बैठी रह गई.

टन-टना-टन घंटी ने उसकी तन्द्रा तोड़ी...।

तैंतीस

जागती आँखों में रात गुज़र गई. सुकर्मा के दिल-दिमाग में तीव्र संघर्ष चल रहा है.

सुबह होते ही उसका मन चाह रहा है कि वह सात्त्विक से बात करे. सात्त्विक को उसने आज तक खुद फोन नहीं किया है. 'फोन नम्बर है तो कहीं.' यह सोचकर उसने डायरी के पन्ने पलटे. फिर सोचा, 'कुन्ती दी से पूछ लेती हूँ...'

कुन्ती दी ने सहज भाव से नम्बर दे दिया. सुकर्मा ने प्रतिक्रिया की, "यह तो रागिनी का नम्बर है।"

"हाँ, मेरा और सुदीप का भी तो एक ही नम्बर है न!" कुन्ती दी जोर से हँस पड़ी.

सुकर्मा अपनी मूर्खता से सकुचा गई. कल का खत पढ़कर उसने यह कल्पना कर ली थी कि दोनो का फोन नम्बर अलग-अलग होगा. इसी को तो पूर्वग्रह कहते हैं.

सुकर्मा अपने चेहरे को घुटनों पर टिकाकर सोचने लगी, 'बसन्त होता तो तापस के आने पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती? निश्चित रूप से, वह सात्त्विक से बात करता.' अचानक उसे खयाल आया, सात्त्विक से बात करना उसका भी कर्तव्य है. जो कुछ भी हुआ, उससे सात्त्विक आहत हुआ होगा. सुकर्मा तथाकथित नारीवादी औरतों की तरह यह नहीं मानती है कि आदमी के दिल में कोमल भावनाओं का कोना ही नहीं होता है.

उसने बसन्त के साथ कोमल पलों को भोगा है. वह आज भी साहित्य पढ़ते हुए अश्रुपूरित नेत्रों से बसन्त को याद करती है. दुनिया-भर के चित्रकार, मूर्तिकार या फोटोग्राफर को ही तो स्त्री को सुन्दर रूप में सजाकर पेश करने का श्रेय है. पुरुष का प्रेम ही साधारण स्त्री को अप्सरा की श्रेणी में स्थापित करता है. वह अपने सन्दर्भ में तो सदैव यही शत-प्रतिशत सही मानती है कि पुरुष-रूप में बसन्त देवता से कम नहीं था. साधारण-सी ग्रामीण बाला को

क्या से क्या बना दिया !

बसन्त को जानने-समझने के कारण, सुकर्मा दावा कर सकती है कि वह सात्त्विक को समझती है. कुछ भी हो, चढ़ते यौवन में सात्त्विक ने रागिनी के व्यवहार से क्षुब्ध होकर ही तो अपना वैभव-भरा घर छोड़ा था. रागिनी के दोबारा मिलने पर शादी का निर्णय दिमागी तर्कशक्ति से नहीं, अपितु दिल की कोमलता से किया गया था. "कैसा होगा सात्त्विक ?" अकस्मात् उसके मुँह से निकला.

जसवन्ती ने रसोईघर से पूछा, "कुछ कहा क्या आपने...?"

"नहीं," कहकर सुकर्मा गुसलखाने में चली गई. गीले बाल बाहर झटकने के लिए खोले ही थे कि फोन की घंटी ने सन्नाटा तोड़ा.

सुकर्मा ने लगभग भागकर फोन उठाया, "हैलो रागिनी !"

"रागिनी नहीं, मैं सात्त्विक बोल रहा हूँ." उधर से मेघ-सा गम्भीर स्वर है.

"ओह ! जी...आप कैसे हैं ?"

"सुकर्मा ! तुम ठीक तो हो न ? ऐसे लटपटाते हुए मैंने तुम्हें कभी नहीं सुना."

"जी, मैं तो ठीक हूँ. मुझे आपकी फिक्र है." सुकर्मा ने कहा.

"मेरी फिक्र...? क्यों भई...? भला-चंगा हूँ. वही मोटी चमड़ी, सिर पर लम्बे बाल..."

"मैं रागिनी से बात कर सकती हूँ क्या...?"

"नहीं, बिलकुल नहीं, हम इतने बुरे भी नहीं हैं कि आप हमसे बात न करें." पहली बार सात्त्विक के स्वर में उदासी की झलक है.

"मैं रागिनी का निश्चित कार्यक्रम जानना चाहती हूँ. बताएँ, कब पहुँच रही है वह?"

"सिद्धान्त जाने..." सात्त्विक के मुँह से छूटा तीर सुकर्मा की छाती में लगा.

"सिद्धान्त साथ आ रहे हैं क्या...?" सुकर्मा ने सहज होने की कोशिश करते हुए कहा.

"ओह, तो आप जानती हैं सब... !" सात्त्विक के सवाल के सामने सुकर्मा मौन रही.

सात्त्विक ने अपनी बात को विस्तार देते हुए कहा, "रागिनी का कहना है, वह उससे मिलना नहीं चाहती है. मेरा यह मानना है, सिद्धान्त किसी भी कीमत पर उसे और तापस को मिलेगा...उसके लिए रागिनी केवल देह नहीं

है. यहाँ का जन्मा-पला होने पर भी उस लड़के में गम्भीरता और धैर्य है. वह प्यार का अर्थ जानता है."

सुकर्मा को कुछ उत्तर सूझ नहीं रहा है. प्रश्न पूछा उसने, "आप सिद्धान्त से मिले हैं क्या...?"

"हाँ. मिला हूँ. मैंने उसे खोजा है. वह पेज़ली में डिजाइनर है. मैंने उससे पेज़ली बनानी सीखी है." अचानक हँसकर कहा, "तुम्हारे लिए एक सिल्क-स्कार्फ बनाया है."

"जी... मेरे लिए क्यों...?" सुकर्मा के स्वर में स्वाभाविक मिठास आ गई.

"हाँ, यह तो जटिल प्रश्न है... तुम्हारे लिए क्यों...? दरअसल यह पेजली और कुछ नहीं, भारतीय अम्बी का स्कॉटिश स्वरूप है, जो डिज़ाइन मूल रूप से भारत से लाया गया है. उसे दोबारा भारत लाना ही होगा. तभी तो प्रकृति की आवृत्ति पूरी होगी..."

"आप तो दार्शनिक हो गए हैं, सात्त्विक!"

सात्त्विक ने मानो मौन रहकर अपनी स्वीकृति दी.

"मैंने तुमसे खास बात कहने के लिए फोन किया है..."

"जी... बताएँ." सुकर्मा कैसे कहे कि वह भी सात्त्विक से बात करने के लिए विकल है?

"आपके पास रागिनी आ रही है. आप उसको समझाएँ, उसने कोई पाप नहीं किया है. सिद्धान्त ने बलात्कार नहीं किया है. उन दोनों के बीच प्रेम का बीज जन्म ले चुका था. दोनों की सहमति से घटित निकटता में कहीं कुछ पाप नहीं है. उसे सिद्धान्त को पूरे मन से अपनाना चाहिए, जैसे कि उसने तापस को अपनाया है."

"सात्त्विक! आप यह सब कैसे कह रहे हैं? मैंने सुना था कि पुरुष रिजेक्शन नहीं ले सकता है..."

"आपने क्या-क्या सुना है. मैं नहीं जानना चाहता हूँ." सात्त्विक की आवाज़ में घायल शेर की दहाड़ है. पानी का एक घूँट भरकर उसने कहा, "सॉरी! मैं तुमसे मदद माँग रहा हूँ, सुकर्मा! आई वान्ट माई फ्रीडम. रागिनी पिछले माह से अलग रह रही है. फिर भी, न जाने क्यों वह मुझे तलाक देने को तैयार नहीं है."

"आप उसे माफ नहीं कर सकते क्या...?" सुकर्मा ने पिटा-सा वाक्य कहा.

"सुकर्मा! तुम समझ नहीं रही हो, मेरे प्यार में कहीं कुछ कमी थी, इसीलिए रागिनी का मन सिद्धान्त से जा मिला." सात्त्विक ने संतुलित स्वर

से कहा.

"आपके जीवन में कोई और..." सुकर्मा ने सीधा सवाल पूछना ही बेहतर समझा.

"सुकर्मा! मैं राधा-कृष्ण के प्यार को समझने की कोशिश कर रहा हूँ... शायद इसी क्रम में अपनी राधा खोज रहा हूँ..."

"ईश्वर करे, आपको आपकी राधा मिले!"

"आपकी दुआ रही, तो मिलेगी जरूर... मैं अगले महीने आपके पास आ रहा हूँ." खुशी से चहकती आवाज़ में सात्त्विक ने कहा और फोन रख दिया.

सुकर्मा के हाथ-पैर पहाड़ी शीतलता से शिथिल हैं या सात्त्विक की बातों से, वह खुद भी नहीं जानती है. दूर-दूर तक कहीं कोई ऐसा व्यक्ति नज़र नहीं आ रहा है जिससे वह बात कर सके. 'बसन्त! तुम कहाँ हो...' उसके मन से हूक उठी.

'एकला चलो रे!' कहना आसान है, इन टेढी-तिरछी कन्दराओं से अपने को बचाकर अकेले उस पार पहुँचना कठिन है...।

भाग : तीन

परिणति

चौंतीस

'गुज़रे दिनों की याद से क्या हासिल...!' कई बार सुकर्मा ने सोचा. फिर भी, मनुष्य के दिमाग में कोई ऐसा ऑन-ऑफ स्विच तो नहीं है न!

लाख कोशिशों के बाद भी कभी पुराने अक्स नहीं उभरते हैं और कभी अनचाहे ही यादों की फिल्म-सी चलती रहती है मन की आँखों के सामने.

सुकर्मा खुली आँखों से अतीत में जब-तब झाँकती रहती है और बार-बार कठोरता की कोई चिक-सी गिराकर दूसरों को अपने मन की गुफा में पहुँचने से रोकती है.

रागिनी के आने पर यह पर्दा धराशायी हो गया. सुकर्मा का अन्तस् रागिनी की उपस्थिति से शीशे-सा चमकने लगा. रागिनी को उसने वहाँ प्रवेश का अधिकार कैसे दे दिया, वह स्वयं नहीं जानती.

तापस के आने से सौरभ बड़ा भाई बन गया है. अब वत्सला के सहपाठी जानते हैं, उसके दो भाई हैं—सौरभ और तापस.

दिन का होना और रात का बीतना मालूम ही नहीं हो रहा है. रागिनी और सुकर्मा के बीच लाल सूरज की तरह एक नाम हर क्षण रोशनी दे रहा है, वह है बसन्त. इस नाम के आगे अन्य कोई नाम बुझे दीपक-सा खुद ही मिट जाता है.

सुदीप और कुन्ती दी भी उन दोनों की 'हॉ-हूँ' से ऊब गए हैं. उनके सामने दोनों की नकली-सी औपचारिक बातों से साफ जाहिर हो रहा है कि दोनों स्त्रियाँ ज्यादा चालाक बन रही हैं. सुदीप से भी पहले कुन्ती ने टिप्पणी की, "सुकर्मा हमसे कुछ छुपा रही है."

सुदीप ने तीखा आक्षेप किया, "बड़ी हो रही है. वह दो बच्चों की माँ है. हमें सब कुछ क्यों बताएगी?"

कुन्ती दी ने इसके बाद कभी सवाल नहीं किया. सुदीप ने नोक-झोंक होने से पहले किनारा कर लिया है. वह रोज साँझ आकर हाल-चाल पूछता, सौरभ-तापस को बारी-बारी गोद में उठाता और चाय के लम्बे घूँट भरकर

चला जाता.

देर रात तक रागिनी और सुकर्मा के बीच फुसफुसाहट चलती रही. दोनों जानतीं हैं कि सिद्धान्त का नाम देर-सवेर आना ही है.

रागिनी सात्त्विक के फोन से उद्वेलित हो जाती है. सुकर्मा ने हमेशा की तरह आज भी देखा. उसने हिम्मत करके पूछ ही लिया, "रागिनी ! तुम्हारे और सात्त्विक के बीच क्या चल रहा है?"

"कुछ भी तो नहीं." रागिनी ने टालने की कोशिश की.

"फिर भी... कुछ तो है. तुम दोनों तलाक ले रहे हो क्या?" सुकर्मा ने डरते-डरते पूछा.

"नहीं, कभी नहीं. मैं सात्त्विक को छोड़ नहीं सकती हूँ." रागिनी बिफर पड़ी.

"क्यों...?" सुकर्मा के ढाई शब्द गोली-से लगे रागिनी को.

"ही इज़ माई हस्बैंड." रागिनी ने तपाक से कहा.

"येस, ओनली हस्बैंड, नॉट फादर ऑफ योर चाइल्ड." सुकर्मा ने अकस्मात् प्रतिक्रिया दी.

"मैंने तुम्हें सच बता दिया है, तो ताना मत मारो मुझे." रागिनी ने रुआँसे होकर कहा.

सुकर्मा ने रागिनी के कंधे पर प्यार से हाथ रख दिया, "मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं है. रागिनी ! मैं सिर्फ इतना चाहती हूँ, जो सच तुम, मैं और सात्त्विक जानते हैं, उसे सिर झुकाकर स्वीकार कर लो."

"उससे क्या होगा ?" रागिनी ने शिशुवत् पूछा.

"सबकी उलझनें कम हो जाएँगी और फिर सिद्धान्त को तुम सजा क्यों दे रही हो?" प्यार से रागिनी के बालों को आँखों से हटाते हुए सुकर्मा ने कहा.

"मैं कौन हूँ सिद्धान्त को सजा देनेवाली? अब सिद्धान्त से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है." रागिनी ने कमजोर आवाज़ में कहा.

"मत भूलो, रागिनी ! सिद्धान्त तापस का पिता है." सुकर्मा ने दृढ़तापूर्वक कहा.

"वह तो जबर्दस्ती हो गया." लापरवाही से टालने के लिए रागिनी ने सिर को झटका दिया.

सुकर्मा उठकर ठीक सामने बैठ गई, "क्या कहा तुमने...? यह क्या गलतफहमी पाल रखी है तुमने? कोई पुरुष ज़बरदस्ती किसी के बच्चे का पिता कैसे हो सकता है—वह भी तुम्हारे जैसी मज़बूत लड़की के साथ और तुम्हारे अपने घर में...?"

रागिनी सवालों की लड़ी को लम्बा होने से बचाने के आशय से बीच में

ही बोली, "मैंने सबकुछ लिखा तो था तुम्हें."

"हाँ, रागिनी! उसमें कहीं भी कुछ विकृति नजर नहीं आई मुझे. तुम दोनों के बीच प्यार के मीठे रिश्ते का एहसास है. उसमें बीभत्स का लेशमात्र भी नहीं है." सुकर्मा ने कहा.

गला खँखारते हुए रागिनी ने कहा, "मैंने सब कुछ बता दिया है, अब और कुछ मत पूछो."

सुकर्मा ने उसे कंधों से पकड़ा और सीधे आँख में देखकर कहा, "क्या वह तुम्हें खींचकर बिस्तर पर ले गया था?"

"मैंने कब कहा, हम दोनों हम-बिस्तर हुए... ?" रागिनी ने आहत होकर कहा.

"मैं भी तो यही कह रही हूँ. रागिनी! तुमने अपने मन में गलत गाँठ बाँध ली है. सिद्धान्त पढ़ा-लिखा सभ्य लड़का है. उसके संस्कारवान कोमल मन पर बीभत्स का मुलम्मा मत चढ़ाओ." सुकर्मा ने समझाने की कोशिश की.

"आप मेरी स्थिति नहीं समझ रही हैं, सुकर्मा!" रागिनी ने भर्राए गले से कहा.

"अच्छा, बताओ तो, उस दिन क्या हुआ था। पूरी बात बताओ." सुकर्मा ने कुरेदा उसे.

"मैंने सब कुछ लिख दिया था..." कहकर रागिनी ने अपना पर्स उठाया और अपने कमरे में जाने के लिए खड़ी हो गई.

"रागिनी, बैठो. तुमने मुझे बताया है कि तुम्हारी दो रूम-मेट भी हैं. वे दोनों उस समय कहाँ थीं?" पुलिसिया अन्दाज में सुकर्मा ने पूछा.

"एक तो अपने काम पर गई थी. सिल्विया बेडरूम में सो रही थी..." रागिनी ने बताया.

"यानी कि तुग दोनों लिविंग रूम में थे..."

"नहीं, दरवाज़े के एकदम पास वाली गैलरी में..."

सुकर्मा ने सिर झुकाकर कुछ सोचा, फिर गम्भीरतापूर्वक कहा, "तुमने लिखा था, तुमने सिद्धान्त को पकड़ लिया था..."

"हाँ, मैं उससे उसी तरह लिपट गई थी जैसे पेड़ पर बेल. एकरूप हो गए थे हम." लज्जा से लाल होते हुए उसने कहा. उसके चेहरे पर खिलता माधुर्य ही प्रमाण था कि इस सबमें रागिनी की चाह शामिल है.

सुकर्मा ने प्यार से कहा, "रागिनी! यह समर्पण का सुन्दरतम रूप है. खजुराहो की युगल-प्रतिमा का सजीवीकरण."

रागिनी ने सुकर्मा के वक्ष पर सिर रखा और उसकी अविरल अश्रुधारा

से सुकर्मा का मन भी भीग गया।

"रागिनी ! प्यार ईश्वर का सर्वोत्तम वरदान है. सबके भाग्य में वह अद्‌भुत सुख कहाँ ! तुम उसे कलुषित क्यों समझ रही हो...? मैं नहीं जानती हूँ." रागिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए सुकर्मा ने कहा. रागिनी मौन रही.

सुकर्मा ने प्यार से आदेश दिया, "तुम अपने मन की बात कह दो. मन हलका होने से जीना आसान हो जाएगा और मेरे विकल चित्त को भी शान्ति मिलेगी."

रागिनी नहीं जानती है कि सुकर्मा इतनी परेशान क्यों है।

उसने पूछा, "क्या आपकी सात्त्विक से कुछ बात हुई है?"

"नहीं !" सुकर्मा ने कहा, "किसी की पीठ पीछे मैं उसके बारे में किसी से डिस्कस नहीं करती हूँ. तुम मेरी दोस्त हो. दोस्ती में कोई बात छुपाने की ज़रूरत पड़े, तो दोस्ती के आगे सवालिया निशान लग जाता है. मै तो अपनी दोस्ती की खातिर पूछ रही हूँ."

रागिनी का नारीमन पसीज गया, "मैं सात्त्विक के सामने अपराधिनी सिद्ध नहीं होना चाहती हूँ. मुम्बई में जब वह कई लड़कियों से दोस्ती कर रहा था, मैंने उसे लम्बे-लम्बे भाषण पिलाए और आचार-संहिता के कठोर नियमों की शर्त पर दोस्ती की थी. सुकर्मा! मैं कैसे मान लूँ कि मैंने स्वयं उस आचार-संहिता का उल्लंघन किया है? मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है." रागिनी ने उसकी गोद में फिर मुँह छुपा लिया.

बच्चों की तरह रागिनी को प्यार करते हुए सुकर्मा ने समझाया, "सबसे बड़ा पाप है झूठ बोलना. कुछ भी हो जाए, इनसान को सच का सामना करना चाहिए. तुम सिद्धान्त को प्यार करती हो और तुम दोनों के बीच जो कुछ भी घटित हुआ है, वह तुम दोनों की मर्जी से हुआ है."

रागिनी ने 'हाँ' में सिर हिलाया.

"क्या तुम सिद्धान्त से शादी करना चाहती हो?" सुकर्मा ने सीधा सवाल किया.

रागिनी फिर पलट गई, "मैं सात्त्विक को छोड़ नहीं सकती हूँ."

सुकर्मा ने पूछा, "क्यों?"

रागिनी ने उसकी ओर देखकर कहा, "वैसे ही वह विरक्त-सा हो रहा है. मैंने छोड़ दिया तो संन्यास ले लेगा."

"दूसरे के जीवन की नाव को खेने की कोशिश मत करो, रागिनी!" सुकर्मा का उपदेशक जैसा स्वर गूँजा.

"फिर मैं क्या करूँ ?" रागिनी की भर्राई आवाज़ से पूरी घाटी उदास

हो गई.

"जो मैं कहूँ, मानोगी?"

"हाँ, सुकर्मा! मेरा तुम्हारे अतिरिक्त कौन है? माँ ने तो कब से दुनिया के इस विशाल समुद्र में गोते खाने के लिए अकेला छोड़ दिया है." रागिनी सुबक-सुबककर रोने लगी.

"रागिनी! वह सब भी ठीक हो जाएगा. तुम्हारी माँ से मैं बात करूँगी. उनका भी तो तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है इस दुनिया में."

कुछ रुककर सुकर्मा ने कहा, "सिद्धान्त को दामाद रूप में पाकर धन्य हो जाएँगी वह भी..."

"क्या...? तुम यह क्या कह रही हो?" रागिनी ने भयभीत हिरणी की तरह विस्फारित नेत्रों से देखा.

"मैं ठीक कह रही हूँ. आज और अभी तुम सिद्धान्त को फोन करोगी." साधिकार सुकर्मा ने कहा.

"मेरे पास उसका फोन नम्बर नहीं है."

रागिनी का असहाय स्वर सुनकर सुकर्मा मन्द-मन्द मुस्कराई, "फोन नम्बर मैं देती हूँ." उसने डायरी उठाई.

"क्या...? तुम्हारे पास सिद्धान्त का फोन नम्बर है...?" रागिनी के लिए घुप्प अँधेरे में रोशनी की चमकीली किरण-सी चमकी.

"044..." सुकर्मा ने नम्बर बोलना शुरू किया.

"तुम्हें कहाँ से मिला...? क्या तुम सिद्धान्त को जानती हो. उसके रिश्तेदार देहरादून में रहते तो हैं... बताया था उसने." रागिनी ने अपने-आप में खोकर कहा.

"मुझे सिद्धान्त का फोन नम्बर सात्त्विक ने दिया है. चलो, उठो, मैं नम्बर बोलती हूँ, तुम डायल करो." सुकर्मा ने हुक्म दिया.

"सात्त्विक ने...? अभी तो तुम कह रही थीं कि तुमने मेरे बारे में सात्त्विक से कोई बात नहीं की. क्या वे दोनों आपस में मिलते हैं?" रागिनी ने आश्चर्य से पूछा.

"हाँ, सात्त्विक ने सिद्धान्त से पेज़ली में मुलाकात की है. उसने उससे सीखकर मेरे लिए एक रेशमी स्कार्फ भी बनाया है। हमने तुम्हारे बारे में नहीं, स्कार्फ के बारे में बात की." सुकर्मा का सहज स्वर है.

"तुम्हें सब कुछ मालूम है...?" रागिनी मचल उठी.

"यह फोन है न जादू का डिब्बा... चलो, तुम फोन करो... तुम्हें भी बहुत कुछ मालूम हो जाएगा." सुकर्मा ने रागिनी के चेहरे को थपथपा दिया.

"आई कान्ट बिलीव इट." रागिनी ने अपने-आपसे कहा और डायरी हाथ में लेकर फोन घुमाना शुरू किया.

फिर रुककर पूछा, "कहूँगी क्या?"

मुस्कराते हुए सुकर्मा ने कहा, "शादी का प्रस्ताव रखोगी, और क्या!"

"क्या...?" रागिनी धप्प से ज़मीन पर बैठ गई. "मैं लड़की हूँ. इंग्लैण्ड में तो पारम्परिक सोच है. वे लोग बहुत बुरा मानते हैं कि लड़की शादी का प्रस्ताव करे..."

"तुम चिन्ता मत करो. मैं पागल नहीं हूँ. यह लीप वर्ष है. बारह बज चुके हैं... आज वैलेन्टाइन डे है. डियर रागिनी... यह ऐतिहासिक दिन है जब लड़कियाँ अपने प्रियतम के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रख सकती हैं."

"तुमको यह सब भी मालूम है, सुकर्मा! तुम सीधी दिखती हो... कितनी गहरी हो तुम...!" रागिनी ने सुकर्मा का हाथ पकड़कर आँखों में देखते हुए कहा.

"यह सब बाद में सोचना, पहले फोन मिलाओ और सिद्धान्त से कहो, जितनी जल्दी हो सके, भारत आ जाए."

सुकर्मा की आज्ञा मानकर रागिनी ने फोन मिलाया. उधर से 'हैलो' सुनते ही फोन वापस रख दिया. सुकर्मा ने कातर निगाह से उसे देखा.

रागिनी ने जल्दी से रिडायल का बटन दबा दिया. 'हैलो' सुने बिना ही उसने कहा, "रागिनी हियर! आपसे सुकर्मा बात करना चाहती हैं."

सुकर्मा ने उसे घूरकर देखा और 'न' में सिर हिला दिया.

तापस के रोने क़ी आवाज़ सुनकर सुकर्मा दूसरे कमरे में चली गई.

रागिनी की जलती-बुझती आवाज़ से घाटी में नई तरंगें जन्म ले रही हैं।

पैंतीस

जिस चीज की चाह हो, वह अप्रत्याशित रूप से मिल जाए तो मनुष्य के पैर जमीन पर कहाँ...! सिद्धान्त वैलेन्टाइन डे की उस अभूतपूर्व रात से हवा में है. मानो पलक झपकते ही वह देहरादून पहुँच गया हो. सूरज की पहली किरण के साथ सुकर्मा ने देखा, इक छरहरा युवक नटखट मुस्कान लिए खड़ा है दरवाज़े पर.

वह देखते ही खुशी से उछल पड़ी, "सिद्धान्त ? वेलकम! वेलकम !"

सिद्धान्त ने बिना आगे-पीछे देखे बाँहों में भर लिया सुकर्मा को, "थैंक यू वेरी मच! मैं आपका एहसान जिन्दगी-भर नहीं चुका सकूँगा."

छूटते ही सुकर्मा ने कहा, "एहसान तो गैरों के बीच होता है... तुम तो अपने हो..." और पीछे की ओर सिर घुमाकर आवाज़ दी, "रागिनी ! देखो तो..."

रागिनी उछलकर बाहर आ गई. गुलाबी नाइटी में खिलता बदन देखकर सिद्धान्त ने तुरन्त कैमरा खोला, "रुको तो जरा..."

"ओह नो..." भागते हुए वह सिद्धान्त के बाहुपाश में समा गई.

सुकर्मा के चेहरे पर मुस्कान के साथ खुशी हिलोरें ले रही है. बरसों बाद शिराओं में रक्त-प्रवाह महसूस किया है जैसे. वह भागते हुए रसोईघर में चाय बनाने में लग गई. इतनी सुबह नाश्ता भी तैयार कर लिया. सिद्धान्त आया है, कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं है न वह ! तापस का पिता और रागिनी का सर्वस्व है वह.

सिद्धान्त ने भी बिना ना-नुकुर किए सैण्डविच चबाना शुरू किया, "वाह! क्या बात है... सुकर्मा जी !.." तनिक रुककर पुन: कहा, "मैं आपको नाम से पुकार सकता हूँ ?... आप 'न' भी कहें, तो कहूँगा मैं सुकर्मा ही."

सुकर्मा ने कहा, "मत भूलो, मैं तुमसे बड़ी हूँ."

सिद्धान्त ने तपाक से कहा, "बड़ी हैं, मान लिया ! इतनी बड़ी दादी भी तो नहीं हैं न ! वह तो रागिनी पहले मिल गई वरना..." उसकी आँखों की

शरारत से सुकर्मा खिलखिलाकर हँस दी और तुरन्त सावधान होकर सीधा तनकर बैठ गई.

"कहो कुछ भी, बड़ों का सम्मान तो करते हो तुम. मैंने देख लिया, कैसे बहाने से पैर छुए हैं तुमने."

"वह तो मैं कैमरा उठा रहा था." सिद्धान्त के ठहाके से वातावरण महक गया. हँसी के ठहाके में तापस के रोने की आवाज़ शामिल हो गई.

"तापस की नींद खुल गई है शायद." रागिनी कमरे की ओर भागी.

सिद्धान्त पीछे-पीछे चला गया. तापस को गोद में उठाते ही पिता की गम्भीरता से उसका चेहरा रक्ताभ हो गया. सुकर्मा को अच्छा लगा, "लाओ, कैमरा मुझे दो, मैं परिवार की तस्वीर खींचती हूँ."

रागिनी सुकर्मा को कैमरा पकड़ाकर सिद्धान्त के पास बैठ गई. सिद्धान्त ने बाँह फैलाकर उसे सीने से लगा लिया. सुकर्मा ने कहा, "परफेक्ट!" और क्लिक की आवाज़ से मानो सारी रस्में पूरी हो गईं.

आर्य समाज के अनुसार शादी का बन्दोबस्त परम्परा निभाने के लिए किया गया. कुन्ती एवं सुदीप ने कन्यादान किया. सुकर्मा सिद्धान्त की बड़ी बहन बनकर खड़ी हो गई.

परिवार इस धरती पर भी बनते हैं. सुमेधा दी ने सबके लिए खाने का बन्दोबस्त किया.

हँसी-खुशी दिन उड़ रहे हैं. सुकर्मा ने रागिनी की माँ को मिलने के लिए भी कार्यक्रम निर्धारित कर लिया है. रागिनी की जिद के सामने सुकर्मा हार गई. सौरभ को लेकर वह उनके साथ बम्बई जाने को तैयार हो गई. रागिनी की माँ ने रागिनी से पहले सुकर्मा को गले लगाकर ढेरों आशीष दिए.

माँ-बेटी गले लगकर रोतीं, इससे पहले ही सिद्धान्त ने माँ के पैर छूकर माँ को बाँहों में उठा लिया, "अब मैं आ गया हूँ न! सब कुछ ठीक हो गया है. कल आपका जन्मदिन है न! बताएँ, ब्लैक फॉरेस्ट केक बनाऊँ या पाइनेप्पल... मुझे बेकिंग बहुत अच्छी आती है."

सब लोग हँस दिए. तापस ने भी नानी की गोद में अजीब सुरक्षा महसूस की.

"खून का रिश्ता मजबूत होता है रे!" रागिनी की माँ ने कहा.

खाते-पीते दिन निकल गया. साँझ ढले माँ ने रागिनी से पूछा, "सात्त्विक कैसा है? मुझे उसकी फिक्र है..."

रागिनी की माँ के इस सवाल से सब खामोश हो गए. माँ तो सात्त्विक से बहुत नाराज़ थीं. उन्हें लगता था, सात्त्विक लाल सलाम के छलावे में

उनकी नादान लड़की को उनसे दूर ले गया है. अब उन्हें सात्त्विक की चिन्ता हो रही है ; यानी कि उन्होंने उसे भी माफ कर दिया है.

रागिनी ने भर्राई आवाज़ में कहा, "ठीक ही होगा. कल फोन करेंगे उसे...माँ, गलती सिर्फ उसी की नहीं थी. मैं हर बात में बराबर की भागीदार थी. उसने मेरा अपहरण तो नहीं किया था न! मैं अपनी मर्जी से उसे ढूँढते हुए मसूरी गई थी. वहाँ बसन्त-सुकर्मा की उपस्थिति में हमने शादी की थी."

माँ ने जमीन कुरेदते हुए कहा, "मैं जानती हूँ..." और फिर सजल आँखों से बसन्त को याद करते हुए सुकर्मा से कहा, "बेटी, तुम कैसी हो?"

सिद्धान्त ने बीच में आकर कहा, "माँ तो सब कुछ जानती हैं. यह भी जानती हैं कि होता वही है, जो मंजूरे-खुदा है. है न माँ?" वह माँ के पैरों के पास कारपेट पर बैठ गया.

माँ ने उसका हाथ पकड़कर 'हाँ' कह दी हो मानो. रागिनी और सुकर्मा ने राहत की साँस ली.

रागिनी ने कहा, "माँ, ग्यारह बज रहे हैं. चलो अब आप अपने कमरे में."

माँ ने ज़िद करते हुए कहा, "अपने कमरे में अकेले तो मुद्दत से हूँ. आज सबके साथ रात गुजरने दो."

रागिनी ने हैरानी से देखा, "चलो! हम वहीं बैठते हैं."

सिद्धान्त ने कहा, "आप हमारे साथ स्कॉटलैण्ड चलेंगी."

रागिनी ने कहा, "हाँ, हम आपको अकेला नहीं छोड़ेंगे."

माँ ने चुपचाप तापस को गोद में ले लिया और अपने कमरे की ओर चल दीं.

सिद्धान्त ने इसे सकारात्मक संकेत समझा. वह मुस्कराते हुए माँ के पीछे-पीछे उनके कमरे में चला गया.

माँ ने आँखें बन्द करके महीनों क्या, सालों से उनींदी दो आँखों में नींद को उतरने दिया...।

छत्तीस

गोआ की फ्लाइट से रागिनी एवं सिद्धान्त ने नए जीवन की शुरुआत की. उन दोनों के बीच तापस का होना ज़िन्दगी को नए मायने दे रहा है.

सिद्धान्त पिता एवं पति की भूमिका में खरा उतर रहा है. तापस को बेपनाह प्यार करते हुए भी वह रागिनी की उपेक्षा नहीं कर रहा है. यूँ कहो, रागिनी के हिन्दुस्तानी सौन्दर्य से अभिभूत है वह. उसके अंग-प्रत्यंग के सौष्ठव को निहारते हुए थकता नहीं वह. अद्‌भुत स्फूर्ति है उसमें और स्पर्श की अपरिमित अभीप्सा.

रह-रहकर उसके होंठ गोल हो जाते हैं और रागिनी लाज से सिमट जाती है. रागिनी के लिए भी यह नया अनुभव है. उसके रोम-रोम से ऊर्जा-प्रवाह प्रस्फुटित हो रहा है. पहाड़ी झरने के अदम्य वेग की तरह यौवन का अनूठा रूप है यह—एक-दूसरे को समग्र रूप से पा लेने की चाह या परस्पर सुख देने की अदम्य इच्छा.

बिन कहे एक-दूसरे को समझ लेना जीवन में संगीत को जन्म देता है. चलते हुए, खाते-पीते, यहाँ तक कि नहाते हुए भी अजीब लय आ गई है जीवन में.

गुनगुनाते पलों के बीच दिन-सप्ताह का आभास नहीं हो रहा है. रागिनी ने ही कहा, "अब हमें वापस चलना चाहिए. कुछ दिन सुकर्मा के साथ रहेंगे."

"नहीं, स्वीटहार्ट! नॉट दिस टाइम." सिद्धान्त ने प्यार से कहा. बिना किसी बहस के रागिनी ने मान लिया. सिद्धान्त ने सुकर्मा को फोन कर दिया,

"हम अभी यहाँ कुछ दिन और ठहरेंगे. आप हमारी रिज़र्वेशन रद्द समझें. आपको अकेले जाने में मुश्किल तो नहीं होगी न...!"

"नहीं, मैं अकेली कहाँ हूँ? मेरे साथ सौरभ है." सुकर्मा ने सधी हुई आवाज़ में कहा.

देहरादून पहुँचकर सुकर्मा ने सामान उतारने के लिए कहा ही था कि सामने कुन्ती दी, सुदीप एवं संजना दिखाई दिए. वे तीनों भी सुकर्मा के बिना

उदास हो रहे थे. बेताबी से कुन्ती दी ने सुकर्मा को गले लगाया. सुदीप ने भी एक बाँह के घेरे में लेकर सुरक्षा का आश्वासन-सा दिया.

घर पहुँचते ही जसवन्ती ने अदरक वाली चाय बनाकर पिलाई. अपने घर की सुख-शान्ति का महत्व सुकर्मा को महसूस हुआ.

उसने ऑफिस फोन करके अपने पहुँचने की खबर दी. वहाँ भी सुकर्मा के वापस आ जाने की खबर से खुशी की लहर दौड़ गई. सुकर्मा नहीं जानती थी कि लोगों के लिए उसकी उपस्थिति मायने रखती है. यह जानकर सन्तोष होना स्वाभाविक है.

अगले ही दिन सुदीप के साथ वत्सला को मिलने जाने का कार्यक्रम तय करके वह नहाने के लिए चली गई. बम्बई में उसने जसवन्ती को बहुत याद किया. मालिश से बदन में स्फूर्ति तो आती ही है.

'कल सुबह जल्दी मालिश करवा लूँगी,' सोचकर उसने लगभग खौलते पानी से अपने बदन को लाल कर लिया. तौलिए से पोंछते हुए मिर्ची-सी लग रही है. रगड़-रगड़कर पोंछना उसकी आदत है. दु:ख में भी सुख का अजीब एहसास लेने की आदत हो गई है उसे.

नहाकर बालों को झटकने के लिए छत पर चली गई वह. सिद्धान्त की पतली लम्बी अंगुलियों का खयाल आ गया उसे. लड़कियों की तरह अजीब कोमलता से भरा उसका व्यक्तित्व एथलीट बॉडी में पूर्ण पुरुष का साकार रूप है. सुकर्मा को अकस्मात् ख्याल आया, 'संभवत: कृष्ण ऐसे ही रहे होंगे, चपल नयन, आशु वाक्-कला, संगीत एवं कला के प्रति प्रेम और सबका मन जीत लेने का कौशल...' स्वयं ही मुस्करा रही थी वह.

पीछे से सुदीप का स्वर सुनाई दिया, "बम्बई जाकर पतली हो गई हो तुम. वहाँ क्या समुद्र के किनारे दौड़ लगाती रही हो...?"

"नहीं तो, रागिनी की मम्मी के साथ दिनभर गप्प-शप्प और रोज़ साँझ शॉपिंग." सुकर्मा ने सिर घुमाकर कहा.

"अच्छा, हम भी तो देखें, क्या-क्या खरीदा...?" सुदीप ने पूछा और उसके बहुत नज़दीक आकर खड़ा हो गया. दोनों साथ-साथ सीढ़ियाँ उतर आए.

सुकर्मा ने कुन्ती दी एवं संजना के लिए कपड़े निकाले. सुदीप को अपनी टाई बहुत पसन्द आई.

उसे बसन्त की याद हो आई, दोनों ने टाई पहनने का सिलसिला साथ-साथ शुरू किया था. सुदीप के पिता ने दोनों को टाई-नॉट लगानी सिखाई थी.

दोपहर के खाने के बाद, सब लोग सो गए. साँझ से पहले ही सुदीप सुकर्मा के घर का सामान खरीदने के लिए चले गए.

कुन्ती दी ने सुकर्मा से बम्बई-यात्रा और रागिनी-सिद्धान्त के बारे में पूछने का क्रम जारी रखा.

सुकर्मा की जिद से वे तीनों वहीं रुक गए.

देर रात को सात्त्विक ने सुदीप की आवाज़ सुनकर पूछा, "सब ठीक तो है...? आप इस वक्त यहाँ...?"

"हाँ भई, सब ठीक है. सुकर्मा की जिद से कुन्ती, संजना और मैं यहीं रुक गए हैं." कहकर सुदीप ने खुद ही सोचा, 'वह इस प्रकार सफाई क्यों दे रहा है? सुकर्मा से उनकी नज़दीकी रिश्तेदारी है. और फिर, सात्त्विक को सुकर्मा के निजी जीवन में हस्तक्षेप का क्या अधिकार...?' अपनी सोच में गुम सुदीप को सात्त्विक का स्वर सुनाई नहीं दिया.

उसने फोन को आँख के सामने लाकर गौर से देखा और सहज स्वर में पूछा, "तुम कैसे हो? आगे क्या सोच रहे हो...?"

"मैं ठीक हूँ. जल्दी भारत आने की सोच रहा हूँ." सात्त्विक ने कहा.

सुदीप को खुशी हुई. बसन्त के बाद सात्त्विक ही तो उसका निकट मित्र है. दिल की हज़ार बातें हैं, कहने-सुनने के लिए. बेताबी से पूछा, "कब...?"

सात्त्विक ने अपना कार्यक्रम बताकर फोन रख दिया.

कहीं भीतर सुकर्मा के मन में सवाल कौंधा, सात्त्विक ने बिना उससे बात किए फोन क्यों रख दिया...?

सैंतीस

अपने बाल सँवारते हुए सुकर्मा ने कुन्ती दी से पूछा, "मैं पतली हो गई हूँ क्या?"

"नहीं तो," कुन्ती दी ने मन्द-स्मित के साथ कहा.

सौरभ और तापस खेल में मग्न हैं. सुदीप ने हमेशा की तरह अपनी आँखें अखबार में गड़ा रखी हैं.

जसवन्ती ने झाडू लगाते हुए सुकर्मा की नाक की लौंग उठाई. सुकर्मा को खुशी हुई कि हीरा खोया नहीं है. फिर भी, उसे बहुत बुरा लगा कि वह लौंग जमीन पर गिर गई, जो बसन्त ने अपने हाथ से उसे पहनाई थी.

कुन्ती दी ने समझाने के लिए कहा, "इतनी छोटी बातों से मन छोटा नहीं करते. ईश्वर को धन्यवाद दो कि लौंग मिल गई है."

सुकर्मा ने दीया जलाकर सिर नवा लिया. आँख से मोती झरने लगे. वह चेहरा छुपाकर देर रात तक प्रार्थना का नाटक करती रही.

कुन्ती दी के कमरे से बाहर जाने के बाद राहत की साँस ली उसने. अकेले रहते-रहते आदत-सी हो गई है उसे अपनी निजता को अपने भीतर समेटकर रखने की. दिल की बातें खटाखट कहने की आदत वैसे भी उसे कभी नहीं थी और शादी के बाद बसन्त के आदेश से लम्बे मौन के अभ्यास ने उसे अपनी बात न कहने की कला सिखा दी है.

अपने-आपको शॉल में लपेटकर वह नाश्ते की टेबल पर आकर बैठ गई. जल्दी-जल्दी नाश्ता निपटाकर वे सभी सुदीप की नई कार में मसूरी के लिए रवाना हो गए.

जसवन्ती ने सात्त्विक का फोन उठाया और कहा, "कोई घर पर नहीं है." सात्त्विक ने निराश होकर फोन रख दिया.

न जाने क्यों, तीन दिन सात्त्विक ने फोन नहीं किया. वह स्वयं को संयम का पाठ सिखा रहा है या अपने-आपको सजा दे रहा है, वही जाने.

सुकर्मा उसके फोन की विकलता से प्रतीक्षा करती रही. सात्त्विक का

फोन आने पर उसने पहली बार शिकायत की, "इतने दिन तक फोन क्यों नहीं किया?"

सात्त्विक ने उसके प्रश्न का उत्तर दिए बिना पूछा, "रागिनी और सिद्धान्त कैसे हैं? कहाँ हैं आजकल...?"

सुकर्मा को सात्त्विक के इन सवालों से चोट का एहसास हुआ. यथासम्भव सहज रहते हुए बम्बई-प्रवास एवं उन दोनों के गोवा जाने की बात सविस्तार बताई.

सात्त्विक फोन रखे, इससे पहले बेचैनी से पूछा, "तुम कब पहुँच रहे हो?"

सात्त्विक के भीतर कहीं कोई ठण्डी हवा का झोंका महसूस हुआ, "जल्दी... तुम अपना ध्यान रखना. मुझे बहुत-सी बातें करनी हैं तुमसे..."

"जी! आप अपना खयाल रखें. अपने-आपको अकेला नहीं सोचना."

"हूँ..." सात्त्विक की गम्भीर आवाज़ सुकर्मा के भीतर उतर गई. दिन भर मन तरंगायित रहा.

ऑफिस का काम फुर्ती से निपटाकर वह बाज़ार चली गई. यूँ ही एक शर्ट खरीद ली सौरभ के लिए और फिर अपने लिए एक लेस लगी नीली नाइटी भी ले ली.

'जीवन में रंग और रस मरना नहीं चाहिए.' बसन्त हमेशा कहता था.

घर आकर नाइटी पहनकर अपने-आपको शीशे में देखना अच्छा लगा. उम्र की गिनती उसने कभी नहीं की. अपने-आपको स्वस्थ रखने की कोशिश हमेशा से करती रही है. विशेष रूप से, बसन्त के जाने के बाद. उसे वत्सला एवं सौरभ की जिम्मेदारी का एहसास है. वह उसे पूरा करके ही इस दुनिया से जाना चाहेगी. इस संकल्प को गाहे-बगाहे दोहराते हुए वह अपने शरीर का मुआयना करती है कि बुढ़ापा या मृत्यु के चिह्न तो नहीं हैं कहीं!

लोग उसे सराहते हैं. स्त्रियाँ ईर्ष्या की दृष्टि से कोंचती हैं. उसे अब किसी की परवाह नहीं है. पहाड़ी नदी की तरह अपना रास्ता खुद तराशना सीख लिया है उसने.

साँझ के झुटपुटे में अकेले सैर करते हुए उसे डर नहीं लगता है. लोगों की घूरती आँखों का सिलसिला अपने-आप थमने लगा है.

सच तो यह है कि कहीं कुछ नया उभर रहा है उसके व्यक्तित्व में. सब उससे भय खाने लगे हैं. अपने चारों ओर उग आए इस कँटीले हाशिए से वह अपने-आपसे आश्वस्त है.

रात को पिताजी से फोन पर बात करके यहाँ के सब समाचार दिए उसने. बाहर हलकी बूँदा-बाँदी हो रही है. वह मफलर से सिर लपेटकर बाहर आ गई. रुक-रुककर बिजली का चमकना उसे अच्छा लगा. अपने-आपको

बसन्ती हवा में महसूसना सुखद है. सोते-जागते, सुख-दु:ख में चढ़ते-उतरते, बदलते मौसम की अँगड़ाई के साथ वत्सला में नवयौवन के चिह्न दिखने लगे.

इससे पहले कि वत्सला शादी के लिए तैयार हो, सुकर्मा को अपना घर बना लेना चाहिए. यह सुमेधा दी ने सलाह दी. सुकर्मा को उनकी बात शत-प्रतिशत सही लगी.

सुमेधा आयु में सुकर्मा से छोटी है. संयुक्त परिवार में रहने के कारण उसे दुनियादारी की ज्यादा अक्ल है. उसने अपने चारों ओर ऐसे परिवार देखे हैं जिनके बच्चों ने होशियारी से अपने सीधे-सादे ग्रामीण पिता से उनकी पुश्तैनी जमीन बिकवा दी और उन्हें पहाड़ से देहरादून ले आए. ऐसी ही कुछ कहानियाँ बिना किसी इरादे के उन्होंने सुकर्मा को सुनाईं. सुकर्मा जानती है कि पिताजी से गाँव के घर-खेत बेचने की बात करना उसके लिए बहुत मुश्किल है.

घर बनाने के साधन उसके पास अभी नहीं हैं. यह भी जानती है सुकर्मा... वह यह भी जानती है कि एक बार मंजिल तय हो जाने पर राह खुद-ब-खुद खुल जाती है।

जुलाई की मूसलाधार बारिश में भीगते हुए सात्त्विक ने दरवाज़े पर दस्तक दी. जसवन्ती ने दौड़कर दरवाज़ा खोला. सुकर्मा ने भीतर से ही आवाज़ दी, "अखबार वाले के पैसे टी.वी. के ऊपर रखे हैं."

"जी! मेमसाहब! हम इतने से पैसे लेकर वापस जाने वाले नहीं हैं." सात्त्विक बेडरूम के पर्दे की ओट से बोले.

सकपकाकर सुकर्मा बाहर आ गई. नीली लेस में गोरे चेहरे पर आँखों का नीला रंग मोहक है. सात्त्विक की आँख टिक नहीं सकी.

उसने अपने लम्बे बालों पर हाथ फेरा. सिर घुमाकर सौरभ को ढूँढ़ने का उपक्रम किया, "सौरभ बाबा कहाँ हैं?"

"जी, अभी सो रहे हैं." जसवन्ती ने उत्तर दिया.

सुकर्मा ने गाढे नीले रंग का गाउन पहनकर कमर को कस लिया है. सात्त्विक को बैठने के लिए इशारा करके वह रसोईघर में चली गई.

कॉफी के घूँट भरते हुए सात्त्विक ने अजीब तृप्ति का एहसास महसूस किया. हर छोटी-बड़ी बात में दर्शनशास्त्र की विवेचना करनेवाले सात्त्विक ने पहली बार किसी भाव को भीतर तक उतरने दिया. उसकी नाभि में खलबली हो रही है. वह जानना नहीं चाहता है कि यह क्या है.

'होने दो, बस, होने दो...' उसने आँखें बन्द कर लीं.

सुकर्मा ने सात्त्विक को गौर से देखा. वही गोरा रंग, बलिष्ठ बदन, छाती से झाँकते रोयें... फिर भी, कुछ बदला-सा है. उसे समझ नहीं आ रहा है कि

क्या बदला है... अकस्मात् उसने कहा, "अरे! आपने मूँछें बढा ली हैं."

सात्त्विक जोर से हँस पड़ा, "सुकर्मा! तुम बडे होने का नाटक कर रही थी. हो तो तुम वही अल्हड़ इक्कीसवर्षीय बाला."

सुकर्मा ने बात पर गौर करना सही नहीं समझा.

पीछे से दरवाजे में खड़े सुदीप ने कहा, "फर्क सिर्फ इतना है कि अब यह होशियार हो गई हैं. अपना भला-बुरा समझती हैं और अपने पैरों पर मजबूती से खड़ी हैं."

सात्त्विक ने सुदीप से गले मिलते हुए कहा, "वह तो देख रहा हूँ. तुम क्यों मोटे होते जा रहे हो?"

"अरे, यह तो समृद्धि के संकेत हैं."

फिर उसके चेहरे पर देखते हुए कहा, "सबको तुम्हारी तरह चिरयुवा रहने का वरदान भी तो नहीं मिला."

सात्त्विक ने एक आँख बन्द करते हुए कहा, "यह कैसा यौवन जिसने ब्रह्मचारी बना दिया!"

सुदीप ने सुकर्मा को कनखियों से देखकर धीरे से कहा, "तुम नहीं सुधरोगे..." फिर कान में फुसफुसाकर कहा, "दस अंग्रेज लडकियों से दोस्ती के किस्से तो याद हैं मुझे. उसके बाद और कितनी जुडी होंगी. तुम्हें तो संख्या और नाम भी याद नहीं होंगे."

"अरे, वो सब तो अतीत हुआ..." सात्त्विक के चेहरे पर गाम्भीर्य की छटा देखकर सुकर्मा और सुदीप दोनों को हैरानी हुई.

सुदीप ने सोचा, एक्टिंग कर रहा है.

सुकर्मा ने अन्दाज लगाया, रागिनी से आहत है सात्त्विक.

दोनों का अनुमान गलत है. सात्त्विक की डगर बदल रही है. वह दाम्पत्य-प्रेम एवं दैहिक सम्बन्धों के दायरे को लाँघ कर किसी और तत्त्व की तलाश में है.

नहाकर कुर्ता-पाजामा पहनकर सात्त्विक अपनी आयु से और भी छोटा लग रहा है. वे सब सुदीप के साथ आई.आई.पी. चले गए. कुन्ती दी ने आलू के परौंठे, हरी चटनी और बूँदी का रायता बनाया है. सात्त्विक की यही फरमाइश थी.

रात को सुदीप ने मटर-पुलाव और शाही पनीर की माँग की. सुकर्मा ने अपने तरीके से दाल-मक्खनी बनाई. खाना ही अहम् विषय रहा दिन-भर. सात्त्विक और सुदीप टहलने के लिए चले गए, तो कुन्ती दी ने सुकर्मा से पूछा, "रागिनी के विषय में कुछ बात हुई क्या?"

सुकर्मा ने साधिकार कहा, "सात्त्विक को बन्द हो चुकी फाइल खोलने की आदत नहीं है."

कुन्ती दी को अच्छा नहीं लगा. सुदीप ने सात्त्विक को होटल छोड़ने के बाद सुकर्मा और तापस को घर छोड़ा.

वह पुरातनवादी नहीं है. पर न जाने क्यों सुकर्मा पर एकाधिकार रखना चाहता है. वह नहीं चाहता है कि सात्त्विक अकेले में सुकर्मा से अधिक मिले. वह सुकर्मा को सावधान करना चाहता है.

सुकर्मा ने मौका ही नहीं दिया. गाड़ी से उतरते वक्त उसने कहा, "आप कल साँझ जल्दी आ जाएँ. सात्त्विक के साथ अकेले में कुछ बात करने के लिए विषय ही नहीं सूझेगा मुझे."

सुदीप को सुनकर बहुत अच्छा लगा. उसने खुशी से कहा, "तुम फिक्र मत करो. मैं और कुन्ती बहुत जल्दी पहुँच जाएँगे."

सात्त्विक ने होटल पहुँचते ही अपना सामान खोला. पेज़ली से सजे काले-लाल स्कार्फ को बिस्तर पर बिछाकर गौर से देखा, प्यार से तह किया और कोट की जेब में रख दिया.

थोड़ी देर में ही रिसेप्शन से फोन था, "सर! आपके लिए फोन है."

सात्त्विक ने सोत्साह कहा, "हैलो! हैलो!"

"सात्त्विक! मैंने आपको डिस्टर्ब तो नहीं किया?"

"नहीं, बिलकुल नहीं. आप हुक्म कीजिए."

सुकर्मा ने सकुचाते हुए कहा, "कल साँझ मुझे तनिक देर हो जाएगी ऑफिस में..."

"नो प्रॉब्लम. मैं तो कल वत्सला को मिलने के लिए मसूरी जा रहा हूँ. कल रात वहीं रहूँगा. यू कैरी ऑन विद युअर वर्क." सात्त्विक की बात सुनकर सुकर्मा को अपने-आप पर गुस्सा आया. वह नाहक परेशान हो रही है. विकार उसके अपने मन मे है. सात्त्विक तो सहज रूप से बसन्त से दोस्ती का दायित्व निभा रहा है.

सुकर्मा के मन से पाप स्वत: धुल गया. वह एकदम निश्चिन्त होकर गुनगुनाने लगी.

आधी रात को अपने लिए कॉफी बनाना उसे बहुत अच्छा लगता है. कॉफी का एक घूँट उसके गले में अटक गया. खाँसते-खाँसते उसने दरवाज़ा थाम लिया.

हवा के झोंके से हिलते पर्दे ने उसके चेहरे को छुआ. पर्दे में बसी सात्त्विक की खुशबू ने उसे घेर लिया. उसने एक झटके से पर्दे को हटाया. सोफे पर लम्बे पैर करके बैठ गई. दूर कहीं कोई गीत बज रहा है !

अड़तीस

सात्त्विक और सुदीप वत्सला से मिलने के लिए मसूरी पहुँच गए हैं. सात्त्विक को देखकर वत्सला तो हवा में उड़ने लगी. ढेरों चॉकलेट और न जाने क्या-क्या लेकर आया है सात्त्विक. वत्सला की मैडम ने सूची बनाकर सब कुछ जमा कर लिया है.

सात्त्विक ने वत्सला की मैडम लवलीन को भी उपहार दिया. 'न' कहते हुए भी उसने ले लिया. दरअसल वह तो सात्त्विक के व्यक्तित्व से प्रभावित हो रही है. सात्त्विक ने उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया. वह वत्सला की बातें सुनने में मग्न है. वत्सला से विदा लेते हुए उसने लवलीन से कहा, "मुझे यकीन है, आप हमारी बेटी का खास खयाल रखेंगी."

लवलीन उसके बहुत नजदीक आकर खड़ी हो गई, "जी ! आप निश्चिन्त रहें. वत्सला अब मेरे लिए और प्रिय हो गई है."

सात्त्विक ने तरल.आँखों से लवलीन को देखा और भारी मन से लवलीन से विदा ली. साँझ ढले माल रोड पर घूमते हुए सुदीप ने सात्त्विक को छेड़ा, "वत्सला की मैडम का तुम पर दिल आ गया है." सात्त्विक ने कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की.

सुदीप ने हलके स्वर में पूछा, "रागिनी ने बहुत चोट पहुँचाई है तुम्हें."

"नहीं, सुदीप! इसके ठीक विपरीत मैंने रागिनी को बहुत सताया है. कोई और लड़की होती, तो कई साल पहले छोड़कर चली जाती मुझे..." सात्त्विक ने गम्भीरतापूर्वक कहा.

"क्यों, यह कैसे...? तुमने कैसे सताया है? रागिनी ने अन्य पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित किए हैं, तुमने नहीं."

"हरेक बात का कोई कारण होता है, सुदीप!"

"ऐसा कोई कारण मेरी समझ से परे है. यह तो नादानी है या पागलपन!... अपने पति के होते हुए पत्नी गैर पुरुष के साथ इतना निकट सम्बन्ध स्थापित कर ले कि उसके बच्चे की माँ बन जाए..." सुदीप ने

दुनियादार की तरह कहा.

सात्त्विक रुक गया. उसने सुदीप की आँख में देखकर कहा, "तुम आदमी लोग, बिना पूरी बात जाने, औरत को दोष देने लगते हो."

सुदीप भौचक्क रह गया. सात्त्विक ने ठहराव के साथ कहा, "यदि मैं किसी अन्य महिला के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता. वह मेरे बच्चे की माँ बन जाती, तो...?"

"तो... क्या...?"

"तुम निश्चित रूप से रागिनी पर दबाव डालते कि जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ. यहाँ तक कि तुम उसे मेरे बच्चे को स्वीकार करने के लिए कहते, तो भी मुझे आश्चर्य नहीं होता." सात्त्विक ने कहा.

सुदीप ने तर्क दिया, "यह सब हवाई बातें करके तुम रागिनी के दोष को छुपा नहीं सकते हो."

सात्त्विक ने दूर क्षितिज में देखते हुए कहा, "मैं रागिनी के दोष को छुपा नहीं रहा हूँ. रागिनी निर्दोष है."

सुदीप सवालिया निगाह से देखता रहा. सात्त्विक ने कहा, "इंग्लैण्ड पहुँचने के लगभग दो माह बाद ही हम दोनों के बीच दैहिक सम्बन्ध खत्म हो गए... एकदम खत्म."

सुदीप पूछना चाहता है, "क्यों?"

सात्त्विक ने स्वयं ही कहा, "तुम इसका कारण पूछोगे, तो मेरे पास कोई जवाब नहीं है. तुम सोचोगे, पहले की तरह ऊब हो गई होगी मुझे."

सुदीप ने बीच में टोका, "कोई नई लड़की मिल गई क्या...?"

सात्त्विक ने रुक-रुक कर कहा, "नहीं, यार! मिलती कैसे...? मैं नई लड़की चाहता ही नहीं था. सच बात यह है कि रागिनी के मिलने के बाद मुझे कोई अन्य लड़की आकर्षित नहीं कर सकी. यहाँ तक कि उसने जब मेरे प्रस्ताव को सुना ही नहीं था, आहत होकर मैं अपना घर छोड़कर पहाड़ पर आ गया था, तब भी मुझे कोई अन्य लड़की बाँध नहीं सकी. याद नहीं तुम्हें, मैं तो घड़ी के पुर्जों की बारीकी में खो गया था..."

सुदीप ने निःश्वास छोड़कर कहा, "सब याद है मुझे. एक बात मेरी समझ से परे है कि तुम इतना कैसे बदल गए. जिस लड़की को पागलपन की हद तक प्यार किया, जिसके लिए घर छोड़ा, जिससे हड़बड़ी में शादी की, उससे सम्बन्ध क्यों नहीं निभ सका ?"

सात्त्विक ने समझाने की कोशिश करते हुए कहा, "मैंने बताया है न तुम्हें, दोस्त! मेरे-उसके बीच देह का रिश्ता खत्म हो गया. इसका कारण यह नहीं

है कि उसकी देहयष्टि में कुछ कमी आ गई हो. यू. के. आकर तो वह और भी अधिक सुन्दर हो गई. जब उसका सौन्दर्य चरम शिखर पर पहुँचा, अचानक मुझे लगा, हम दोनों के बीच मन के तार चटख रहे हैं. महज ऐन्द्रिक सुख के लिए एक-दूसरे को भोगना हम दोनों के लिए सजा होती और ईश्वर के घर में पाप. मैंने संयम धारण कर लिया."

सुदीप ने हैरानी से पूछा, "यह ईश्वर की बात...ये पाप-पुण्य...यह सब क्या है सात्त्विक?"

"ये सब सच हैं, सुदीप! इंग्लैण्ड जाकर मुझे समझ में आया, अपने घर से भागना, अपने धर्म से पलायन करना कायरता है. उस दिन मैंने अपने माँ-बाबा को फोन करके माफी माँग ली थी. जानते हो, मैंने डिज़ाइन करना क्यों सीखा है?"

"क्यों?" सुदीप ने पूछा.

"मैं अपने बाबा की कपड़े की फैक्टरी स्वयं सँभालने का फैसला करके आया हूँ. आधुनिक तकनीक की मशीन भी अगली बार साथ लेकर आऊँगा."

"वेरी गुड! यह तो बड़ी खबर है. मैं तुम्हारे लिए और तुम्हारे माँ-बाबा के लिए बहुत खुश हूँ." सुदीप ने सात्त्विक को गले लगा लिया. दोनों की ऑख में पानी तैर गया.

धुँधलका और ठण्ड दोनों को और करीब ले आए. हवा के ठण्डे झकोरों में एक-दूसरे की रूह को छूते हुए होटल पहुँचे और खाना खाए बिना सो गए।

लगभग बारह बजे सात्त्विक उठा और उसने एक कलाकृति पर काम करना शुरू किया. उसने ड्राइंग का लम्बा कोर्स किया है. पोर्ट्रेट में विशेषज्ञ है वह, फिर भी, आज पहली बार उसने एक निर्वस्त्र स्त्री का चित्र बनाया.

सुदीप ने नींद-भरी आँखो से देखकर कहा, "तुम कह तो कुछ और रहे थे...यह क्या है?"

"यह कला है, मेरे मित्र! कला में विकृति मत सोचो. कला और साहित्य सदैव पवित्र है. अश्लीलता अपने मन का विकार है. कला में सौन्दर्य ढूँढ़ो. मेरे यार!" तनिक रुककर, दार्शनिक स्वर में सात्त्विक ने कहा, "मेरे लिए यह स्त्री भोग की ठोस वस्तु मात्र नहीं है. वह सौन्दर्य की देवी है. प्रेम की उद्‌बोधक है, अध्यात्म की दिग्दर्शिका भी है..."

"तुम धार्मिक कब से हो गए ! तुम दीया लेकर आरती उतारोगे क्या ? मैं तो सो रहा हूँ." सुदीप ने मुँह मोड़ लिया.

"अध्यात्म का अर्थ धार्मिक हो जाना कतई नहीं है. तुम नहीं समझोगे,

सुदीप! देह आत्मा की अभिव्यक्ति है. आत्मा तक पहुँचने के लिए बाहरी आवरण हटाने होंगे. देह से परे कुछ है, मैं उसे ढूँढ़ रहा हूँ." सात्त्विक ने लयात्मक स्वर में कहा.

"सात्त्विक! यथार्थ में सोचो. देह आत्मा की अभिव्यक्ति है, तो आत्मा तक देह के रास्ते से ही पहुँचना होगा. देह को अड़चन मत मानो." हँसते हुए उठकर बैठ गया सुदीप.

उसने सात्त्विक की कलाकृति को अपने हाथ में लेकर देखा, वह तो देखता ही रह गया. स्त्री की ऐसी कल्पना तो उसने कभी नहीं की. वह मॉडल जैसी आनुपातिक देह का नमूना नहीं है, न ही उसके चेहरे पर अभिनेत्री की तरह कोई नकली भाव-भंगिमा है. वह तो स्त्री है–पूर्ण स्त्री, जिसके अंग-प्रत्यंग से ओज की किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं. सुदीप के कान गर्म हो गए. जुबान जम गई. उसने कलाकृति वापस सात्त्विक को दे दी.

सात्त्विक ने उसे गौर से देखा और अपने खुले सीने पर रख लिया. वह खुली आँखों से उस स्त्री को अपने सामने महसूस कर रहा है. उसने आँखें बन्द कर लीं.

सुदीप ने पूछा, "क्या सोच रहे हो?"

सात्त्विक कुछ भी कहना नहीं चाहता है और अपने मित्र से कुछ छुपाना भी नहीं चाहता है. उसने धीमे स्वर में कहा, "तुम जानना चाहते हो, रागिनी से मेरा दैहिक सम्बन्ध खत्म क्यों हुआ था ?"

सुदीप ने 'हाँ' में सिर हिलाया.

"मैंने राधा के रूप में रागिनी को पाना चाहा. मैंने उसके दिल को जीतने की कोशिश की. उससे समर्पण चाहता था–पूर्ण समर्पण." सात्त्विक ने कहा.

सुदीप चुप रहा.

सात्त्विक ने पुन: कहा, "हम दोनों के बीच यह सम्भव नहीं हुआ. पति-पत्नी के रूप में हम एक-दूसरे के नज़दीक रुटीन में आने लगे–सब कुछ आदतन हो रहा हो जैसे."

"शादी में ऐसा ही होता है, मेरे दोस्त! इसका अर्थ यह नहीं है कि आनन्द मर गया या प्रेम के स्थान पर वासना हावी हो गई. यूँ समझ लो, दाम्पत्य की मर्यादा में परस्पर अधिकार-भाव आ जाने से रोमांस के लिए जगह कम हो जाती है. शादी को जिन्दा रखने की कोशिश ज़रूरी है," सुदीप ने कहा.

"मैं जानता हूँ, सुदीप! मैं शादी के आगे कोई प्रश्नचिह्न खड़ा नहीं कर रहा हूँ... मैं भी शादी को मरने से बचाना चाहता था." सात्त्विक ने जैसे अपने-आपसे कहा हो.

"चलो, ठीक है. वह सब तो बीत गया, अब क्या सोचा है तुमने ?" सुदीप ने दोस्ताना अन्दाज़ में पूछा.

"अब... अब क्या सोचना ? मैं अपने-आपको समय के बहाव में ढाल चुका हूँ. जो जैसा होगा, वह सब स्वीकार है मुझे. मेरा विश्वास है, जो कुछ भी होगा. वह अच्छा ही होगा." सात्त्विक ने नाभि से उठते गुबार को रोकते हुए कहा.

"मैं तुम्हारे लिए मैट्रीमॉनियल दे दूँ क्या ?" सुदीप ने सहज भाव से पूछा.

"नहीं, कभी नहीं. मैंने तुमसे कब कहा कि मैं शादी करना चाहता हूँ." नाराज़गी से भरी आवाज़ से कमरा गूँज गया.

"मैं तुम्हारा दोस्त हूँ. तुम्हारा भला सोच रहा हूँ. मैं नहीं चाहता हूँ कि तुम एकाकी जीवन की सजा जिओ." सुदीप ने सात्त्विक के कंधे पर हाथ रखा.

सात्त्विक ने लम्बी साँसें भरीं और सथासम्भव प्यार से कहा, "सॉरी, सुदीप! मैं अब ऐसे शादी नहीं कर सकता हूँ."

"रागिनी ने भी तो शादी की है." सुदीप ने कहा.

"तुम क्या समझते हो, मैं रागिनी की नकल करके शादी कर लूँ या रागिनी से बदला लेने के लिए शादी कर लूँ ?"

"रागिनी की बात जुदा है. उसके मन में सिद्धान्त के लिए प्यार जागा. वह सिद्धान्त क़ी राधा बन गई." सात्त्विक ने छत की ओर देखते हुए कहा.

"प्यार तो वह तुमसे करती थी. तुम्हें खोजने के लिए पहाड़-पहाड़ ढूँढ़ा था उसने. मीलों पैदल चली थी." सुदीप ने याद दिलाया.

"मैंने कभी नहीं कहा कि उसने मुझे प्यार नहीं किया. उसका प्यार मेरे प्यार का प्रत्युत्तर था. मुझे मालूम है, मुझसे पहले वह बसन्त को चाहती थी."

"क्याऽ? यह तो मेरे लिए नया समाचार है." सुदीप ने हैरानी से कहा.

सात्त्विक के चेहरे का भाव नहीं बदला. उसने स्वाभाविक रूप से कहा, "कई बार मुझे लगता है कि मैं तो रागिनी के जीवन में बसन्त के द्वारा छोड़ी गई खाली जगह भरने के लिए आया." सुदीप उसे हैरानी से देखता रह गया.

वह इस बात पर भी हैरान है कि उसके अभिन्न मित्र बसन्त ने उसे कभी रागिनी के विषय में क्यों नहीं बताया.

सात्त्विक ने उसके मन के भाव को पढ़ते हुए कहा, "रागिनी का बसन्त के प्रति लगाव इकतरफा था. बसन्त ने रागिनी को दोस्त से ज्यादा कभी कुछ नहीं समझा. शायद इसीलिए उसने कभी रागिनी के विषय में तुम्हें कुछ नहीं बताया."

"मैं रागिनी के खेल को समझने में असमर्थ हूँ." सुदीप ने अपनी हथेली पर नज़र टिकाकर कहा.

"तुम गलत समझ रहे हो. मैं रागिनी को गलत सिद्ध करने के लिए यह सब नहीं कह रहा हूँ. रागिनी एक भावुक लडकी हैं और अच्छी इन्सान है. यह उसका सौभाग्य है कि उसे सिद्धान्त का प्यार मिला. रागिनी तो सिद्धान्त के प्रति अपने मन में जागे प्यार को नकारने की मूर्खता कर रही है."

सात्त्विक ने सुदीप की ओर देखा और पुन: कहा, "तापस का आना दैविक संयोग है. सिद्धान्त को उसने प्यार किया था. मैंने उसे सिद्धान्त के लिए सँवरते हुए देखा है और जब वह सिद्धान्त से अपनी मर्जी से दूर रह रही थी, उस समय भी मैंने उसके रोम-रोम से सिद्धान्त के लिए उठती पुकार को सुना है."

सुदीप हैरानी से देख रहा है. उसने पूछा, "सात्त्विक! मेरे दोस्त! यह सब मेरी स्वतन्त्रता के संकेत थे. मुझे रागिनी का सिद्धान्त के प्यार में डूबना अच्छा लग रहा था." सात्त्विक ने निश्छल भाव से कहा.

सुदीप ने अविश्वास-भाव से सात्त्विक को देखा. वह तो नहीं कह सकता है कि तुम झूठ बोल रहे हो. साथ ही, वह यह भी स्वीकार नहीं कर सका कि इस धरा पर कोई पुरुष, वह भी पति के अधिकार से युक्त पुरुष के लिए पत्नी का विवाहेतर सम्बन्ध आनन्ददायी हो सकता है. सुदीप ने ऑख बन्द करके अपने-आपको आईने में उतारने की कोशिश की, क्या वह कभी ऐसा सोच सकता हैं...? नहीं, बिल्कुल नहीं. उसने पलटकर सात्त्विक से पूछा, "क्या तुम किसी और से प्यार करते हो...?"

सात्त्विक गहरी विचार-मुद्रा में डूबकर बोला, "सुदीप! तुम मेरे दोस्त हो. तुमसे झूठ नहीं बोल सकता हूँ. मैं प्यार का अर्थ खोज रहा हूँ. शिद्दत से किसी के लिए प्यार महसूस करना सुखदायी है. फिर भी, उसको हासिल करना लक्ष्य नहीं है. पहले लड़की को छूने मात्र को प्यार समझते थे हम, अब मैं जानता हूँ कि महज छूना या दैहिक रूप से स्त्री को पा लेना प्यार की इतिश्री नहीं है."

"स्पर्श प्यार की अभिव्यक्ति है, प्यार की सार्थकता है, सात्त्विक! हम जड़ नहीं हैं. मनुष्य का मनुष्य से जुड़ना सर्वथा स्वाभाविक है. हम स्त्री-पुरुष के दैहिक सम्बन्ध को नकार नहीं सकते हैं. मेरा-तुम्हारा अस्तित्व उसी प्रक्रिया से बना है." सुदीप विजेता की मुस्कान से खिल उठा.

सात्त्विक ने गौर से देखा, "सुदीप! दैहिक सम्बन्ध प्यार का पर्याय नहीं है. मेरा मानना है, जीवात्मा की पिपासा परमात्मा से जुड़ाव के लिए है. उसी की चाह में वह बार-बार अन्य जीवात्मा के साथ जुड़ाव ढूँढ़ता है. और ये ढूँढ़ तब तक चलती रहती है, जब तक शत-प्रतिशत सामंजस्य स्थापित न हो.

उसमे देह हो या न हो, कोई फर्क नहीं पड़ता."

"तुम्हारी बातें मेरी समझ से परे हैं. सृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त को नकारकर तुम क्या सिद्ध करना चाहते हो, मैं नहीं जानता. मुझे इतना मालूम है कि फूल से लेकर पशु-पक्षी या मानव–सभी इस सृजन-सत्य से अछूते नहीं हैं...तुम भी नहीं." सुदीप ने दृढ़तापूर्वक कहा.

"मैंने कब दावा किया है कि मैं किसी से भिन्न हूँ ? मैं तो मानता हूँ कि मैंने अपने जीवन में कई लड़कियों के साथ दोस्ती की है. अब मैं बदल गया हूँ. समय के साथ परिवर्तन भी तो प्रकृति का नियम है," सात्त्विक ने साधारण लहजे में कहा.

"तुम ठीक कह रहे हो, परिवर्तन विकास का आधार है. सात्त्विक! तुम मानवीय विकास-गाथा की सम्भावना की तलाश कर रहे हो. करते रहो... हम तुम्हारे शोध की परिणति जानने को उत्सुक रहेंगे." सुदीप के स्वर में व्यंग्य छुपाने पर भी छुप न सका.

सात्त्विक ने विश्वास के साथ कहा, "इस निष्कर्ष में तुम सबसे पहले साझीदार रहोगे. मैं अपनी राधा ढूँढ़ रहा हूँ, जो मुझे सिर्फ मेरे प्यार का प्रत्युत्तर मात्र न दे, अपितु स्वयं भी मुझे पूरे मन से प्यार करे. मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ. मुझे दृढ विश्वास है, कहीं-न-कहीं कोई जरूर है, जो मुझसे मन-प्राण से जुड़ सके. हमारे मिलन का लक्ष्य सिर्फ ऐन्द्रिक-आनन्द भी नहीं हो. हम दोनों साथ होना चाहते हों. पूरे मन से साथ होने की दोनों ओर की चाह पर विश्वास होते ही मैं निर्भय होकर हाथ थाम लूँगा..."

वाक्य पूरा करते ही सात्त्विक कमरे का पिछला दरवाजा खोलकर बरामदे में आ गया और चाँदनी रात में चमकते पेड़ों की चितकबरी छाया में रोशनी ढूँढ़ते हुए चलने लगा. सुदीप ने पर्दे की ओट से उसे देखा और चाय बनाने के लिए इलेक्ट्रिक कैटल का स्विच दबाया.

घड़ी की ओर देखते हुए उसने सात्त्विक से पूछा, "तुम चाय पियोगे क्या?"

सात्त्विक ने मुड़कर देखा और इनकार की मुद्रा में सिर हिला दिया. सुदीप ने अपने लिए चाय बनाई और बाहर बरामदे में कुर्सी पर आकर बैठ गया.

सात्त्विक बच्चों की तरह उचक-उचककर चल रहा है. उसे देखकर सुदीप को हँसी आई और न जाने क्यों सात्त्विक उसे अपने कद से बड़ा नज़र आया.

सुदीप ने अपने जीवन में सदियों से खींची रेखाओं पर चलने के सिवाय न कभी कुछ सोचा, न किया. वह जानता है कि वह सात्त्विक से एकदम अलग किस्म का है. आज उसने जाना, बसन्त भी उससे भिन्न प्रकृति का था. अचानक उसके मन में भाव उठा, 'बसन्त की रागिनी के प्रति आसक्ति थी क्या...?'

उन्तालीस

लौटते समय सात्त्विक और सुदीप में नया रिश्ता कायम हो चुका है. सुदीप के मन से शक के सभी पाप साफ हो गए हैं. अब सात्त्विक का सुकर्मा से मिलना कोई खतरे की घंटी नहीं है. सुदीप का अनुमान है कि रागिनी से मिले घाव को ढँकने के लिए सात्त्विक ने अनाप-शनाप विचार ओढ़ लिए हैं. वह सामान्य नहीं है.

मन-ही-मन सुदीप यह भी चाह रहा है कि सात्त्विक को इस असामान्य स्थिति से बाहर लाने का दायित्व उसी का है. यह कैसे सम्भव होगा ? इसके लिए कोई रास्ता ढूँढ़ना होगा. उसने पहुँचते ही सुकर्मा से कहा, "मुझे तुमसे बहुत ज़रूरी बात करनी है."

"जी कहें..." सुकर्मा ने उत्सुकता से कहा.

"अभी नहीं, बाद में..." सुकर्मा डर गई. ऐसी क्या बात है, जिसके लिए पहले से चेतावनी देनी पड़े!

सात्त्विक ने वत्सला के बारे में अच्छी-अच्छी बातें कहीं. सुकर्मा को अच्छा लगा. वह दिलो-जान से उसके सत्कार में जुट गई. तीनों ने छत पर बैठकर खाना खाया. सुकर्मा ने मसूरी की बत्तियों को देर तक निहारा और अपने पुराने दिनों की बातें याद कीं.

रह-रहकर एक ही बात उभरती है सीने में, "काश ! बसन्त इस समय हमारे साथ होता!' सात्त्विक भी अपने तरीके से बसन्त को याद करता है. उसने बसन्त का दायित्व अपने कंधों पर अनजाने में ही ले लिया है. सौरभ की देखभाल ठीक से हो, इसके लिए वह जसवन्ती को भी निर्देश देने में संकोच नहीं कर रहा है. उसके आने से नई रौनक तो आ ही गई है.

खाना खाने के बाद सात्त्विक और सुदीप ने टहलने के लिए बाहर जाने की तैयारी में कोट पहना. सात्त्विक ने अपने कोट की जेब में मुलायम सुख महसूस किया. उसने सुकर्मा को आवाज़ दी, "इधर आओ तो जरा..."

सुकर्मा आज्ञाकारी बच्चे की तरह पास आकर खड़ी हो गई. सात्त्विक ने

उसके पीछे जाकर तनिक घुटने मोड़े और उसके सिर पर स्कार्फ बाँध दिया. सुदीप ने मुस्कराकर कहा, "अच्छी लग रही हो."

"मैंने स्वयं बनाया है..." सात्त्विक ने तनिक गर्व से कहा.

सुकर्मा और सुदीप दोनों ने एक स्वर में कहा, "धन्यवाद."

सुकर्मा ने सिर से स्कार्फ को उतारकर ध्यान से देखा और तारीफ में कहा, "बहुत अच्छा बना है."

सुदीप ने टिप्पणी की, "रंग-योजना बहुत अच्छी है."

सात्त्विक अपनी धुन में बाहर चला गया. उसके मन में गीत के बोल घुमड़ रहें हैं. उसकी चाल की लय में कहीं आनन्द की झंकार है.

वह सुदीप की समझ से बाहर होता जा रहा है. वापस आकर सुदीप ने जल्दी-जल्दी अपनी कॉफी खत्म की. वह सात्त्विक और सुकर्मा को कॉफी पीते हुए छोड़कर अपने घर चला गया.

उसे सात्त्विक ने एक बार पुन: आश्वस्त किया, "होटल पास ही है. मैं पैदल चला जाऊँगा, तुम फिक्र मत करो."

सुकर्मा के मन में बेचैनी है. वह चाहती है, सात्त्विक जाए, तो वह तुरन्त फोन करके सुदीप से पूछे कि ऐसी क्या बात है, जो वह कहना चाहता है और बिनकहे चला गया है.

सात्त्विक को सुकर्मा की विकलता में अजीब-सा मज़ा आ रहा है. वह कनखियों से उसे देख रहा है, 'यह लड़की पहेली है. अपना ओर-छोर ही नहीं देती है.'

सुकर्मा ने पूछा, "ठण्ड लग रही हो तो कोयले जला लूँ?"

"अरे, हाँ, आग का मज़ा कुछ अलग ही होता है. जलाओ न." सुकर्मा पछता रही है कि उसने आग के लिए क्यों पूछा. फिर भी, सात्त्विक का वहाँ होना और आग जलाना अच्छा लग रहा है. वह पुरानी फिल्म का गीत गुनगुनाते हुए कोयलों में से धुआँ निकलते हुए देख रही है. उसे अपनी कनपटी से ऊपर गर्म हवा का एहसास हुआ. उसने मुड़कर देखा, सात्त्विक पास आकर खड़ा है. वह अंगीठी उठाने के लिए झुके, उससे पहले ही सात्त्विक ने अंगीठी लेकर कहा, "पर्दा हटाएँगी क्या...?"

दोनों आग के सुनहरे रंग में अपने-अपने अतीत में तपते रहे. कहीं से किसी दैवी शक्ति ने उन्हें वर्तमान में खींचने के लिए बिल्ली को भेज दिया. सात्त्विक ने आँख से उधर इशारा करते हुए कहा, "म्याऊँ-म्याऊँ!"

सुकर्मा ने बिल्ली को भगाने के लिए उठना चाहा, तो उसकी साड़ी का कोना सात्त्विक की कुर्सी में अटक गया. दोनों के हाथ एक-दूसरे के स्पर्श

से झंकृत हो गए. सात्त्विक सामान्य रूप से थियेटर की बातें कहानी की तरह सुनाता रहा. सुकर्मा के नेत्र उत्सुकता बिखेरते रहे. घडी ने ग्यारह बजे के घंटे बजाए. सात्त्विक एक झटके में उठा और औपचारिक विदा लिए बिना चला गया.

इंग्लैण्ड के थियेटर की बातें सुकर्मा के लिए एकदम नई हैं. वह श्रोता बनकर सुनती रही और अब कल्पना करने की कोशिश कर रही है, 'कैसा होगा वह देश... ठण्डा और उदास या मनोरंजन से भरपूर शामों वाला ?'

एक और सवाल बार-बार साँप के फन की तरह सिर उठाए खड़ा है, 'सुदीप क्या बात करना चाहता है...?'

चालीस

कई साल बाद सुकर्मा ने काजल लगाया है. उसे खुद को अजीब लग रहा है. घर से निकलने से पहले दो बार आईने में खुद को देखा. गेट तक पहुँच कर वापस आ गई. फर्स्ट एड वाली अलमारी से रुई निकाली. वह रुई के गीले फाहे से आँखें पोंछ रही थी कि सुदीप ने कमरे में प्रवेश करते ही घबराकर पूछा, "क्या हुआ है आँख में...?"

"कुछ नहीं, रात को काजल लगाया था, पूरा साफ नहीं हुआ था..." सुकर्मा ने चतुराई से कहा, जैसे कि रोज़ रात को काजल लगाती हो.

"तो क्या हुआ? रहने दो. दुनिया-भर की स्त्रियाँ काजल लगाती हैं." सुदीप ने कहा.

"नहीं, मैं विधवा हूँ, मेरे लिए नियम अलग हैं." सुकर्मा की बात सुदीप के सीने में नश्तर-सी लगी.

उसने एक कदम पीछे हटते हुए कहा, "क्या...? यह क्या कहा तुमने...? हमसे कहाँ भूल हुई, मैं नहीं जानता. सुकर्मा! परमात्मा साक्षी है. हमने कभी तुम्हारे साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं किया है. हमने तुम्हें विधवा के रूप में नहीं, अपितु बसन्त की पत्नी के रूप में देखा है. यहाँ तक कि ताऊजी ने भी तुम्हें सदा बराबर सम्मान दिया है. तुमने यह विधवा होने की बात कब कैसे मन में बाँध ली?"

सुकर्मा को अपनी गलती का एहसास हुआ. रोते हुए उसने कहा, "मुझे माफ कर दें. कहीं बचपन से मन में बैठी बात ने सिर उठा लिया है. दरअसल हमारी बुआ को बहुत नियम मानने की ताकीद थी."

सुदीप ने तनिक आवेश में कहा, "किस गुजरे जमाने की बात करती हैं आप? हर दिन दुनिया बदल रही है. हम इक्कीसवीं सदी की सुखद कल्पना पिरो रहे हैं और तुम गत शताब्दी के बेनाम कायदे-कानून की रट लगाकर गोल दायरे में घूम रही हो... सुकर्मा! मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी."

सुदीप सिर पकड़कर बैठ गया. सुकर्मा उसके पैरों के पास जमीन पर

बैठ गई, "गलती हो गई. पुरानी बातों के झमेले ने आपका दिल दुखा दिया.. माफ कर दें. मैं तो ठीक से रहती हूँ."

सुदीप चुप रहा कुछ देर तक. वह तो ज़रूरी बात करने के लिए सुबह के समय आया था. यहाँ सब मामला ही पलट गया. जसवन्ती चाय की ट्रे लेकर खड़ी है. सुकर्मा ने चीनी मिलाकर चाय सुदीप की ओर बढ़ाई. सुदीप ने सुकर्मा की ओर तीखी नज़र डालनी चाही. सुकर्मा की आँख मिलते ही भाव खुद-ब-खुद मुलायम हो गया. सुकर्मा ने मुस्कराकर कहा, "कान पकडकर माफी माँग लूँ...?"

सुदीप की मुस्कान ने माफी का फरमान जारी कर दिया. सुकर्मा को ऑफिस छोड़कर सुदीप होटल की ओर चला गया.

सात्त्विक बिस्तर में लेटकर अखबार के पन्ने पलट रहा है. सुदीप को देखकर खिल गया वह. आदमी को दोस्त की हमेशा ही ज़रूरत होती है. चहककर कहा उसने, "वाह ! क्या बात है? आज तो आपने हमारा दिल जीत लिया."

"तुम भी कुछ दिल खुश करने की बात करो." सुदीप ने कहा.

सात्त्विक ने उठकर सलाम की मुद्रा में कहा, "बन्दा हाजिर है. हुक्म करें, जनाब!"

"चलो, आज सुबह के शो में अंग्रेजी फिल्म देखते हैं: मैन, वुमैन एण्ड चाइल्ड." सुदीप ने प्रस्ताव रखा.

"चलो, ठीक है." सात्त्विक बच्चों की तरह स्फूर्ति से इधर-उधर भागमपेल करने लगा. दस-पन्द्रह मिनट में दोनों होटल से बाहर आ गए. खुली सड़क पर सुबह की आवाजाही का शोर है.

सात्त्विक ने कहा, "आज मोटर साइकिल मैं चलाऊँ ?"

"ज़रूर!" कहकर सुदीप ने उसे जगह दे दी.

सुदीप को अपने भीतर सुकून मिला. उसे लगा, वह सात्त्विक के भीतर पुराना उत्साह देख रहा है. उसके लिए सात्त्विक को वापस मुख्य धारा में लाना एकमात्र लक्ष्य है; हालाँकि फिल्म के दौरान सुकर्मा की बात उसके सीने में टीसती रही.

यह उसकी गलतफहमी है कि सुकर्मा सामान्य जीवन जी रही है. कहीं उसके भीतर एकाकीपन की ही नहीं, वैधव्य की गाँठ भी है. सुदीप के मन में तीव्र इच्छा ने जन्म लिया कि सुकर्मा शादी के लिए 'हाँ' कह दे, तो सात्त्विक को तो मैं मना लूँगा. उसने वापस लौटते हुए बसन्त के पिताजी को फोन किया कि वह एक सप्ताह के लिए देहरादून आ जाएँ. सुदीप उनकी

बात सुनकर हैरान हुआ कि वह भी सात्त्विक से मिलने के लिए आने की बात सोच रहे थे.

कुन्ती दी ने देखा, दोनों दोस्त आज काफी खुश नज़र आ रहे हैं. दोनों फिल्म की तार-तार व्याख्या में जुटे हैं. सात्त्विक की टिप्पणी से सुदीप सन्नाटा खा गया, "जब दूसरे लोग सोचकर या योजना बनाकर चालाकी से शादी करवाते हैं, तो शादी का टूटना अवश्यम्भावी समझ लेना चाहिए."

सुदीप की सारी योजना पर पानी फिर गया. पिताजी उम्मीद की गठरी सिर पर लेकर पधारे. उन्हें तो इन आधुनिक लड़कों की कोई बात समझ में ही नहीं आई. शादी-ब्याह के मायने इतने बदल गए हैं, उन्होंने पहली बार जाना. घर में यह सब घटित होता रहा और अनजान सुकर्मा अपनी दुनिया में हिसाब-किताब करती रही. घर-ऑफिस-बच्चे और मेहमान काफी तो हैं उसे व्यस्त रखने के लिए.

सात्त्विक ने अपने मन की थाह किसी को नहीं दी. सुदीप के लाख चाहने पर भी वह अपने विचार बदलने को तैयार नहीं है. तर्क के बहुत लम्बा खींचने पर भी उसकी ओर से तीन लफ़्ज़ का उत्तर मिलता है, "मैं अपनी राधा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ..."

सुदीप नहीं जानता है कि सात्त्विक का अभिप्राय: क्या है. कुन्ती का अनुमान है, "ज़रूर सात्त्विक के जीवन में कोई लड़की है, जो सात्त्विक के साथ रहने के लिए अभी तैयार नहीं है. सम्भवत: उसी की प्रतीक्षा कर रहा होगा सात्त्विक...क्या मालूम वह शादीशुदा हो !"

सुदीप और कुन्ती दी नहीं जानते हैं कि उसके लिए राधा की ढूँढ कैसे की जाए.

कई बार पूछने पर भी सुदीप ने सुकर्मा को नहीं बताया कि उस दिन वह सुकर्मा से क्या बात करना चाहता था. हर बार इस सवाल के आने पर वह कभी राजनीति की बात करता, कभी क्रिकेट की और कभी वत्सला या सौरभ की. लाख चाहने पर भी वह इतनी हिम्मत नहीं जुटा सका कि सुकर्मा को बता सके कि वे सब सुकर्मा से पूछे बिना उसकी शादी की योजना बना रहे हैं. उसे सुकर्मा की प्रतिक्रिया का पुर्वानुमान है और वह नहीं चाहता है कि ऐसी किसी बात के लिए उनके आपसी सम्बन्ध बिगड़ें, जिसके घटित होने की कोई सम्भावना ही शेष नहीं है.

वह जानता है, सुकर्मा के लिए बसन्त का स्थानापन्न कोई अन्य नहीं हो सकता है. उसने कई बार चुपके से उसकी जासूसी की है. उसके दफ्तर में भी उसकी चारित्रिक सुदृढ़ता की चर्चाएँ हैं.

उसके सहकर्मी तो उससे भयभीत रहते हैं. कई बार उसे लगता है, जैसे कि सुकर्मा ने अपने चारों ओर काँटों की बाड़ उगा ली हो. उसने खुद भी तो उन काँटो की चुभन को गाहे-बगाहे महसूस किया है. कुन्ती दी ने भी कई बार शिकायत-भरे स्वर में कहा है, "सुकर्मा भाभी अपने आपको न जाने क्या समझती हैं. कुछ भी पूछो, तो टाल देती हैं, जैसे कि हम उनके कुछ लगते ही नहीं हैं."

सुदीप ने ही कुन्ती दी को समझाया है, "सुकर्मा ने अपने दु:खों के ऊपर मोटी चादर डाल दी है. उसके जख्मों को कुरेदने का किसी को कोई हक नहीं है, हमें भी नहीं."

सुदीप जानता है, गत वर्ष बसन्त की माँ की मृत्यु के समय सुकर्मा हिचकियाँ भर-भरकर रोती रही. किसी के स्पर्श को उसने उस वक्त भी स्वीकार नहीं किया. कुन्ती की माँ ने उसे गले लगाने की कोशिश की, तो वह क्षणभर शिलावत् खड़ी रही और फिर मुड़कर व्यवस्थाओं में व्यस्त हो गई.

उसने कई बार गौर किया है कि वह वत्सला और सौरभ-संजना के अतिरिक्त सिर्फ तापस को प्यार करने का उपक्रम करती है. अन्य बच्चों को देने के लिए उसके पास टॉफी का डिब्बा भरा रहता है. वह किसी को अपने बहुत नजदीक आने ही नहीं देती.

सुदीप कई बार सोचता है, बात-बात पर बसन्त की गलबहियाँ करती सुकर्मा कहाँ खो गई है...? वह नहीं जानता कि फर्ज की चक्की में दिन-रात पिसती सुकर्मा अपने भीतर की चाह को चूर्ण कर चुकी है. उसके लिए जीवन का अर्थ है कर्तव्य, और केवल कर्तव्य.

सात्त्विक के जाने के बाद जिन्दगी पुराने ढर्रे पर आ गई. रात-दिन की आवृत्तियों में बरसों की गिनती करने की फुर्सत किसके पास है? किताब के पन्नों की तरह साल के बाद साल गुजरते रहे... ।

इकतालीस

अपने निश्चय के अनुसार सात्त्विक भारत वापस आ गया. आरम्भिक मुश्किलों के बाद उसने अपने बाबा को फैक्टरी में बदलाव लाने के लिए तैयार कर लिया. धीरे-धीरे उसकी मेहनत रंग लाई. देखते-देखते सभी ओर से आवाजें सुनाई देने लगीं, 'सात्त्विक ने अपने बाबा की फैक्टरी को जी-जान से सँभाल लिया है.'

फैक्टरी में उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ मजदूरों के स्वास्थ्य-सुधार से माहौल खुशनुमा हो गया. कभी-कभी बाबा भी फैक्टरी में आयोजित रंगारंग संध्या का आनन्द लेने में हिचकिचाते नहीं हैं. सात्त्विक ने इंग्लैण्ड की तर्ज़ पर यहाँ मजदूरों के कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की योजना निजी तौर पर शुरू की है. धीरे-धीरे कपड़े की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों को बेहतर होते देखकर सभी को सात्त्विक के सामने झुकना पड़ा.

अपने काम के क्षेत्र में, सात्त्विक को कोई मात नहीं दे सकता है. उसकी अनुपम सुरुचि और अथक श्रम के संयोग से उसका व्यक्तित्व अद्वितीय हो गया है और फैक्टरी का स्वरूप अनुकरणीय.

काम सारे दुखों की काट है. सात्त्विक के जीवन में उदासी के क्षण बचे न हों, ऐसा तो नहीं है. फर्क यह है कि काम के दबाव में उदासी को महसूस करने का वक्त बाकी नहीं है. सुबह से साँझ ढले तक, एक के बाद एक काम की शृंखला उसे और कुछ करने की इजाज़त नहीं देती है. कभी कच्चे माल के पहुँचने की चिन्ता, कभी फैक्टरी के माल की गुणवत्ता का खयाल, कभी तैयार माल को भेजने की व्यवस्था और कभी प्राप्त भुगतान की जाँच–सभी मामलों में सात्त्विक निरीक्षक की भूमिका स्वयं निभाता है.

उसकी निजी सचिव सुरेखा उसकी गति के साथ चलने में प्राय: अपने आपको असमर्थ पाती है. सात्त्विक ने उसके लिए मल्टी विटामिन का डिब्बा लाकर ऑफिस में रख दिया है. आते-जाते वह उसे ताकीद देता है, 'सन्तुलित

भोजन खाओ, स्वस्थ रहो, तभी डटकर काम कर सकोगी.'

सुरेखा सिर झुकाकर 'जी' कह देती है. वह सात्त्विक से कैसे कहे, 'मुझे अपने फिगर की चिन्ता स्वास्थ्य से अधिक है ?'

सात्त्विक सुरेखा को स्वस्थ रहने की सीख देता है, उसका अपना स्वास्थ्य निरन्तर गिर रहा है. विशेष रूप से, बाबा के बड़ौदा जाने के बाद अकेले में वह प्राय: बिना खाए ऑफिस आ जाता है या साँझ ढले ठण्डे दूध का गिलास पीकर सो जाता है.

आजकल उसे अपनी माँ की बहुत याद आती है. कई बार उनकी मृत्यु के लिए वह अपने-आपको दोषी समझता है. आधी रात को उठकर उनकी तस्वीर के सामने खड़े होकर न जाने क्या सोचता है? अक्सर वहीं बैठकर उनकी किताबों को झाड़ता-पोंछता है और पढता है. लोग सच ही कहते हैं, 'अकेलापन आत्मबोध का एकमात्र रास्ता है.' सोचते-सोचते कब सवेरा हो जाता है, उसे मालूम नहीं होता.

सुरेखा सात्त्विक में होते हुए परिवर्तनों को पढ़ रही है. उसने कहा, "सुकर्माजी के दो खत अनुत्तरित हैं. आप डिक्टेशन दे दें, मैं भेज दूँगी."

सात्त्विक ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया. वह खुद भी स्वीकार नहीं करना चाहता है कि खत लिखने की इच्छा होने पर भी वह सुकर्मा को खत लिखने में असमर्थ महसूस कर रहा है. इस कमी की भरपाई करने के लिए वह लगभग हर रोज़ सुदीप को फोन करता है. सप्ताह में कम-से-कम दो बार सुकर्मा से भी फोन पर बात हो जाती है. वह अपने बनाए हुए डिज़ाइन का पहला नमूना सुकर्मा को भेजना कभी नहीं भूलता.

पिछले सात सालों में आए नमूनों के कपडों से, सुकर्मा के घर पर सात्त्विक के ड़िजाइन का कब्जा हो गया है. जिधर देखो, उधर सात्त्विक की कलाकृति दिखाई देती है. सात्त्विक के कमरे में कला के नाम पर वह स्त्री दीवार पर सजी है, जिसकी संरचना उसने मसूरी के होटल में आधी रात को की थी.

ऐसा नहीं है कि वह नहीं जानता है कि यह चित्र किस स्त्री की प्रेरणा से उकेरा गया है. वह उस स्त्री को एक पावन भाव के रूप में अपने मन में सँजोकर रखना चाहता है. उसे भय है कि स्थूल होते ही उसे नश्वरता का ग्रहण लग जाएगा.

यह रिश्ता उसके लिए इतना मीठा और महत्त्वपूर्ण है कि वह दुनिया की संकीर्ण बातों से उसे मलिन नहीं होने देना चाहता है.

'सुबह-शाम उसके खयाल में डूबने का सुख कम है क्या...!' उसने

हमेशा यही सोचा और उस अनाम रिश्ते को नाम देने की बात कभी नहीं सोची.

इतने बड़े घर में अकेला वह! कई बार पिछली खिड़की से समुद्र से बात करता रहता है. मानसून में समुद्र की लहरों का उसके घर तक आ जाना उसके लिए सुखकर है. इतनी बड़ी दुनिया से अपने आपको काटकर जीने वाले इन्सान के घर बिन बुलाए आने का दु:साहस लहरें ही कर सकती हैं. उद्दाम लहरें तन के साथ उसके मन को भी भिगो गईं. उसने सुदीप को फोन किया, "तुम लोग अबके बरस यहाँ की मानसून का आनन्द लेने बम्बई आ जाओ, मुझे अच्छा लगेगा."

सुदीप ने छोटा-सा उत्तर दिया, "कुन्ती से पूछकर देखता हूँ."

सात्त्विक कहना चाहता है, "सुकर्मा से भी पूछ लेना." उससे पहले ही सुदीप ने फोन रख दिया.

सात्त्विक ने सुकर्मा को फोन मिलाया. वत्सला का मीठा स्वर सुनकर उसने उत्साहपूर्वक कहा, "अभी-अभी मैंने सुदीप को बम्बई आने के लिए कहा है. तुम यह निश्चित कर लो कि तुम्हारी माँ भी तुम्हारे साथ बम्बई आ रही है."

वत्सला ने चहककर माँ को बुलाया, "हम सब बम्बई जा रहे हैं."

"हम सब कौन...?" सुकर्मा ने पूछा.

"अरे और कौन...? हमारा परिवार... आप और मैं, सुदीप अंकल और कुन्ती बुआ..." वत्सला ने कहा.

सात्त्विक ने दूसरे छोर से स्वर मिलाया, "संजना और सौरभ भी."

सुदीप और कुन्ती दी के साथ सुकर्मा, विशेष रूप से बच्चों के आने पर सात्त्विक को सहारा मिला. बच्चों की जिद के सामने उसकी एक नहीं चलती. आजकल रोज़ सुबह सुरेखा को घर बुलाकर निर्देश देने के बाद सात्त्विक बम्बई-दर्शन के लिए सबके साथ बाहर जा रहा है.

वह खुद हैरान है कि बम्बई कितना बदल गया है. वे पिकनिक स्थल, जहाँ वह रागिनी के साथ आता था, नया रूप ले चुके हैं. देखते-ही-देखते पाँच दिन बीत गए और सात्त्विक उन सबको राजधानी में बिठाकर अकेला घर लौट आया.

सच ही तो है, सब कुछ अस्थायी है आखिर, निरन्तर परिवर्तनशील. उसने अपने-आपको आईने में देखा. माथे में उभरती लकीरों को पढ़ा. हथेली उठाकर मुँह पर आती धूप को पीछे धकेलते हुए अपने-आपसे कहा, 'रहना तो हरेक मनुष्य को अकेले ही है.'

कई बार सात्त्विक सोचता है, 'इनसान का यह भ्रम है कि कोई किसी

का साथी है. सच्चाई यह है कि हरेक व्यक्ति अकेला है, निहायत असहाय और भरे समुद्र में पानी के लिए तरसनेवाली मछली की मानिन्द चिर विकल...'

कल उसने पानी के भीतर छाता लेकर खड़ी हुई मछली का चित्र बनाया और विसंगति पर अकेले में खूब हँसा. यह जीवन विसंगति का दूसरा नाम है.

सब कुछ होने पर भी उसी से बचता है इनसान, जो उसका जीवन है, जीवन का आधार है.

इन दिनों सात्त्विक का मन खाने से ऊब गया है. सुरेखा ने मैनेजर से शिकायत की, "सात्त्विक दिन का भोजन भी ठीक तरह से नहीं ले रहे हैं." अचानक सात्त्विक ने देखा, अपने लिए कम-से-कम परवाह करनेवाले सात्त्विक के लिए स्वास्थ्य अहम् मुद्दा बनता जा रहा है. बाबा के जाने के बाद, हरेक व्यक्ति उसे सेहत का खयाल रखने के लिए लम्बा भाषण सुना देता है. आखिर उसने अपने साथ एक विद्यार्थी रख लिया, जो उसके लिए घर पर व्यक्तिगत सचिव एवं सहायक की तरह काम करता है.

चन्द दिनों में ही कानाफूसी होने लगी. सात्त्विक के अकेले रहने और रागिनी के साथ दैहिक सम्बन्ध समाप्त करने के कारण का अनुमान लगानेवालों को उत्तर मिल गया. ज़रूर सात्त्विक में विदेश की कोई खोट आ गई है. जवान आदमी पत्नी के बगैर रहे, तो शक की सुई घूम-फिरकर असामान्य आदत की ओर मुड़ जाती है. सात्त्विक ने सफाई देने की जरूरत नही समझी.

सुदीप ने सात्त्विक से सीधा सवाल किया, "लडका क्यों रख लिया है ?"

सात्त्विक ने हँसकर कहा, "लडकी रख लूँ क्या...? दुनिया तो किसी भी तरह जीने नहीं देती है. वह भलामानुष मेरे लिए खाना बनाता है, घर-द्वार सँभालता है, बी.ए. में पढ़ता है. इससे ज्यादा हमारे बीच कुछ नहीं है."

सुदीप ने कहा, "मेरा कोई टेढा मतलब नहीं था. दरअसल मैं आजकल मन से उखड़ा हुआ हूँ. मेरे चाचाजी का बेटा मेघ, याद है न तुम्हें...वह आजकल सुकर्मा के घर रह रहा है. कुछ भी हो, यार, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है." पहली बार सुदीप ने अपने घर की बात कही–वह भी सुकर्मा के संदर्भ में जो सात्त्विक को अच्छी नहीं लगी.

उसने पूर्ण विश्वास से कहा, "मैं सुकर्मा को अच्छी तरह जानता हूँ. तुम भी जानते हो. वह मजबूत औरत है. अपनी राह से डग-मग होना उसने सीखा ही नहीं है. तुम नाहक परेशान हो रहे हो."

सात्त्विक ने सुदीप को तो दो टूक जवाब दे दिया लेकिन सुदीप की बात से उसके मन में कहीं बेचैनी बनी रही. दिन भर फैक्टरी में ऊपर-नीचे टहलता रहा. अकारण ही सुरेखा पर झल्ला गया. रात को नीद नहीं आई, तो उसने

बिना सोचे ही सुकर्मा का नम्बर डायल कर दिया.

फोन पर किसी पुरुष का स्वर सुनकर धक्क-सा लगा. उसने सँभलकर कहा, "सुकर्माजी को फोन देंगे क्या...?"

"जी, मैं मेघ बोल रहा हूँ. आप सात्त्विक जी हैं न ? मैं फोन उन्हें देता हूँ." मेघ ने सोत्साह कहा.

सात्त्विक को आवाज़ में निश्छलता का आभास हुआ. उसने सुकर्मा से हाल-चाल पूछने के बाद कहा, "ये मेघ कौन देश से पधारे हैं? कब तक रहेंगे यहाँ?"

सुकर्मा को हँसी आ गई, "मेघ सुदीप के चाचाजी के बेटे हैं. सौरभ के हॉस्टल जाने के बाद मुझे अकेलापन लगता है, इन्हें भी रहने के लिए जगह की ज़रूरत है, आजकल मेरे साथ रह रहे हैं."

सात्त्विक ने प्यार से कहा, "सो तो ठीक है, सुकर्मा! सुदीप ने जिद की होगी कि मेघ उसके साथ ही रहे. भाई तो सुदीप का ही है न!"

"हाँ, भाई तो उन्हीं का है वह. वहाँ उनकी दोनों बेटियों के शोर-गुल में पढाई में दिक्कत है."

सात्त्विक ने हैरानी से कहा, "सुदीप ने तो बताया था कि मेघ भौतिक विज्ञान में एम.एस-सी. करने के बाद शोध करने के लिए इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पैट्रोलियम आए हैं."

सुकर्मा ने साँस भरकर कहा, "आप ठीक कह रहे हैं. मेघ शोध करने के लिए ही आए थे. मुझसे बात करने के बाद उनको यह विचार ठीक लगा कि उन्हें एक बार आई.ए.एस. परीक्षा में बैठना चाहिए."

सात्त्विक को कोशिश करने पर भी इस विचार-परिवर्तन का कारण समझ में नहीं आया.

सुकर्मा ने कहा, "आप जानते हैं न, आई.ए.एस. के लिए दिन-रात पढ़ना पढ़ता है. यहाँ ऊपर वाला कमरा खाली था. मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है. एक से दो भले!" सुकर्मा ने सरलतापूर्वक कहा.

सात्त्विक को याद आया, गत माह कुन्ती के यहाँ दूसरी बेटी का आगमन हुआ है और उनकी बेटी के नामकरण संस्कार के अगले ही दिन सुकर्मा ने गृह-प्रवेश का यज्ञ किया है. अब सुकर्मा नए घर में रह रही है.

दरअसल सुकर्मा और कुन्ती दी के बीच दरार उसी समय आ गई थी, जब बसन्त के पिताजी ने अपनी ज़मीन कुन्ती दी के पिता को देने की बजाय बेचने का फैसला किया था. भाई होने के नाते वह माने हुए थे कि पूरी जमीन उन्हें मिल जाएगी. वह सुकर्मा को अनाज भेजते रहेंगे. बसन्त के पिता ने तर्क दिया था कि उनकी आँख बन्द होने के बाद सुकर्मा को अपने ठिये की और

भी ज्यादा ज़रूरत होगी.

सुकर्मा ने उन्हें समझा दिया था, "मैं कभी गॉव जाकर खेती का काम अकेले नहीं देख सकूँगी. बेहतर होगा कि जमीन बेचकर देहरादून में घर बनवा लें." पिताजी उसकी बात मान गए. जमीन बेचने के बाद लगभग दो साल वह सुकर्मा के साथ रहे.

इसी साल जनवरी की ठण्ड में उन्हें दिल का दौरा पडा और वह दिवंगत हो गए. निश्चित रूप से, अकेली सुकर्मा के साथ मेघ का रहना सुरक्षा की दृष्टि से भी सही है. सात्त्विक ने सुकर्मा का पक्ष लिया और सुदीप को समझाने की कोशिश की.

सुकर्मा ने भी सुदीप से सीधे बात की. परिवार में जन्मी छोटी गाँठों को जल्दी सुलझा लेने में ही समझदारी है. सुदीप ने सुकर्मा के यहाँ पहले की तरह रोज़ आना फिर से शुरू कर दिया; हालाँकि मन में वह जानता है कि मेघ का सुकर्मा के यहाँ रहना साधारण बात नहीं है. उसे मालूम है कि पहले दिन ही सुकर्मा को देखकर मेघ दीवाना-सा हो गया था. यौवन की दहलीज पर यह आकर्षण सर्वथा स्वाभाविक है.

सुकर्मा ने इस बात को जानते हुए भी मेघ के लिए अपने घर के दरवाज़े खोल दिए हैं, यह बात सुदीप के गले के नीचे नहीं उतर रही है. सुकर्मा की परिपक्व सोच को जानते हुए भी सुदीप ने उसे पूरी तरह समझा नहीं है, इस बात से सुकर्मा शुरू में आहत थी, अब उसे मजा आ रहा है.

उसने जीवन के शतरंज पर गोटियाँ खेलना सीख लिया है. शह दिए बिना दूसरे को मात देना बेईमानी है, तो हुआ करे. दूसरे की असावधानी का फायदा लेना उसके लिए अच्छे खिलाड़ी का हुनर है...।

बयालीस

एक बार जो बात दिल में बैठ जाए, उसे निकालना आसान नहीं है. मेघ का सुकर्मा के प्रति आकर्षण का बीज कच्ची माटी में जम चुका है. सुकर्मा सोचती थी, साथ रहने से यह बात खत्म हो जाएगी. उसका मानना है कि इनसान अप्राप्य के पीछे भागता है. वह नहीं चाहती थी कि मेघ रोज़-रोज़ उसके घर के चक्कर लगाए और वही बेतुकी बात दोहराए, जो उसने पहली साँझ ही स्पष्ट कह दी थी, "आपने मेरे दिल-दिमाग ही नहीं, आत्मा पर भी कब्जा कर लिया है."

सुकर्मा ने सिर को झटका देकर कहा था, "बचपन में ऐसा होता है. तुम अभी बच्चे हो."

घायल शेर की तरह मेघ की आँख में खून उतर आया था. सुकर्मा ने सिर पर हाथ फेरकर उसके माथे को चूमा, "तुम शान्त हो जाओ. मेरे लिए मुसीबत न खड़ी कर देना."

उस मीठे स्पर्श से मेघ ने अजब सुकून पाया था. उसने झुककर सुकर्मा के पैर छूकर कहा, "आप जैसी आकर्षक और समझदार महिला मैंने कोई और नहीं देखी. मैं आपका सम्मान करता हूँ."

सुकर्मा को विश्वास हो गया कि कुशल सवार की तरह उसने मेघ को साध लिया है.

मेघ को पढ़ने में दिक्कत हो रही है, यह जानकर सुकर्मा ने ही प्रस्ताव रखा, "मेघ! तुम ऊपरवाले कमरे में रह सकते हो. किसी गैर को तो मैं किराएदार रख नहीं सकती हूँ."

"किराया कितना लेंगी आप?" मेघ ने चुहल की थी. सुकर्मा की आँख पड़ते ही उसकी जुबान जम गई. कान पकड़कर 'खेद है' की भूमिका में सिर झुका दिया. सुकर्मा ने गर्दन पर हलकी चपत लगा दी. मेघ तो धन्य हो गया.

शाम को, सुदीप और कुन्ती दी के मना करने पर भी वह कपड़े लेकर सुकर्मा के घर पहुँच गया. सुकर्मा ने उसके लिए बिस्तर ठीक किया. सौरभ के कमरे से

टेबल-लैम्प लाकर सजा दिया और कॉफी पीने के लिए उसे नीचे बुलाया.

मेघ हवा में उड़ता हुआ उसके सामने आकर बैठ गया. सुकर्मा ने बिलकुल उसके नज़दीक बैठकर कहा, "यह नहीं भूलना कि तुम यहाँ पढ़ने के लिए आए हो. तुम्हें पूरे मन से पढ़ना है. मौज-मस्ती के लिए पूरा जीवन बाकी है. एक बार प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में चयनित हो जाओ, फिर जो तुम चाहो, वही मिल जाएगा."

मेघ की आँखें उम्मीद से चमकने लगीं.

सुकर्मा को अपनी जीत का एहसास भीतर तक सुख दे रहा है. मेघ उसको सराहना की नज़र से देखता रहा. उसे छूने का दुःसाहस वह नहीं कर सकता है.

दिनों का क्रम तेज़ी से बदलने लगा. मेघ ने रात-दिन एक करके पढ़ाई शुरू की. उसका सिर बाँधकर पढ़ना या टाँगें दीवार पर ऊपर टिकाकर आराम करना सुकर्मा के लिए मनोहारी है.

मेघ के आने के बाद वह वत्सला के प्रति स्नेह की प्रतिमूर्ति बन गई है. उसे बेताबी से इन्तज़ार है कि वत्सला की छुट्टियाँ हों और वह बनारस से घर लौटे. उसने यह भी हिसाब लगा लिया है कि तीन वर्ष में वत्सला का बी. ए. हो जाएगा. तब तक मेघ भी कहीं अधिकारी के रूप में नियुक्त हो जाएगा।

सुकर्मा की दूरदर्शी योजना को उसके सिवा अन्य कोई नहीं जानता है...

सुकर्मा ने फोन पर वत्सला को मेघ के आने की सूचना दे दी. गाहे-बगाहे उसकी तारीफ करना उनकी बातचीत का हिस्सा बन गया. वत्सला के मन में मेघ के बारे में स्वाभाविक उत्सुकता है.

घर पहुँचते ही वत्सला ने देखा कि एक युवक छत पर टहल-टहलकर पढ़ रहा है. सिर पर काला मफलर बँधा है. उसे हँसी आ गई. मेघ ने मुड़कर नीचे झाँका. छोटे कद की साँवली-सी किशोरी शरमाकर अन्दर भाग गई.

मेघ ने दोपहर के खाने के समय जाना कि यह नवागन्तुक किशोरी सुकर्मा की सुपुत्री है. दोनों में कुछ भी समानता नज़र नहीं आ रही है.

मेघ ने सोचा, वह तोल-मोल नाहक कर रहा है. वत्सला सुकर्मा की बेटी है, इतना ही काफी है उसके लिए. झगड़ा या मनमुटाव या दोस्ती, किसी की भी गुंजाइश नहीं है. उसे ढाई माह इस लड़की की उपस्थिति में भी सुकर्मा के साथ रहना है. दिल लगाकर पढ़ना है, इतना ही जानना काफी है.

सुकर्मा ने वत्सला और मेघ का परस्पर परिचय कराने के बाद कहा, "आज प्रदोष है, मेरा उपवास है, तुम दोनों खाना खा लो. मैं थोड़ा सोना चाहती हूँ."

वत्सला को अच्छा नहीं लगा. आज ही तो आई है वह, कितना कुछ है कहने के लिए और माँ सोना चाहती है. ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ.

मेघ अपनी दुनिया में खोया है. आज वह ज्यादा खुश नज़र आ रहा है. सुकर्मा ने खाना अपने हाथ से बनाया है. मटर-पनीर की सब्जी का पूरा डोंगा उसने साफ कर दिया.

वत्सला के लिए मेघ का घर के भीतर बेतकल्लुफ होकर खाना अजीब घटना थी.

मेघ के ऊपर जाने के बाद उसने सौरभ को फोन मिलाया और हँस-हँसकर बताया, कैसे मेघ ने सारा खाना चन्द मिनटों में खत्म कर दिया. सौरभ उससे लगभग पाँच वर्ष छोटा है. दोनों में मैत्री का सम्बन्ध हैं. सौरभ ने कहा, "अगले सप्ताह घर आ रहा हूँ. इस मेघ से शर्त लगाकर खाना खाने में बड़ा मजा आएगा."

वत्सला ने उछलकर कहा, "हाँ, इक्कीस रोटी की शर्त."

सौरभ का जवाब था, "वह भी मक्की की इक्कीस रोटी."

वत्सला की नैसर्गिक हँसी से सारी घाटी गूँज उठी.

सुकर्मा के पेट में अजीब-सी अनुभूति हुई. गर्मी की छुट्टियों में सौरभ-वत्सला और मेघ की तिकड़ी ने सुकर्मा की हँसी लौटा दी. मेघ के साथ सौरभ और वत्सला की पढ़ाई के घंटे बढ़ गए. सौरभ ने मेघ की सलाह से निश्चय किया कि वह इंजीनियर बनेगा. वत्सला ने अपने लिए भारत के प्राच्य इतिहास में शोध की दिशा तय की. नवयुवा तिकड़ी के साथ सुकर्मा अपने-आपको पुनः यौवन की दहलीज पर महसूस कर रही है. उसने भी अंग्रेजी में एम. ए. के लिए पढ़ाई करना शुरू कर दिया.

कुन्ती दी ने इन चारों को देखा तो वह भी अर्थशास्त्र में शोध करने का मन बनाने लगी. सुदीप ने उसे प्रोत्साहित किया और देखते-देखते कुन्ती दी भी किताबों की दुनिया में खुश रहने लगी.

सात्त्विक को यह नया बदलाव बहुत अच्छा महसूस हो रहा है. उसने भी अपने बाबा की फैक्टरी सँभालने के साथ-साथ दुबारा अपनी चार्टर्ड एकाउंटेंसी की पढ़ाई शुरु कर दी. पढ़ाई के सिलसिले में इंग्लैण्ड जाने का क्रम फिर शुरू हो गया. वहाँ उसने निर्यात की नई सम्भावनाएँ भी तलाश कीं.

इंग्लैण्ड और बम्बई के बीच आने-जाने के व्यस्त कार्यक्रम में दून-यात्रा सम्भव न हो सकी. उसने सुकर्मा का नया घर देखा नहीं है. गाहे-बगाहे वह अनुमान लगाता रहता है, 'सुकर्मा का नया घर कैसा होगा, वहाँ से मसूरी की बत्तियाँ दिखाई देती होंगी क्या ?' अपनी कल्पना से उसने सुकर्मा के घर का चित्र भी बनाया है. उस घर के चारों ओर घने पेड़ों में रंग भरते हुए उसने सोचा, 'सुकर्मा के जीवन में हमेशा हरियाली रहे...'

तैंतालीस

गतिमान नदी का ओर-छोर कौन जान सकता है! एक बूँद का सफर इतनी तेजी से दृश्य-परिवर्तन के दौर से गुजरता है कि वह स्वयं भी पूरा लेखा-जोखा रखने में अक्षम है. पल-पल में नये कण को छूती बूँद अपने भीतर क्या-क्या समेटती है, रब जाने! अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए किया गया संघर्ष अबूझा है. कभी सोचो, तो ऐसा प्रतीत होता है कि बूँद की गहराई सागर से भी अधिक है.

सुकर्मा ने अपने दिल में छुपे रहस्यों को रोशनी से बचाने के लिए निरन्तर प्रयास किया है. दु:ख की छाया में डोलते अपने अक्स को अकसर शीशे में उतरने से भी रोकती है वह. बालों को कसकर जूड़े में बाँधना और अनामिका से काज़ल की लकीर लगाने के लिए शीशे की ज़रूरत भी महसूस नहीं होती है.

वत्सला का दिन-भर शीशे के सामने झूमना उसे व्यर्थ समय गँवाने जैसा प्रतीत होता है. उसने कई बार सोचा, उसे टोके और पढ़ने के लिए कहे. कई बार वह इसी आशय से वत्सला के कमरे तक गई और बिन कुछ कहे लौट आई.

नई बेल पर खिलते फूलों को नोंचने का हक उसे नहीं है. नवयौवन की पींग को उछाल देने के लिए उसने कहा, "तुम्हारे बाल कटवा दूँ क्या? आजकल तो कटे बाल का फैशन है."

पीछे से मेघ ने उत्तर दिया, "नहीं, लम्बे बाल अच्छे लगते हैं—आपके जैसे जूड़े में बँधे हुए."

सुकर्मा अपने कमरे में वापस आ गई. इन बातों पर प्रतिक्रिया न करने में ही समझदारी है. वह चाहती है, मेघ-वत्सला के बीच आपसी दोस्ती का रिश्ता पनपे. प्राय: वह जानबूझकर उन दोनों से दूर हो जाती है.

आस-पास की औरतों को यह सब अच्छा नहीं लग रहा है. आग और घी को दूर रखने की ताकीद इधर-उधर से सुनाई दे रही है. सुकर्मा अनसुना करके अपने बनाए रास्ते पर चलना जानती है. उसने किसी भी बात की परवाह नहीं की.

इस सबके बीच वह एक बात नहीं भूलती है कि मेघ को अधिकारी बनना है. वह बीच-बीच में उसे याद दिलाती है कि उसके उत्तीर्ण होने के बाद वे सब गोआ घूमने के लिए जाएँगे.

मेघ को अपने निशाने पर केवल मछली की आँख दिख रही है. इस समय उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है सुकर्मा के साथ रहते हुए दिन-रात पढ़ाई करना. वत्सला और सौरभ के साथ सहज दोस्ती के सम्बन्ध के बीच भी उसने अपनी पढ़ाई का नुकसान नहीं किया. वत्सला को अब मेघ का मफलर से बँधा सिर देखकर हँसी नहीं आती है. साथ रहते-रहते एक-दूसरे की आदत-सी हो जाती है.

सुदीप और कुन्ती दी ने भी मेघ का सुकर्मा के यहाँ रहना स्वीकार कर लिया है. इतवार को मिलने-मिलाने का सिलसिला पुराने ढर्रे पर आ गया है. वत्सला को सुदीप से जिद करने में मजा आता है. अकसर अजीब फरमाइशें करती है. आज तो उसने यह जिद ही ठान ली कि वह सुदीप से गीत सुनेगी. सुदीप ने उसे समझाया, तरह-तरह के प्रलोभन से ध्यान दूसरी ओर करने की कोशिश की.

वत्सला ने मानना नहीं था, तो नहीं मानी. सुकर्मा ने पहली बार वत्सला को जोर से डाँटा. वह मेघ के कमरे में जाकर सुबक-सुबककर रोने लगी. मेघ ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे पानी पिलाया और समझाने की कोशिश करते हुए कहा, "बच्चों की तरह जिद नहीं करते..."

वत्सला ने चिल्लाकर कहा, "मैं बच्ची नहीं हूँ..." मेघ के साथ-साथ पूरा घर हक्का-बक्का रह गया.

सुकर्मा ने कुन्ती दी से कहा, "मुझसे ही कहीं कोई गलती हो गई है." और बाहर आकर मजबूती से वत्सला को आवाज़ दी, "वत्सला, नीचे आओ."

सहमी-सी वत्सला उसके सामने आकर खड़ी हो गई. सुकर्मा ने कठोरतापूर्वक कहा, "इस घर में ऊँचे स्वर मे बोलने की इज़ाजत किसी को नहीं है...तुम्हें भी नहीं. जाओ, मुँह धोकर आओ और सुदीप अंकल से माफी माँगो."

वत्सला ने बेमन से मुँह धोया और सुदीप के पास जाकर कहा, "मैंने डाँट भी खा ली, अब तो गीत सुना दें, प्लीज..."

सुदीप कैसे कहे कि उसके गीत बसन्त के महाप्रयाण के साथ खो गए हैं. उसने वत्सला का हाथ पकड़कर गीत गुनगुनाया :

गुलाबी धूप में चमकते
तुम्हारे सुनहरे बाल और उजला रंग
ले चले हैं मुझे सागर पार
अजनबी टापू पर उड़ते बादलों के संग.

सुकर्मा को बसन्त से सुना गीत अक्षरशः याद हो आया,

हरी-भरी जमीं को देख
मन उड़े पाखियों के मानिन्द
सपनों के डोले में
हिचकोले खाए तन मेरा स्वच्छन्द.

गीत सुनते-सुनते वत्सला सुदीप के कंधे को आँसुओं से भिगोती रही. सौरभ और मेघ सुकर्मा के दोनों ओर बैठकर झूम रहे हैं. संजना कुन्ती दी की गोद में सो गई है.

उस दिन किसी ने भी खाना नहीं खाया. सुकर्मा अपने कमरे में जाकर अतीत के झरोखे से भावी सपनों को देखने की कोशिश करती रही. वह दोनों बच्चों की जिम्मेदारी पूरी करने के बाद दूर कहीं पहाड़ पर चली जाएगी.

अपने ससुरजी की मृत्यु के बाद उसका मन देहरादून से ऊब रहा है. कितनी मुश्किल से वह गाँव की जमीन बेचने के लिए तैयार हुए थे. एक बार जमीन बेचकर सुकर्मा के साथ शहर में आ गए, तो फिर कभी मुड़कर गाँव की ओर नहीं देखा. लगभग दो वर्ष इस नए घर में रहे वह. धैर्य की अद्‌भुत मिसाल बन गए थे. भूलकर भी उन्होंने बसन्त का नाम लेकर सुकर्मा का दिल नहीं दुखाया. बच्चों को लाड़-प्यार करने के बहाने बाँधने का कभी प्रयास नहीं किया. सुकर्मा ने उनसे बहुत कुछ सीखा. उन्हीं की तरह वह सब कुछ बच्चों के लिए छोड़कर दूर कहीं, बहुत दूर चली जाएगी.

मन-ही-मन दृढ़ निश्चय करके वह उठी. रसोई में जाकर दूध गर्म किया. मेघ के लिए कॉफी बनाई और अपने हाथ में चाय का कप लेकर उसके कमरे में जाकर कोने में बैठ गई.

वह मेघ को चुपचाप कॉफी पीते हुए देखती रही. मेघ ने उसके हाथ से खाली कप लिया और रसोई में खाली बर्तन रखने के लिए चला गया. पीछे-पीछे सुकर्मा नीचे आ गई. दोनों के बीच दूरी का दायरा तनिक छोटा हो गया. मेघ ने ऊपर जाने से पहले सुकर्मा की आँखों में देखकर रात्रि अभिवादन कहते हुए सिर को तनिक आगे झुकाया. सुकर्मा पास रखी हुई आरामकुर्सी पर बैठ गई. मेघ ने उसके मौन को अपनी आत्मा में उतरने दिया. मुस्कराकर हाथ हिलाकर विदा ली.

अपने कमरे में आकर मेघ ने ठण्डे पानी के छींटों से मुँह-कान-कुर्ता भिगो लिया. कम्बल को घुटनों तक ओढ़कर बिस्तर में बैठ गया. मन की उद्विग्नता शान्त हो गई है. तन में उठती तरंगों के ज्वार-भाटे में डूबते हुए सोने की कोशिश की उसने.

अपनी नींद तो वह नीचे आरामकुर्सी पर छोड़ आया है...।

चवालीस

गर्मी-सर्दी की छुट्टियाँ आती-जाती रहीं और मेघ की पढाई जारी रही. परीक्षा देने के लिए दिल्ली जाते हुए उसने सुकर्मा से आग्रह किया, "आप मेरे साथ चलें न!"

सुकर्मा ने आँख भरकर उसे देखते हुए कहा, "मैं तो मजदूर हूँ. देखते तो हो, रोज़ दिहाड़ी पर जाना होता है मुझे. मैं कैसे चल सकती हूँ...?"

मेघ ने मन में सोचा, 'कुछ ही दिन की बात है. एक बार प्रथम श्रेणी का अधिकारी बन जाऊँ, भारत-दर्शन के लिए ले जाऊँगा, प्रथम श्रेणी में... नहीं, हवाई जहाज़ में.'

उसके भरे-भरे होंठों पर नटखट मुस्कान को समझने का असफल प्रयास किया सुकर्मा ने. मेघ मौन ही रहा. उसकी आँखों में दृढ़-संकल्प की चमक बढ़ गई.

इम्तहान खत्म होते ही वह सीधे देहरादून वापस पहुँच गया. सुकर्मा ने हैरानी से देखा, "तुम्हें तो माँ के पास गोरखपुर जाना था...?"

"हाँ, दो दिन में चला जाऊँगा...मेरा आना आपको अच्छा नहीं लगा क्या?" मेघ ने पूछा.

"नहीं, ऐसी बात नहीं है. तुम्हारा घर है. वत्सला और तुममें मैंने कोई अन्तर नहीं समझा." सुकर्मा ने थाली में चावल निकालते हुए कहा.

"यह क्या? जसवन्तीजी नहीं आईं आज?"

"वह अपने बेटे-बहू के पास श्रीनगर चली गई हैं."

"ओह !" कहकर मेघ ने उसके हाथ से थाली ले ली. "लाइए, आज मटर- पुलाव मैं बनाता हूँ."

सुकर्मा अतीत की मीठी याद में खो गई, "पहले तुम हाथ-मुँह धो लो. मैं चाय बनाती हूँ."

"नहीं, मुझे चाय नहीं पीनी है." मेघ ने कहा.

"क्यों, तुम तो चाय के शौकीन हो !" सुकर्मा ने पूछा.

"हूँ नहीं, शौकीन था. मैंने तब तक चाय न छूने का संकल्प लिया है, जब तक परिणाम घोषित नहीं होता है... अब अधिकारी बनकर ही चाय पीऊँगा."

सुकर्मा को उसका आत्मविश्वास अच्छा लगा. मेघ जानता है कि उसके अधिकारी बनने की सुकर्मा को बेताबी से प्रतीक्षा है. वह नहीं जानता है कि सुकर्मा के दिमाग में उसके भाग्य की भावी योजना भी तय है.

दो दिन का समय सात दिन तक बढ़ गया. मेघ के माता-पिता ने हारकर पूछा, "हम ही मिलने के लिए आ जाएँ क्या...?"

बेमन से मेघ ने सामान बाँधा. गोरखपुर पहुँचकर उसने महसूस किया कि सामान तो पहुँच गया है, वह अपने वजूद का बडा हिस्सा सुकर्मा की देहरी पर छोड़ आया है.

सौरभ का एन.डी.ए. में चयन होने पर घर में खुशी की लहर दौड़ गई है. सुकर्मा और वत्सला उसे छोड़ने के लिए पुणे गए. सात्त्विक ने जिद की कि उन तीनों को मुम्बई आना होगा. स्टेशन पर सात्त्विक ने आवाज़ दी, "वत्सला!"

सुकर्मा देखकर हैरान हो गई, सफेद दाढ़ी और काले बाल वाला लम्बा आदमी सन्त जैसा दिख रहा है. 'प्रणाम' के बाद उसने बिन-सोचे ही कहा, "आप तो अच्छे दिख रहे हैं..."

"हम बुरे कब थे...?" सात्त्विक ने सौरभ के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा.

सौरभ ने सिर उठाकर सात्त्विक की ओर देखा और सात्त्विक की 'हाँ में हाँ' मिलाते हुए कहा, "आप हमेशा से ही अच्छे हैं, अच्छे रहेंगे."

सात्त्विक ने मुस्कराकर वत्सला को देखा, "इतने बड़े प्रमाण-पत्र के बाद और क्या चाहिए मुझे...?" वत्सला ने आगे बढकर सात्त्विक की बाँह पकड़ ली.

सुकर्मा पर्स झुलाते हुए कुली के पीछे चलने लगी. सात्त्विक ने जेब से लॉली पॉप निकालकर वत्सला को दी. वत्सला ने जोर से सीटी बजाई. सुकर्मा ने मुड़कर कहा, "रहोगी तो तुम हमेशा बच्ची ही..."

घर पहुँचते ही सात्त्विक के साथ रहनेवाले विद्यार्थी मंगल ने सात्त्विक को हवाई जहाज के टिकट दिए. सुकर्मा ने पूछा, "यह क्या है? कहाँ जा रहे हैं आप...?"

सात्त्विक ने बड़ी कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "मैं नहीं, हम सब गोवा जा रहें हैं."

वत्सला खुशी से झूम उठी.

सुकर्मा ने इनकार करते हुए कहा, "इस बार नहीं, अगली बार..."

"हाँ, हाँ... जब मेघ साथ होगा, अगली बार." वत्सला की कुढ़न-भरी आवाज़ से सात्त्विक चौंक गया.

सुकर्मा ने शान्त स्वर में कहा, "हाँ, मैंने उसे वचन दिया है कि उसके प्रथम श्रेणी अधिकारी के रूप में चयनित होने पर हम सब गोवा घूमने के लिए जाएँगे."

सौरभ ने माँ के मेघ के प्रति इस अतिरिक्त मोह को हमेशा नज़र-अन्दाज़ किया है. आज उसने पहली बार सवाल किया, "माँ ! क्या तुम मेघ को परिवार के सदस्य की तरह मानती हो ?"

सुकर्मा ने आसमान की ओर आँख उठाकर दुआ की, 'तुम्हारी बात सच हो' और प्यार से कहा, "सौरभ! मेघ तुम्हारे सुदीप अंकल का चचेरा भाई है. वह परिवार में कोई गैर तो नहीं है न!"

वत्सला पैर पटकते हुए बाहर चली गई थी. वह नहीं जानती है कि उसकी माँ उसका भविष्य सँवारने के लिए दिन-रात मेहनत कर रही है. सुकर्मा चाहती है, उसकी बेटी प्रथम श्रेणी अधिकारी की पत्नी बने. दहेज के बल पर अपनी बेटी के लिए दूल्हा खरीदने में अक्षम है, तो क्या ? उसने मेहनत करके मेघ को अधिकारी बनवाने का संकल्प कर लिया है. सात्त्विक ने यह रहस्य बिन-बताए ही जान लिया है. वह यह भी जानता है कि सुकर्मा ने कभी हार नहीं मानी है. उसने प्यार से कहा, "ठीक है, इस बार पोरबन्दर चलते हैं, गोवा अगली बार सही."

सुकर्मा ने सात्त्विक के निर्यात के काम की प्रगति की तारीफ की. उसकी अनुपस्थिति में, उसके कमरे में जाकर उसकी पेंटिंग्स को सराहा. बाई से रसोई की सफाई कराई. रागिनी-सात्त्विक की शादी की तस्वीरों को सहेजकर रखा. अपने लिए सूती धोतियाँ खरीदीं और सात्त्विक के लिए रेशमी कुर्ते. सौरभ और मेघ के लिए सात्त्विक ने जीन्स खरीदकर दी. वत्सला के लिए तो सात्त्विक ने कपड़ों का ढेर लगा दिया. साँवली-सी लड़की नये कपड़ों का इश्तहार करती रही घर भर में. सुकर्मा को वत्सला का सजना-सँवरना अच्छा लगता है. न जाने कैसे वह उसे मेघ की आँख से देखने लगी है!

सुदीप ने सात्त्विक को फोन पर बताया कि मेघ के लिए साक्षात्कार का बुलावा आ गया है.

सात्त्विक ने सुकर्मा को यह बात नहीं बताई. वह सुकर्मा को चिन्तित नहीं देखना चाहता है. उसने सोचा, 'मेघ के उत्तीर्ण हो जाने की अन्तिम खबर ही सुनाएगा.' वह सुकर्मा को जीत के क्षण में चहकते-चमकते हुए देखना चाहता है. उसे वह दिन याद है, जब वह बसन्त की आवाज़ के दोलन में पुतली-सी नाचती रहती थी.

अकसर सात्त्विक सोचता है कि क्या वही पुरानी सुकर्मा कभी वापस आ सकेगी ? उसका तार्किक मन खुद ही उत्तर देता, 'सुकर्मा का वही रूप वापस

आ जाए, तो वह क्या करेगा उसका? उसे तो धीर-गम्भीर स्वर वाली सुकर्मा का साथ अच्छा लगता है. इस सुकर्मा में अल्हड़पन नहीं है, विचार की परिपक्वता का अनोखा लावण्य है.' सोचते-सोचते सात्त्विक को एहसास ही नहीं हुआ कि वह अँधेरे में बैठा है. सूरज डूब गया है. सौरभ-वत्सला समुद्र तट से वापस आए, तो घर में रोशनी हुई.

वत्सला ने सुकर्मा को आवाज लगाई. उत्तर न मिलने पर सात्त्विक ने अनुमान लगाया कि सुकर्मा असमय सो गई है.

सात्त्विक को एहसास हो रहा है कि उसका सुकर्मा के साथ संवाद का कोई सिलसिला बन ही नहीं पाया. कभी बसन्त ने सेतु का काम किया, कभी सुदीप ने वार्तालाप को आकार दिया. अब बच्चे न हों, तो उन दोनों को सन्नाटा निगल जाए.

सात्त्विक ने उठकर खिड़कियों के पर्दे खींचे, टी.वी. का स्विच दबाया और आँखों पर चश्मा लगाकर बैठ गया.

सौरभ नहाने के लिए चला गया. वत्सला ने माँ को गुलाबी चादर से ढका और पास में रखी हुई डायरी को उठाया. डायरी के मुख पृष्ठ पर लगी बसन्त की तस्वीर को गौर से देखा. बसन्त के गठे हुए हाथों की पकड़ को याद करते हुए उसने आँखें मूँद लीं. सात्त्विक सुकर्मा की गुलाबी पीठ को देखता रहा।

मौन ने जीवन के पुराने संदर्भों को नया अर्थ दे दिया है मानो. सात्त्विक अपने मन में उठते गुबार को थामने की कोशिश कर रहा है. उसने टी.वी. बन्द कर दिया और खिड़की में खडे होकर समुद्री हलचल को पढ़ना शुरू किया. मछुवारों की टोकरियों में मरी हुई मछलियाँ हमेशा ही उसमें वितृष्णा का भाव जगाती हैं.

जीवन के प्रति अदम्य चाह ने ही उसे हर उतार-चढ़ाव को सहने की शक्ति दी है, वरना अकेले जीना कोई आसान राह तो नहीं है न!

घर में मंगल का होना-न-होना एक बराबर है. सुकर्मा ने आकर रुके हुए जल में कंकड़ियाँ मारी हों जैसे...

सात्त्विक सोच रहा है, 'इन लोगों के जाने के बाद दुबारा पुराने क्रम में लौटना कितना कठिन होगा!

पैंतालीस

दीवाली के बाद पुणे में सौरभ को छोड़ने के बाद भारी मन से सात्त्विक ने वत्सला और सुकर्मा को विदा दी. अपने घर पहुँचकर उसे सूनापन काटने को दौड़ रहा है. उसने ट्रांजिस्टर चला लिया. गाने सुनते-सुनते दिमाग स्मृतियों के झरोखे से सुख के क्षण चुनने लगा.

उसने उठकर एलबम उठा ली. सुकर्मा और वत्सला ही उसका परिवार है. कम-से-कम एलबम तो यही गवाही दे रही है. आधे से ज्यादा तस्वीरें उन दोनों की हैं. वह आधी रात तक तस्वीरें देखते-देखते सोफे पर ही सो गया. फोन की घंटी से उसकी आँख खुली.

सुकर्मा दिल्ली से बोल रही है, "दिल्ली जल रही है."

सात्त्विक ने हैरानी से पूछा, "क्या? क्यों ?"

अब हैरान होने की सुकर्मा की बारी है, "क्या आप नहीं जानते कि श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या हो गई है?"

सात्त्विक के हाथ-पैर सुन्न हो गए, "तुम दोनों स्टेशन पर ही रुके रहो. मैं अपने मित्र सौमित्र को फोन करता हूँ."

"नहीं, आप परेशान न हों. सुदीप ने अपने पिताजी को फोन कर दिया था. वह अपनी पुलिस की गाड़ी में हम लोगों को घर ले आए हैं." सुकर्मा ने कहा.

सात्त्विक की जान में जान आई. उसने बाँह घुमाकर घड़ी पर नज़र डाली. वह खुद पर हैरान है कि लगभग बीस घंटे लगातार कैसे सो सका वह! अपने बालों पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "तुम लोग वहीं रुके रहना. मैं अपने आने का बन्दोबस्त करता हूँ."

"उसकी कोई ज़रूरत नहीं है. हम सुदीप के घर में हैं, कुशल से हैं." सुकर्मा ने सहज रूप से कहा.

सात्त्विक के भीतर कुछ छिल गया. उसकी आँख से आँसू गिरा. वह क्षण उसके लिए आत्मचिन्तन का क्षण बन गया।

फोन रखते ही सात्त्विक ने टीवी ऑन किया। उसने एशियन गेम्स देखने के लिए कलर टीवी खरीदा था. उसने कब सोचा था कि वह इसी टीवी पर दहकती आग के नज़ारे देखेगा! इनसान इतना वहशी कैसे हो सकता है कि गले में जलता टायर डालकर एक इनसान को जिन्दा जला दे! उसने आँखें बन्द कर लीं.

चीख-चिल्लाहट में ज़िन्दगी का क्रन्दन उससे बर्दाश्त नहीं हुआ. उसने मंगल से कहा, "टीवी बन्द कर दो."

मंगल ने भोलेपन से कहा, "मोटे भाई! मैने पढा था, गुरु तेगबहादुर ने हिन्दुओं की खातिर अपना शीश कटा दिया था. गुरु गोविन्द सिंह जी के दो साहबजादे दीवार में जिन्दा चिनवा दिए गए थे. खालसा पंथ की स्थापना भी आत्मसम्मान की रक्षा के लिए की गई थी... सिक्ख और हिन्दू अलग कब हो गए?"

सात्त्विक ने हाथ झटककर कहा, "तुम नहीं समझोगे! ये दो कौमों की लड़ाई नहीं है. यह राजनीति का नंगा खेल है. यहाँ स्वार्थों की बन्दूकें चलती हैं. भीड़ के उन्माद को शक्ति के खेल में इस्तेमाल करना चतुर खिलाड़ियों का पुराना हथकंडा है."

मंगल को कुछ समझ नहीं आया.

फोन को हाथ में पकड़े हुए तीन छलॉग में वह छत पर पहुँच गया. ठण्डी बयार से छाती में सुकून महसूस किया. फिर भी मन की बेचैनी कम नहीं हुई, आदमी को आदमी की हत्या करने का अधिकार किसने दिया ? सात्त्विक तो फाँसी का भी विरोध करता रहा है. साम्यवाद को पूरे मन से मानने के बाद भी वह यह कभी स्वीकार नहीं कर सका कि अपने से भिन्न विचारधारा वाले व्यक्ति को मार दिया जाए.

सात्त्विक अचानक समष्टि से व्यष्टि के दायरे में पहुँच गया. उसे सुकर्मा की चिन्ता के साथ-साथ यह बात भी सता रही है, 'उसने स्टेशन से ही मुझे फोन क्यों नहीं किया?'

इनसान का मन भी अजीब है ! विद्युत की गति से भी तेज भागता है. उसने सोचा, 'वह फोन करती भी तो मीलों की दूरी से मैं कर क्या सकता था !'

मन से विकार धुल गया, 'सुकर्मा स्वावलम्बी हो गई है. अब उसकी चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है.' उसने दोनों बाँहें आकाश में फैला दीं, मानो पंछी की तरह आकाश छूना चाहता हो! चेहरे पर शान्त भाव लक्षित हो रहा है. उसने लम्बी साँस भरी और आकाश की ओर देखा. नीले आकाश में तूफान

के बाद की शान्ति व्याप्त है.

दूर समुद्र में एक जहाज़ जा रहा है. सात्त्विक का अस्तित्व अपने से जुदा हो गया हो जैसे. वह अपने-आपको उस दूरगामी जहाज़ पर बैठे पक्षी की तरह महसूस कर रहा है. सब कुछ होते हुए, कुछ भी नहीं और कुछ भी न होते हुए, सब कुछ होने का एहसास!

फोन को एक कोने में रखकर, वह चौकड़ी मारकर बैठ गया. आँखें बन्द करते ही हवा की साँय-साँय से उसका दिल घबरा गया. वह पानी पीना चाहता है. उसने आदतन मंगल को आवाज दी. मंगल तक आवाज पहुँची हो यह सम्भव नहीं है. मंगल तो यूँ ही उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ऊपर आ गया. मंगल बिना कुछ कहे उसके साथ सीढ़ियाँ उतरने लगा. नीचे पहुँचकर मंगल ने पूछा, "चाय बनाऊँ क्या?"

सात्त्विक ने बिना बोले सिर हिला दिया. चाय पीकर उसने मंगल को सब्जी लाने के लिए बाजार भेज दिया.

उसने फोन करके अपने लिए हवाई जहाज की टिकट खरीदी और दफ्तर से सुरेखा को बुलाकर बताया कि वह एक महीने के लिए बाहर जा रहा है. सुरेखा ने पूछा, "जी, सर, बताएँ कहाँ का टिकट बुक कराना है?"

"उसकी फिक्र न करें आप."

सुरेखा ने 'जी!' कहा और फोन रख दिया. वह पूछना चाहती थी, 'आखिर सात्त्विक एक महीने के लिए कहाँ जा रहे हैं ?' वह चाहकर भी अपने अधिकार क्षेत्र की सीमा नहीं लाँघ सकी. वह हैरान है कि सात्त्विक अपने दफ्तर में अपने कार्यक्रम की जानकारी क्यों नहीं देना चाहते हैं.

सात्त्विक ने स्वयं अपना सामान रखा. सामान रखते हुए अचानक उसने दीवार पर टँगे पेन्सिल-स्कैच की ओर देखा और उसका फ्रेम खोल दिया. दराज़ से एक बड़ा लिफाफा निकालकर स्कैच को सहेजकर उसमें रखा और अपनी डायरी में दबाकर सूटकेस में कपड़ों की तह के नीचे छुपा दिया.

बाहर आकर उसने मंगल से कहा, "टैक्सी ले आओ."

मंगल ने हैरानी से देखा, "डाइवर तो है... या हम छोड़ दें क्या?"

सात्त्विक ने कठोर स्वर में कहा, "टैक्सी ले आओ."

टैक्सी से एअरपोर्ट पहुँचकर दिल्ली के विमान में आकर बैठ गया.

सुकर्मा को सात्त्विक का आना चकित नहीं कर सका; जैसे कि वह जानती थी कि सात्त्विक ज़रूर आएगा. सुदीप के पिता ने उन सबके जाने की व्यवस्था की. मेघ भी साक्षात्कार के लिए दिल्ली में ही है. वह भी उनके साथ देहरादून आ गया.

सुकर्मा-वत्सला को मेघ के साथ देहरादून छोड़कर सात्त्विक ने पहाड़ पर जाने का अपना फैसला सुनाया. सुकर्मा ने रोकने की कोशिश की. सात्त्विक ने बहस नहीं की और अपना निर्णय बदला भी नहीं. वह अपना पता दिए बगैर ही जाना चाहता है.

चलते समय सुकर्मा ने कहा, "अपना कुशल बताते रहना. मेघ का परिणाम आते ही हमें वत्सला की शादी का बन्दोबस्त करना होगा."

सात्त्विक ने एक क्षण के लिए उड़ती नज़र से उसे देखा, 'कभी एकदम परायी बन जाती है और कभी अपनेपन की मिठास से पराये को भी अपना बनाती है. अजीब पहेली है यह सुकर्मा.'

सात्त्विक बिन कुछ कहे दरवाजे से बाहर चला गया. सुकर्मा का स्वर पीठ पर गोली-सा लगा, "मैं आपके फोन की प्रतीक्षा करूँगी."

सात्त्विक कहना चाहता है, 'नाहक परेशान न हों, मैं आपका हूँ ही कौन...?' अपने को नियन्त्रित करते हुए उसने आँख से 'हाँ' कह दिया.

उत्तरकाशी पहुँचते ही उसने अपने वचन के अनुसार सुकर्मा को फोन किया. सुकर्मा के पूछने पर भी होटल का नाम-पता नहीं बताया. केवल इतना ही कहा, "मैं ठीक से पहुँच गया हूँ. होटल में अच्छा कमरा मिल गया है. कमरे में भागीरथी की गर्जना से उसके तीव्र प्रवाह का अनुमान होता है. बाबा विश्वनाथ के दर्शन भी कर आया हूँ. आप फिक्र न करें, मैं फोन करता रहूँगा."

महीने के बाद महीना बीत रहा है. सात्त्विक के 'हाँ-हूँ' वाले औपचारिक फोन से सुकर्मा चिन्तित हो रही है. वह जानना चाहती है कि सात्त्विक के दिलो-दिमाग में क्या घूम रहा है. इतने दिन से पहाड़ के सन्नाटे में क्या कर रहा है वह.

अचानक सुकर्मा को रागिनी की याद आई, 'काश! वह भारत में होती. उसी की चंचलता सात्त्विक को वापिस ला सकती है.' सुकर्मा ने रागिनी को फोन किया. रागिनी-सिद्धांत तो छुट्टियाँ मनाने के लिए स्पेन गए हैं.

सात्त्विक के वापस लौटने की प्रतीक्षा के अतिरिक्त अन्य कुछ उपाय सुकर्मा को नज़र नहीं आ रहा है. वह अपने घर और ऑफिस के काम के बावजूद सात्त्विक के लिए निरन्तर चिन्तित है.

फोन की घंटी बजते ही उसका बेतहाशा भागना मेघ को अच्छा नहीं लगता है. वह कोशिश करता है कि फोन के नजदीक रहे, ताकि घंटी बजते ही फोन उठा ले.

मेघ के इसी प्रयास का परिणाम है कि साक्षात्कार के बाद उत्तीर्ण होने की सूचना उसने सबसे पहले सात्त्विक को दी. सात्त्विक सामान बाँधकर

तुरन्त देहरादून के लिए निकल पड़ा.

सुकर्मा के पैर धरती पर नहीं हैं. वह वत्सला के आने की बेताबी से प्रतीक्षा कर रही है. सात्त्विक को देखकर हैरानी नहीं हुई कि वह इस तरह तैयारी में संलग्न है, जैसे कि शादी की तारीख तय हो गई हो !

मेघ के कमरे में नए पर्दे लग गए हैं. वत्सला के लिए नए कपड़े बन रहें हैं. सौरभ से फोन पर जल्दी आने का आग्रह किया जा रहा है.

मौका मिलते ही सात्त्विक ने पूछा, "सुकर्मा ! आपने मेघ से शादी के बारे में बात कर ली है क्या?"

"नहीं, अभी नहीं. वत्सला का इन्तज़ार कर रही हूँ. उसके आते ही अँगूठी की रस्म कर देंगे." सुकर्मा ने खड़े-खड़े ही निश्चिन्तता से वत्सला के लहँगे की तह लगाते हुए कहा.

सात्त्विक ने प्यार से कहा, "आप एक मिनट बैठेंगी...मैं आपसे बात करना चाहता हूँ."

सुकर्मा तो जैसे आसमान से कठोर ज़मीन पर सिर के बल गिरी हो. उसने 'न' में सिर हिला दिया. सात्त्विक के चेहरे पर चिन्ता की लकीरें देखकर धीरे से कहा, "मुझे यकीन है कि मेघ की 'हाँ' है."

"सो तो ठीक है. सुकर्मा! कुछ औपचारिकताएँ तो करनी ही होती हैं." सात्त्विक ने समझाने की कोशिश की.

बिखरे सामान की ओर हाथ से इशारा करते हुए सुकर्मा ने कहा, "यह सब तैयारी ही तो है..."

सात्त्विक ने उसे गौर से देखा, "आप मेरी बात समझने की कोशिश करें. मेघ के माता-पिता को एक बार भूल भी जाओ, मेघ और वत्सला से तो पूछना ही होगा न!"

सुकर्मा ने आँख झुकाकर पलकें उठाईं. हार मानना उसकी फितरत नहीं है, "अभी पूछ लेते हैं."

तनिक विराम लेते हुए अपनी चतुराई को बिना छुपाए उसने सात्त्विक से आग्रह किया, "आप ही पूछ लीजिए न मेघ से. आदमी और आदमी के बीच की बात और होती है."

सात्त्विक ने मुस्कराकर उठने का उपक्रम किया, तो देखा कि पर्दे के नीचे से दो पैर दिख रहे हैं, "क्या पूछना है हमसे, हम भी नो जानें..." मेघ ने पर्दे के पीछे से चेहरा भीतर करते हुए कहा.

सात्त्विक ने मेघ के कंधे को हाथ से दबाते हुए कहा, "आओ, चौराहे तक घूमकर आते हैं."

मेघ और सात्त्विक के जाने के बाद सुकर्मा ने दो गिलास पानी पिया.

सात्त्विक की बात सुनकर मेघ के तो पैर तले से जमीन खिसक गई, "यह क्या कह रहे हैं आप...?"

सात्त्विक ने दसियों तरह से समझाने की कोशिश की. मेघ का सिर 'नहीं' की मुद्रा में हिलता रहा.

आखिर में सात्त्विक ने कहा, "सुकर्मा की खुशी इसी में है. तुम्हारी 'न' से वह टूट जाएगी. उसको सँभालना असम्भव होगा."

मेघ ने असहाय होकर कहा, "जो आप लोग ठीक समझें, स्वीकार है मुझे."

धीमे कदमों से दोनों घर लौटे. सुकर्मा की सवालिया नज़र को सात्त्विक की आँख की 'हाँ' ने नवजीवन दिया।

छयालीस

वत्सला के आने की प्रतीक्षा सुकर्मा से भी ज्यादा मेघ को है. वह ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है कि वत्सला इस शादी के लिए मना कर दे. उसने अपने माँ-बाबा से अभी इस विषय में बात करना सही नहीं समझा. आजकल वह सुकर्मा से भी अधिक बात नहीं कर रहा है. सुकर्मा तो बिना किसी की परवाह किए शादी की तैयारी में व्यस्त है. सात्त्विक समझता है कि मेघ अनिर्णय के दौर से गुजर रहा है. वह अच्छे दोस्त की तरह उसका सम्बल बना हुआ है.

वत्सला का आगमन युद्ध के बिगुल के समान हुआ. सात्त्विक ने उसे दो चॉकलेट दिए. सुकर्मा ने उसकी पसन्द की चीजों से मेज सजा दी. वत्सला इस अभूतपूर्व स्वागत से हैरान है कि मेघ से ज्यादा उसकी आवभगत हो.

अभी तो सुकर्मा के बदले हुए व्यवहार को देखकर वह खुशी से झूम रही है. उसे क्या मालूम कि इस खुशी के आवरण से भावी जिम्मेदारी का पिटारा खुलने वाला है.

रात को सुकर्मा ने वत्सला को आदेशात्मक स्वर में कहा, "एम.ए. तो अब तुम्हें शादी के बाद ही करना होगा. मेघ तुम्हें आगे पढ़ाने के लिए तैयार है."

सात्त्विक की साँस रुक गई. वत्सला ने आग्नेय दृष्टि से सुकर्मा को देखा. सात्त्विक ने वत्सला का हाथ पकड़कर कहा, "हम सबने यह ठीक समझा है कि तुम दोनों की शादी हो जाने में भलाई है."

वत्सला ने मेघ की ओर प्रश्नभरी निगाह से देखा, वह तो खिड़की के बाहर तारों से भरा आकाश देख रहा है. वत्सला ने सौरभ से सहारे की उम्मीद की, वह चुपचाप खाना खा रहा है. सुकर्मा ने कहा, "तुम खुश हो न? मेघ ने परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है. वह मसूरी एकेडमी में प्रशिक्षण के लिए जा रहा है."

सात्त्विक ने जोड़ा, "हम चाहते हैं कि उसके एकेडमी जाने से पहले शादी हो जाए."

वत्सला उठकर अपने कमरे में चली गई. सुकर्मा ने उसके पीछे-पीछे कमरे में जाकर कहा, "देखो! मैने बहुत मेहनत की है. मैं यह जोखिम नहीं ले सकती हूँ कि एकेडमी में मेघ को कोई और लोग अपने लिए चुन लें. इसलिए जल्दी शादी करने में ही भलाई है."

सात्त्विक हैरान है कि सुकर्मा अपनी चतुराई-भरे खेल को अपनी पुत्री के सामने खुलकर स्वीकार कर रही है. वत्सला ने कातर नज़र से माँ को देखा. सात्त्विक ने अपने-आपको उन दोनों के द्वीप से दूर खड़ा महसूस किया. वह वापस आकर मेघ के साथ कुर्सी पर बैठ गया. मेघ तो किसी चट्टान की तरह जड़ीभूत हो गया है. उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया दिखाई नहीं दे रही है. सात्त्विक और सौरभ ने मेघ को देखा. मेघ निर्विकार भाव से आइसक्रीम खाता रहा.

वत्सला और सुकर्मा एक-दूसरे का हाथ पकड़कर मौन बैठी रहीं. सौरभ ने अपने कमरे में जाकर संगीत की धुन लगा दी.

मेघ छत पर चहलकदमी कर रहा है. सात्त्विक ने सभी दरवाज़े बन्द किए और सुकर्मा को आवाज देकर कहा, "मैं सोने के लिए जा रहा हूँ. शुभ रात्रि!"

वत्सला ने बाहर आकर सात्त्विक के कंधे पर सिर रख दिया, "मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा है. मैं क्या करूँ?"

सात्त्विक ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मेरे खयाल से तुम्हारे जीवन में अन्य कोई ऐसा लड़का नहीं है, जिसे तुम प्यार करती हो. माँ की बात मान लो."

उसके मौन को सुकर्मा और सात्त्विक ने स्वीकृति समझा. नीचे मेघ के भाग्य का फैसला हो गया है और वह ऊपर चाँद-सितारों में अपने भविष्य को खोज रहा है. सुकर्मा ने ऊपर जाकर उसके माथे को सहलाया और कहा, "तुम चिन्ता नहीं करो. मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ. मेरा विश्वास है, तुम वत्साला के साथ खुश रहोगे."

मेघ ने बिना उसकी ओर देखे आँखें मूँद लीं. इस स्पर्श का अर्थ उसकी बुद्धि से परे है. उसने सुकर्मा की खुशबू से मन-प्राण को भीगने दिया. पहली बरखा के बाद माटी की सोंधी खुशबू को कैसे भूलेगा कोई...?

सात्त्विक ने करवट लेकर घड़ी में समय देखा. ग्यारह बज चुके हैं. चारों प्राणी नींद से दूर अपने-अपने जगत में रात्रिचर बनकर विचरण कर रहे हैं. सात्त्विक ने रागिनी को फोन मिलाया. उधर से सिद्धान्त की 'हैलो' सुनकर फोन वापस रख दिया.

थोड़ी देर बाद सुकर्मा के कदमों की आवाज सुनकर वह बाहर आ गया. बिन कुछ कहे सुकर्मा अपने कमरे में चली गई. बसन्त की तस्वीर के सामने बैठकर आँसू की रसधारा से उसने अपना अन्तस धो लिया हो जैसे. बैठे-बैठे ही नींद के आगोश में चली गई वह.

सात्त्विक सोफे पर बैठकर किताब पढ़ता रहा. फिर उसने अपनी डायरी में लिखा, 'शादी का अर्थ मेरे लिए कुछ नहीं है. सुकर्मा के लिए शादी ही सब कुछ है. मेघ-वत्सला की शादी की योजना रचकर तो उसने बड़े-बड़े दिग्गजों को मात दे दी है. उसे तो कहीं सेनापति होना चाहिए. उसके नेतृत्व में कोई सेना हार कैसे सकती है?'

इस समय सात्त्विक स्वयं भी नहीं जानता है कि वह सुकर्मा की प्रशंसा कर रहा है या निन्दा. यह चातुर्य अन्य किसी भी स्त्री के तईं पाप बन जाता. सुकर्मा उसके लिए अभी भी निष्पाप एवं निश्छल है. यह मोह है, प्यार है या कोई और बेनाम रिश्ता, उसे नहीं मालूम.

सात्त्विक ने डायरी बन्द करके रखी. बरसों पुराना बनाया निर्वस्त्र स्त्री का चित्र डायरी से नीचे गिर गया. आज उसमें सुकर्मा का अक्स साफ दिख रहा है. घबराकर सात्त्विक ने कलाकृति को लिफाफे में दोबारा रखा और ऑख के ऊपर दोनों बाँहों को कसकर बाहर की दुनिया से विलग होने का असफल प्रयास किया.

वह स्त्री तो कलाकृति से बाहर आकर उसके पूरे अस्तित्व पर अंकित हो गई है. खुली आँख में भी वही नज़ारा है और बन्द आँख में भी.

वह अपने-आपको टोहता-टटोलता रहा. दुनिया की नज़र से कोई बच सकता है, अपने-आपसे छुपने के लिए कौन-सी गुफा की शरण ले...?

उसने सूटकेस खोलकर लिफाफा कपड़ों की तह के नीचे दबा दिया. गीता को खोलकर पढ़ने की कोशिश की. अक्षरों को पढ़ने का क्रम तो सही था. अर्थ से बेखबर उसका मन भादों के बादलों की तरह घुमड़ता रहा.

वत्सला रोकर सो चुकी है. मेघ के कमरे की बत्ती जल रही है. सात्त्विक ने सोचा, मेघ को उसकी ज़रूरत होगी. वह खड़ा होकर पुनः बैठ गया. सीढ़ी चढ़कर उसके कमरे तक जाने की हिम्मत उसमें इस समय नहीं थी. टाँगों की शिथिलता को पहली बार महसूस किया उसने.

वह मन-ही-मन फैसला कर रहा है कि किसी तरह मेघ-वत्सला की शादी का काम निपट जाए, तो वह श्री बद्री विशाल के द्वार पर जाकर धूनी रमाए.

शरीर में ताकत न रही, तो दस साल बाद ध्यान-तप की उम्र ही न रहेगी.

उसे जल्दी-से-जल्दी अपनी राह पर लौटना है. वह गृहस्थ नहीं है, उसे गृहस्थी के भँवर में फँसना नहीं है.

सुबह होते ही सात्त्विक ने सुदीप एवं कुन्ती दी को फोन करके बुलाया. सुदीप ने अपने चाचा से बात की. सुदीप की बात को टालने का सवाल ही नहीं था. उन्होंने खुशी से हामी भर दी. ज्योतिष के हिसाब से मुहूर्त निकलवाने की जिम्मेदारी भी सुदीप ने अपने सिर ले ली. हमेशा की तरह शादी की सारी जिम्मेदारी में मुख्य भूमिका सुदीप की तय हो गई.

सुकर्मा अपने दफ्तर के कामों के बीच 'हाँ-ना' करने का दायित्व निभाती रही. मेघ ने तो सुकर्मा के सामने पूर्ण समर्पण कर दिया है. शादी के दिन भी दोपहर तक वह सुकर्मा के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है, यह देखकर कुन्ती दी भी हैरान है. उसने ही डाँटकर उसे भगाया, "जाओगे नहीं, तो शाम को दूल्हा बनकर कैसे आओगे?"

लोगों की 'हाँ-हूँ' के बीच शादी का शोर सिमट गया. यन्त्रवत् वत्सला ने सब कुछ स्वीकार कर लिया.

रागिनी-सिद्धान्त शादी के मौके पर पहुँच गए. रागिनी ने अपनी माँ को भी जिद करके बुला लिया है. शादी-ब्याह के बहाने से मिलना-जुलना भी तो होता है. संजना को शादी में सजकर नाचने का शौक चढ़ा है. सौरभ बड़ा भाई बनकर उसकी चौकीदारी कर रहा है. सैनिक धुनों पर थिरकना सौरभ को भी अच्छा लग रहा है. तापस इस हिन्दुस्तानी रस्मोंवाली शादी की हर बात में सवाल पूछ रहा है. हल्दी हाथ से विदा तक वह भारतीय शादी का पंडित बन गया हो, तो आश्चर्य क्या!

सुकर्मा ने शादी की किसी रस्म की कसर नहीं छोड़ी. बसन्त को दिए गए वचन में कहीं कुछ कमी न रह जाए, इस बात की चिन्ता से वह अपना ध्यान रखना भूल गई है.

शादी के बाद पहले फेरे पर आए मेघ ने सुकर्मा को अपने हाथ से परौंठा बनाकर खिलाया. घर-बाहर की स्त्रियों ने उसके भाग्य की द्वेषपूर्ण सराहना की. देर से आई महाराजिन पार्वती अम्मा ने टिप्पणी की, "समय बदल रहा है. अब आदमी को खयाल रखना है कि उसकी पत्नी खुश रहे, इसके लिए उसकी माँ को तो खुश रखना ही होगा."

मेघ अन्य लड़कों से भिन्न प्रकृति का है. सात्त्विक ने यह उसे देखते ही जान लिया था. इतना अच्छा इनसान है, इसकी कल्पना नहीं की थी. घर की जिम्मेदारी को उसने बड़े पुत्र की तरह ओढ़ लिया.

सात्त्विक ने सोचा, अब उसे सुकर्मा एवं वत्सला की चिन्ता नहीं रहेगी.

वह उन्मुक्त भाव से अपने रास्ते पर अकेला जा सकता है. आसमान में बाँहें फैलाने की मुद्रा में उठा वह और छत पर जाकर धूप में लेट गया. धूप हमेशा से ही उसकी कमजोरी रही है. उसे नींद आ गई.

साँझ ढले वत्सला ने आकर जगाया, "माँ ने नीचे बुलाया है."

सात्त्विक ने सोचा, चाय के लिए बुलाया होगा. वहाँ जाकर देखा कि चाय तो कैटल में ही रखी है और सुकर्मा तथा मेघ की उलझती आवाज़ों के शोर की गर्मी है.

सुकर्मा ने कुर्सी से उठते हुए कहा, "मेघ! तुम जिद नहीं करो. मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती हूँ. तुम दोनों का टिकट मँगवाया है मैंने. तुम दोनों ही गोवा जाओगे. सौरभ तुम्हारे साथ दिल्ली तक जाएगा."

मेघ क्रोध से लाल हो रहा है, "आप अपने वचन से बदल रही हैं. आपने ही कहा था कि मेरे आई. ए. एस. बनने पर हम सब गोवा जाएँगे."

सुकर्मा ने निरुत्तर होकर सात्त्विक की ओर देखा. सात्त्विक ने यूँ ही कह दिया, "हम दोनों श्री बद्रीनाथ जी के दर्शन के लिए जा रहे हैं. सुकर्मा ने तुम दोनों की शादी के लिए मन्नत मानी थी."

सुकर्मा ने 'हाँ' की मुद्रा में सिर हिलाया. सुदीप और कुन्ती दी ने समर्थन किया।

सैंतालीस

मेघ ने श्री बद्रीनाथ जाने के लिए टैक्सी का बन्दोबस्त किया और सौरभ के साथ खरीदारी के लिए बाजार चला गया. रास्ते में रुककर कॉफी पीने का प्रस्ताव सौरभ ने रखा.

मेघ ने अपना चिर-अभ्यस्थ वाक्य दोहराया, "अच्छा, ठीक है."

कई बार सुकर्मा ने महसूस किया है कि बहस के बाद भी मेघ की ओर से निष्कर्ष में जवाब यही मिलता है, 'अच्छा, ठीक है.'

अकसर उसने सौरभ को समझाया, "मेघ से बहस का कोई फायदा नहीं है." आज तो सौरभ को बहस का मौका भी नहीं मिला. उसने सौरभ के पीछे-पीछे चलते हुए होटल के बाईं ओर के दरवाजे से प्रवेश किया.

घुसते ही सौरभ ने दूसरे दरवाजे से बाहर जा रही दो युवतियों को टोका, "हैलो! कान्ति और प्रभा...!"

दोनों युवतियों ने पलटकर देखा, तो मेघ ने भी 'हैलो' कहा. शादी के दौरान नाच-गाने में यही दोनों तो अग्रणी रही हैं. मेघ उन्हें कैसे भूल सकता है!

सौरभ ने संकोचपूर्वक मेघ की ओर देखा और धीमे से कहा, "इन दोनों को कॉफी के लिए रोक लें क्या...?"

मेघ ने जोर से कहा, "आप दोनों को जल्दी न हो, तो थोड़ी देर हमारे साथ बैठें. हम यहाँ की स्पेशल कॉफी पीने के लिए आए हैं."

प्रभा ने कहा, "हम दोनों चाइनीज़ खा चुके हैं. तृप्त हैं हम."

कान्ति ने प्रभा की ओर रुकने के लिए अनुनय-दृष्टि से देखा और सौरभ से कहा, "फिर कभी..."

सौरभ ने दो कदम आगे बढ़कर कहा, "कल किसने देखा है. आज सुनहरा मौका है."

कान्ति और प्रभा ठीक मध्य भाग में खड़े मेघ के पास आकर बैठ गईं. कॉफी आने तक चारों इधर-उधर की बातें करते रहे. फैशन से राजनीति तक

पहुँच गए. प्रभा के दादा स्वतन्त्रता-सेनानी रहे हैं और कान्ति के पिता सेना में अधिकारी हैं. देश की चिन्ता जैसे दोनों को खून में मिली है. मेघ को यह भाषणनुमा वार्तालाप उबाऊ लग रहा है. उसने कहा, "मैं जरा बाहर का एक चक्कर लगाकर आता हूँ." सौरभ ने इनकार में सिर हिलाते हुए सवालिया निगाह से उसे देखा. मेघ ने चतुराई से जवाब दिया, "मैं एक पंचप्राण दीया खरीदना चाहता हूँ."

"गोवा में दीदी की आरती उतारेंगे क्या?" कान्ति ने कटाक्ष किया.

मेघ के कान खड़े हो गए. यह लड़की तो घर तक पहुँचने का दु:साहस कर रही है. खिड़की से बाहर देखते हुए उसने कहा, "सुकर्माजी श्री बद्री विशाल के दर्शन के लिए जा रही हैं. हम उनके साथ जा तो नहीं सकते हैं. सोच रहा हूँ, एक दीया ही भिजवा दूँ उनके हाथ."

कान्ति को मेघ का सुकर्मा का नाम लेकर सम्बोधित करना अजीब लगा. अपने स्वाभाविक भाव को छुपाते हुए उसने मुस्कराकर पूछा, "कोई मन्नत माँग रहे हैं क्या?"

मेघ ने आँखें बंद करके सोचा. फिर कान्ति की आँखों में देखते हुए कहा, "हाँ; अगले जन्म के लिए..." और एक क्षण में ही दरवाजे से बाहर निकल गया.

उस समय सौरभ ने कान्ति और प्रभा के साथ बात को हवा में उड़ा दिया. उसके दिमाग में यह सवाल दिन-भर कौंधता रहा, 'हमे तो यह भी नहीं मालूम कि इस जन्म में क्या चाहिए और मेघ अगले जन्म के लिए मन्नत माँग रहा है. उसके जैसा पक्का इरादा तो मैंने और किसी में देखा नहीं है.' सोचते-सोचते उसने मेघ के कमरे की ओर जाने के लिए सीढ़ियों की बत्ती जलाई. सामने मेघ और सुकर्मा को देखकर वह भौचक्क रह गया, "आप दोनों यहाँ अँधेरे में क्यों खड़े हैं?"

सुकर्मा ने नीचे उतरते हुए कहा, "हम खड़े कहाँ हैं? मैं तो नीचे आ रही थी." फिर मुड़कर कहा, "मेघ, तुम यहीं रहो. तुम्हारे लिए पानी मैं ले आती हूँ."

"नहीं, आप तकलीफ न करें." मेघ के स्वर में भारीपन है.

सौरभ ने एक तरफ हटकर सुकर्मा को नीचे जाने के लिए रास्ता दिया और मेघ से पूछा, "सब ठीक तो है न? माँ उखड़ी-उखड़ी लग रही हैं."

"उनकी परेशानी वही जानें, मैं ठीक हूँ." मेघ ने सौरभ को आभास नहीं होने दिया कि उसे सुकर्मा का सात्त्विक के साथ श्री बद्री विशाल जाने का विचार अच्छा नहीं लग रहा है.

वत्सला ने आवाजें सुनकर खिड़की से देखा और पूछा, "सब ठीक तो है न!"

"नहीं, यहाँ भूचाल आ रहा है," मेघ ने कहा. सौरभ ने अपने मजबूत शरीर की ओर उसके इशारे को देखा और जोर से ठहाका लगा दिया. मेघ उसके साथ हँसने की कोशिश करके भी खुलकर हँस नहीं सका.

हँसी मनुष्य के भीतर का गुंण है. वह सौरभ को कैसे बताए कि उसके भीतर वाकई भूचाल आ रहा है. उसकी ज़िन्दगी की परीक्षा तो अभी शुरू हुई है. वत्सला को खुश रखना उसके लिए मौत की सुरंग से गुजरने से भी ज़्यादा दुरूह है. हार मानना उसने सीखा नहीं है. कोई रास्ता ढूँढ़ना होगा.

इसी विषय में बात करने के लिए उसने सुकर्मा को सीढ़ी चढ़ते हुए रोक लिया. सौरभ के आने से बात हो नहीं सकी. सौरभ ने मेघ के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "चलो, छत पर चक्कर लगाकर आते हैं."

मेघ उसके साथ छत पर आ गया. आसमान पर बिखरे सितारे मेघ को अपनी दुनिया में ले जाते हैं. सौरभ ने उसे हिलाकर अपनी बात कही, "मैं तुम्हें कान्ति के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ."

मेघ ने उसकी ओर गौर से देखकर कहा, "बिन कहे ही समझ गए हैं हम. मैं कल वत्सला के साथ जाकर हीरे की अँगूठी खरीद लाता हूँ."

सौरभ के चेहरे पर लज्जा एवं आनन्द की लालिमा दौड़ गई, "माँ से बात करने में डर लगता है मुझे."

मेघ को हैरानी हुई, "अपनी माँ से बात करने में भय कैसा? खैर, चिन्ता न करो. सुबह मैं उनसे बात कर लूँगा."

"सुबह तो वह बद्री विशाल के लिए चली जाएँगी. बात तो अभी करनी होगी." सौरभ ने मिन्नत की.

"वहाँ से वापस तो आएँगी ही, तब बात हो जाएगी. इतनी जल्दी भी क्या है?" मेघ ने मुस्कराकर कहा.

"मत भूलो, उनके जाने के बाद मैं तो पुणे चला जाऊँगा. तुम दोनों भी तो गोवा जा रहे हो," सौरभ ने कहा.

मेघ का चेहरा गम्भीर हो गया. त्वरित गति से उसने 'कुछ' निर्णय लिया. सौरभ का हाथ पकड़ा और दोनों क्षण-भर में सुकर्मा के कमरे में हैं.

सकपकाकर सुकर्मा ने पूछा, "क्या बात है? हमें जल्दी सोना चाहिए. कल यात्रा के लिए जाना है."

मेघ ने उसकी बात पर गौर किए बिना कहा, "हमें ज़रूरी बात करनी है..."

सुकर्मा सावधान होकर बैठ गई. उसने सोचा, शायद सात्विक के साथ जाने से उसे रोकने के लिए मेघ सौरभ को साथ लाया है. सुकर्मा को डरा हुआ देखकर मेघ को हँसी आ गई, "खुशी की बात है कि सौरभ और कान्ति ने शादी करने का फैसला किया है."

सुकर्मा की दोनों मुट्ठियाँ खाली हो गईं... वह मौन बसन्त के चित्र को देखती रही।

कुछ देर बाद बोली, "तुम सब समझदार हो. जो तुमने सोचा है, ठीक ही होगा. मुझे कोई आपत्ति नहीं है."

सौरभ को माँ का ठण्डापन अच्छा नहीं लगा. मेघ ने सुकर्मा के एक नए रंग को स्मृति में सँजो लिया. मेघ नहीं जानता है कि इन स्थितियों में वह सामान्य कैसे रहे. दरवाजे पर खड़ी वत्सला को सौरभ ने कहा, "दीदी! अन्दर आ जाओ. वहाँ क्यों खड़ी हो?"

"मैं कॉफी बनाकर लाती हूँ," कहकर वत्सला रसोईघर की ओर मुड़ गई.

मेघ ने टिप्पणी की, "वत्सला समझदार है..."

अड़तालीस

अलसाए मन से उठकर वत्सला ने दरवाजा खोला, "माँ नहा रही हैं शायद." सामने खड़े सात्त्विक से कहा उसने.

सात्त्विक ने उसके सिर पर हाथ फेरा, "गुड मॉर्निंग! वत्सला, तुम अपने कमरे में जाओ. मैं तो जल्दी आ गया हूँ. टैक्सी आने पर सामान रखवाता हूँ."

भीतर से सुदीप की आवाज़ आई, "हाँ, लम्बा सफर है. समय से निकलना बेहतर होगा."

सात्त्विक ने गर्दन घुमाकर देखा. सुदीप चाय की ट्रे लेकर बाहर आ गया. उसने कुन्ती को पुकारा, "कुन्ती! जल्दी करो. टैक्सी आनेवाली होगी."

कुन्ती ने भीतर से ही जवाब दिया, "आ जाने दो. तुम लोग तो सुबह-सुबह पूरे मोहल्ले को जगा रहे हो."

सात्त्विक ने मुस्कराकर कहा, "पहली बार तीर्थ के लिए जा रहे हैं. वह भी श्री बद्री विशाल के दर्शन के लिए... मोहल्ले को सूचना तो रहनी ही चाहिए."

सुकर्मा ने बाहर आकर कहा, "कह तो ठीक रहे हैं आप. खेद है कि मोहल्ले के नाम पर दो घर हैं और दोनों लोग अपने-अपने बच्चों के पास विदेश गए हैं."

सुदीप ने सात्त्विक को देखकर आँख मारी, "हमारे बच्चे भी बुलाएँ, तो हम भी विश्वदर्शन कर आएँ."

सात्त्विक के चेहरे पर विषाद की रेखा खिंच गई. अतीत के झरोखे कभी सीलबन्द नहीं होते।

टैक्सी के आने की आवाज़ सुनकर सुदीप ने दरवाजा खोला. कुन्ती बैग उठाकर बाहर चली गई. सुकर्मा ने भी अपना बैग खींचकर बाहर निकाला. सात्त्विक ने कहा, "आप रहने दें... हम करते हैं."

सुकर्मा ने उत्तर दिए बिना अपने कंधे पर शॉल को ठीक किया. कुन्ती दी ने कहा, "मैं भी गर्म कपड़े ले ही लूँ. पहाड़ का मामला है. ठण्ड होगी

वहाँ."

सात्त्विक ने विस्फारित आँखों से देखा, "मैं तो अपनी जैकेट कमरे में ही भूल आया हूँ."

कुन्ती ने कहा, "मैं देखती हूँ, सुदीप की कोई जैकेट हो तो..."

सात्त्विक ने अपने शरीर को देखा और कहा, "रहने दीजिए, काहे मुझे फँसा रही हैं!"

सुकर्मा ने भीतर जाकर अलमारी से बसन्त की शॉल निकाली. प्यार से छुआ उसे और सोचा, 'सात्त्विक को दे दूँ क्या ?' दरवाजे पर खड़ी कुन्ती दी ने उन्हें द्वन्द्व से निकाला, "हाँ! यह ठीक रहेगी..."

सुकर्मा के पास कोई विकल्प बाकी नहीं बचा. शॉल लेकर वह बाहर आई. सात्त्विक ने उसके चेहरे को पढ़ते हुए कहा, "आप रहने दो. यह बद्रीनाथ से ही तो खरीदी थी, वहाँ मिल जाएगी."

बिना कुछ कहे सुकर्मा ने दोनों शॉल अपने बैग में सहेजकर रख लीं. बसन्त की स्मृति ने उसे सदैव सुख दिया हो, ऐसा तो नहीं है. आज उसे एहसास हुआ, इतने बरस सिर उठाकर जीने का सम्बल बसन्त की स्मृति ही तो है.

...कहीं भीतर रस की फुहार ने उसे भिगो दिया. समीप आकर मेघ ने उसके हाथ से बैग ले लिया और प्यार से कहा, "आप चाय पिएँ, बाकी सब कुछ मैं देखता हूँ."

सात्त्विक ने दरवाजे की ओट से देखकर अनदेखा कर दिया. मेघ ने सुकर्मा का पर्स खोलकर गुलाबी लिफाफा रखा और कहा, "कभी फुर्सत में देखना."

हड़बड़ी में एक-दूसरे को रास्ता देते हुए कुन्ती दी, सुदीप और सात्त्विक टैक्सी में बैठ गए हैं. सुकर्मा ने सौरभ और वत्सला को गले लगाकर चूमा. मेघ ने झुककर पैर छुए और सुकर्मा के कंधे पर सिर रख दिया. चाचीजी कुन्ती दी की बेटियों के साथ भीतर हैं. सुकर्मा उनके पैर छूने के लिए गई, तो मेघ भी पीछे-पीछे आ गया. उसने पैर छूकर कहा, "हमें भी आशीर्वाद दीजिए."

चाचीजी ने सहज भाव से कहा, " मन की मुराद पूरी हो."

मेघ का चित्त प्रफुल्लित हो गया; हालाँकि वह जानते हुए भी अब नहीं जानता है कि मन की मुराद क्या है.

सुकर्मा ने टैक्सी में बैठते हुए कहा, "मेघ! गोवा पहुँचते ही फोन कर देना."

वत्सला ने उत्तर दिया, "जी, माँ! आप फिक्र न करें."

टैक्सी आगे जा रही है और सुकर्मा की चाह पीछे की ओर भाग रही है. रक्त-सम्बन्ध की पुकार है या लगाव की खींच, खुदा जाने !

सात्त्विक आगे बैठकर ड्राइवर को पहाड़ी ड्राइविंग की सीख दे रहा है, "मोड़ पर हमेशा धीरे चलो और कुछ भी हो जाए, बाईं साइड से चिपके रहो. पहाड़ पर बाएँ चलने से ही जीवन-रक्षा हो सकती है."

कुन्ती ने कहा, "मैं नहीं जानती थी कि आप इतने डरपोक हैं."

"अपनी फिक्र किसको है! हम तो आप लोगों के लिए चिन्तित हैं." सात्त्विक ने आँख की कोर से सुकर्मा को देखते हुए कहा.

सुकर्मा यहाँ है ही नहीं. सात्त्विक के कवि-मन ने दो पंक्तियाँ गुनगुनाईं. सुदीप ने तारीफ की और सुकर्मा की उदासीनता पर गौर किया.

'सुकर्मा को समझना किसी के भी वश से परे है,' सुदीप जानता है.

आज उसकी मनोदशा पढ़ने की हठ करके उसने कहा, "आप तो अभी से हरि-भक्ति में तल्लीन हो गईं... हम भी बैठे हैं इधर."

कुन्ती ने घूरकर देखा. सुदीप ने खिड़की की ओर मुँह घुमा लिया. सूरज के आगमन की प्रतीक्षा में आकाश ने रंगों का थाल सजाया है. पक्षी-कलरव ने आत्मा के बीहड़ में संगीत भर दिया. सुदीप की आँखें पेड़ों की ओट में छुपे पक्षियों को देखने के लिए व्यग्र हैं. कुन्ती को इस विकलता के एहसास से मजा आ रहा है.

सुकर्मा और सात्त्विक दो द्वीपों की तरह कटे-कटे-से बैठे हैं. भीतर की ऊहापोह को सुलझाने की नाकाम कोशिश करते हुए अपने-आपसे लड़ रहे हैं.

कुन्ती दी ने गीता का गुटका निकालकर पढने का प्रयास किया. सुकर्मा ने कहा, "अभी रोशनी कम है. ऋषिकेश से आगे पहुँचकर ही पढ़ सकेंगी आप."

सात्त्विक ने कहा, "तब तो गंगाजी को निहारेंगी. कुछ पढ़ेंगी क्यों? आप जानती हैं क्या, पूरे रास्ते हम गंगाजी के साथ-साथ चलेंगे?"

किसी ने भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की. सात्त्विक ने अपनी जेब से कैसेट निकालकर सितारवादन में मन डुबो लिया.

कुछ सोचते हुए सुकर्मा ने पूछा, "आप पहले इधर आए हैं क्या?"

सात्त्विक ने मुडकर हैरानी से देखा, "आप भूल गईं शायद, मैंने आपको बताया था, मैं गत वर्ष फूलों की घाटी और हेमकुण्ड साहिब गया था."

सुकर्मा को भी अपने-आप पर हैरानी हुई. उसे अपनी स्मरण-शक्ति पर

गुमान है. पहली बार वह 'कुछ' भूलते हुए पकड़ी गई है. दरअसल सात्त्विक भली-भाँति जानते हैं कि सुकर्मा वत्सला के लिए चिन्तित है. चालाकी का खेल खेलना अपने हाथ है, हार-जीत का फैसला अपने हाथ से परे है.

सुकर्मा ने कोई खेल आधे में नहीं छोड़ा है. बसन्त के जाने के बाद भी वह गृहस्थ-धर्म शत-प्रतिशत निभा रही है. उसका प्रशंसक होना अलग बात है. कोई भी पुरुष उसका प्रेमी नहीं बन सका.

अपने दिल-दिमाग की पहरेदारी में वह सदा अव्वल रही है. आज उसकी विकलता सभी के लिए नई है. अनजान का भय है, यात्रा का जोखिम अथवा सौरभ-वत्सला-मेघ का मोह...।

कुन्ती दी ने सुकर्मा को गौर से देखा, "आप ठीक तो हैं न?"

सुकर्मा ने 'हाँ' में सिर हिला दिया और आँखें मूँद लीं. वह पेट में पर्स के दबाव को महसूस कर रही है. वह अनुमान लगाने की कोशिश कर रही है कि मेघ ने गुलाबी लिफाफे में क्या रखा होगा. संभवत: 'यात्रा मंगलमय हो' के लिए कार्ड हो या गोवा के कार्यक्रम का विस्तृत विवरण हो.

ऋषिकेश में टैक्सी रुकवाकर उसने सुदीप के साथ जगह बदल ली है. वह गंगा का दृश्य देखना चाहती है. शिवपुरी के मनोहारी दृश्य को बच्चों की तरह उचक-उचककर देखना कुन्ती दी को अटपटा लग रहा है. सात्त्विक ने पढ़ा, 'देवप्रयाग छ: किलोमीटर.' उसने ड्राइवर से कहा, "जरा रुको, यहाँ से संगम दिखाई देता है." सबने उतरकर संगम का विहंगम दृश्य देखा और माँ गंगा को प्रणाम किया.

सात्त्विक ने झुककर माटी का स्पर्श किया. सुकर्मा ने पूछा, "आपने यहीं से संगम को छू लिया क्या?"

सात्त्विक ने दार्शनिक मुद्रा में कहा, "मैं धरती का स्पर्श तो हमेशा ही करता हूँ रोज़ सुबह उठकर. हमारी माँ ने मराठा संस्कार का बीज रोपा था, जो इंग्लैण्ड में भी नहीं मर सका. यह तो देवभूमि है और यह गंगा का प्रथम द्वार है. यहीं से गंगा का नाम गंगा हुआ."

"हम नीचे जा सकते हैं क्या?" सुकर्मा ने पूछा.

"ज़रूर जा सकते हैं. पिछली बार मैंने गंगा स्नान किया था. इस स्थान का महत्व गया से भी अधिक है. यहाँ पितृ-तर्पण होता है. मैंने किया था..."

सुकर्मा ने हैरानी से पूछा, "आप यह सब मानते हैं क्या?" वह कहना चाहती थी, 'बाबा तो अभी बड़ौदा में हैं.' उसके कुछ कहने से पहले ही सात्त्विक ने कहा, "हाँ! क्यों नहीं. मैंने तो दरअसल अपने लिए ही पिण्ड-दान-तर्पण सब कुछ कर दिया."

सुदीप के ठहाके से कुन्ती भौचक रह गई. सुकर्मा ने बिना कुछ सुने कहा, "मैं नीचे जाना चाहती हूँ. संगम को स्पर्श करना चाहती हूँ," न जाने कहाँ से उसके भीतर जहरीला फन उठा, 'अपनी जीवन-लीला समाप्त करने के लिए यह सर्वोत्तम स्थान होगा.'

सात्त्विक ने समझाते हुए कहा, "अभी दस घंटे का सफर है जोशीमठ तक. रुकना ठीक नहीं रहेगा. लौटते समय घाट पर जाकर बैठेंगे..." सुदीप ने हामी भरी.

सभी लोग आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गए. रुद्रप्रयाग पहुँचकर तो सुकर्मा भावविभोर हो गई.

"मैं संगम छूना चाहती हूँ." अनुनय-भरे स्वर के सामने कोइ 'न' नहीं कह सका।

उनचास

गिलहरी-सी फुदकती सुकर्मा सीढ़ियाँ उतर गई. संगम-त्रिकोण के शिखर-बिन्दु पर बैठते ही उसे अलकनन्दा की लहरें भिगो गईं. धन्य हो गई वह. 'उन्मुक्ति का यह क्षण चिरस्थायी हो,' उसने मन-ही-मन कहा.

अतीत का दु:ख धुल गया. गंगा के शीतल स्पर्श ने उसमें कौमार्य की लहर लौटा दी हो-मानो. अन्य लोगों की उपस्थिति से अनजान वह गीत गुनगुनाने लगी.

लौटते समय कुन्ती दी को सुदीप ने कहा, "सुकर्मा की इस स्फूर्ति ने ही बसन्त का मन बाँध लिया था..."

कुन्ती दी मौन रही. कुछ भी हो, वह रिश्ते में सुकर्मा की ननद है. अकेली रह गई भाभी के भीगे बदन से झाँकते यौवन का सामना कैसे करे वह? उसके मन में बार-बार एक ही ख्याल जाग रहा है, 'काश! बसन्त जीवित हो जाए.' ऊपर चढ़ते-चढ़ते वह हाँफ गई.

सुकर्मा ने पूछा, "आमपापड़ दूँ क्या?"

कुन्ती दी ने 'न' कर दी. सुकर्मा ने हाथ में पकड़ा आमपापड़ का टुकड़ा अपने मुँह में दबा लिया और खटाई का चटखारा भरा. कुन्ती दी ने दूर खड़े सुदीप को आवाज दी, "जी , जरा सुनो तोऽऽऽ"

सात्त्विक और सुदीप चाय की दुकान पर खड़े होकर बातें कर रहे हैं. कुन्ती दी ने कहा, "कपड़े बदल लो, सुकर्मा भाभी," बहुत दिन बाद कुन्ती दी ने उसे भाभी कहा है.

वह तरल स्वर में बोली, "जी, मैं सूट निकालती हूँ. सामनेवाले होटल में जाकर बदल लूँगी."

कुन्ती दी को रिश्ते के बड़प्पन में सुख मिला.

सुकर्मा को होटल की तरफ अकेले जाते हुए देखकर सुदीप ने कहा, "कुन्ती ! तुम साथ चली जाओ."

सात्त्विक पीठ मोड़कर खड़ा रहा–इस तमाम घटनाक्रम से अछूते. चाय-

वाले ने छोटे-छोटे धारीदार गिलासों में मीठी चाय पकड़ा दी. सात्त्विक ने पहला घूँट पिया और कहा, "पहाड़ पर आकर साल-भर का चीनी का कोटा पूरा हो जाता है."

सुदीप ने मुस्कराकर कहा, "हम पूरा साल यहीं रहें तो...?"

सात्त्विक ने हँसकर बात हवा में उड़ा दी. वह सुदीप को कैसे कहे कि वह चाहकर भी पहाड़ पर ज्यादा दिन कभी टिक नहीं सका. रंग-बिरंगी दुनिया से रिश्ता काटना आसान नहीं होता है. देह से ज्यादा दुरूह मन के रास्ते हैं.

सात्त्विक जानता है कि पर्वतीय वनपक्षियों का कलरव, झरने की कलकल, नदी का उजला जल, आकाश में छाए बादलों का गर्जन अपनों की कमी को दूना कर देता है. उसे याद है कि कैसे वह माँ-बाबा को छोड़कर पर्वत की छाया में आया और फिर रागिनी के साथ लौट गया. रागिनी के मोहपाश से छूटकर गंगा तट पर साधना में खो जाना चाहता है. वत्सला-सुकर्मा के प्रति दायित्त्व के बहाने से दुनियावी राग-रंग में रम गया वह और उसे दैनिक दिनचर्या की चरखी में विराग-भाव भूल गया.

अब तीसरी बार वह अकेला नहीं जा रहा है. लौटने का कार्यक्रम भी पूर्व निर्धारित है. फैक्टरी से निरन्तर फोन आ रहा है. बाबा भी बार-बार बडौदा आने का आग्रह कर रहे हैं. वत्सला की शादी के बाद यहाँ उसकी ज़रूरत बाकी रही भी नहीं है. साल-भर रहने की बात तो दूर, उसे डर लग रहा है कि शायद यह पहाड़ की आखिरी यात्रा न हो. सोचते-सोचते वह पहाड पर फैले रंगों को पी रहा है.

जोशीमठ पहुँचकर सबने चाय-नाश्ता लिया. सात्त्विक तो भीतर से संतृप्त है जैसे. वह इधर-उधर टहलता रहा. पिछली बार मिले लोगों के पते ढूँढ़ता रहा. चलते-चलते उसे वही पहाड़ी पण्डित जी मिल गए जिन्होंने भविष्यवाणी की थी, 'कुछ भी कहो अपने-आपको. तुम गुजरात में जन्मे हो, माँ मराठा है तुम्हारी, तो भी तुममें पर्वतीय पुत्र होने के लक्षण हैं. मैं तुम्हारी कुण्डली में राजयोग और तपश्चर्या देख रहा हूँ.'

सात्त्विक उनकी बात सुनकर पहले खुश हुआ, फिर सहम गया.

जीवन के राग से इनसान दु:खी होता है. मुक्ति की चाह से तड़पता है. यह सब भाव क्षणिक होते हैं. सत्य यही है कि संसार को छोड़ना सहज नहीं है.

वैराग्य का चोला ओढ़नेवाले साधुओं के जीवन को करीब से देखने के बाद सात्त्विक ने दृढ़ निश्चय किया है, 'कुछ भी हो जाए, आडम्बरपूर्ण जीवन को मैं कभी नहीं जीऊँगा. दोहरे मापदण्ड का जीवन मैंने घोर संसार में नहीं

जिया, तो यहाँ जंगल में नकली बाना क्यों ओढ़ूँ?

'...देह की ज़रूरतें नैसर्गिक हैं. मन में उठते प्रेम, क्रोध, द्वेष के भाव स्वाभाविक हैं. उनको साध कर साधु बनो, तो विकास ऊर्ध्वमुखी है, अन्यथा सीधा अधो:पतन का रास्ता है,' सोचते-सोचते सात्त्विक ने अपने कान छू लिए.

सुकर्मा ने देखा और उसके भीतर चल रहे द्वन्द्व को महसूस किया.

गहरी खाई और ऊँचे पहाड़ के बीच की घटती-बढ़ती दूरी को लगातार निहारते हुए सफर बीत गया. सात्त्विक ने आँखें बन्द कीं, तो उसे पिछली यात्रा का स्मरण हो आया. उसको ठीक याद है कि उसकी बस का नाम पिंडर था. लगभग तेईस बरस के नवयुवा गाइड की आवाज़ से नींद से ऊँघते यात्रियों की आँख खुली थी.

उसने दीर्घ नि:श्वास छोड़ते हुए कहा था, 'अब आप हनुमान चट्टी पर पहुँच गए हैं. यहाँ हनुमानजी का भक्तरूप दर्शनीय है. आप सब नीचे उतरकर टीका करवा सकते हैं.'

सात्त्विक हनुमानजी की मुस्कान-भरी जीवन्त प्रतिमा के भक्तिभाव से प्रभावित हुआ था. उसने टीका लगवाने की रस्म पूरी करने के तुरन्त बाद हनुमानजी की तस्वीरें खींची थीं. बम्बई में उस फोटो की खूब चर्चा हो गई थी. उसने सुरेखा को श्री बद्री विशाल के प्रसाद के साथ वह तस्वीर भी दी थी. उसने उस तस्वीर का पोस्टर बनाकर अपने दफ्तर में टाँग लिया.

इस बार भी उसने हनुमानजी के मन्दिर के सामने टैक्सी रुकवाई. सुकर्मा का हाथ जोड़कर खड़ा होना उसे अच्छा लगा. कुन्ती दी ने सुदीप से कहा, "आप टीका लगवाएँ. श्री बद्री विशाल के दर्शन से पूर्व हनुमानजी के दर्शन का प्रमाण तो होना चाहिए."

सुदीप ने कहा, "सवाल प्रमाण का नहीं, भावना का है. हनुमानजी की भक्त-मुद्रा में ऐसा आनन्द-भाव मैंने अन्यत्र नहीं देखा."

सुकर्मा को प्रतीत हुआ, जैसे हनुमानजी के हाथ के खरतालों के स्वर कानों में गूँज रहे हैं. अनजाने में ही उसका सिर लयात्मक गति से हिलने लगा. सात्त्विक ने मुड़कर देखा और सुकर्मा की आँख खुलते ही दूसरी ओर सिर घुमा लिया.

अतीत में लौट जाना सात्त्विक की आदत बन गई है. उसे टैक्सी की आगे की सीट पर बैठकर भी यही महसूस होता रहा; जैसे कि वह पिंडर बस में बैठा हो. उसे आठ किलोमीटर की सीधी चढ़ाई पर संघर्ष करती हुई बस में बैठे यात्रियों के चेहरे याद हैं. एकमात्र गाइड युवक मुस्करा रहा था. उसे मौत

का कोई खौफ़ नहीं था. अधेड़ उम्र के एक भक्त ने जब श्री बद्रीनाथजी के प्रथम दर्शन होते ही बस में लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया, तो वह युवक छोटी-छोटी मूँछों के बीच मुस्कराने लगा. उसकी मुस्कान का जवाब सात्त्विक की हँसी में मिला तो दोनों के बीच अजनबीपन का हाशिया मिट गया. उन दोनों के बीच दोस्ती का सम्बन्ध आज भी कायम है. दरअसल जोशीमठ में सात्त्विक उसी को ढूँढ़ रहा था. गोविन्दगढ़ में आती-जाती गाड़ियों में भी वह झाँककर देखने की कोशिश करता रहा.

गेट की पर्ची का इन्तज़ार करते हुए उसने उस गाइड का अँगूठियों वाला हाथ खिड़की से बाहर निकलते हुए देखा, तो उसने टैक्सीवाले को रुकने का इशारा किया और तीव्रता से भागकर पिंडर बस की खिड़की में से मुस्कराते चेहरे से हाल-चाल पूछा, "हमेशा की तरह आखिरी गाड़ी तुम्हारी ही छूटी है ऊपर से. मुझे लगता है, इस गेट-व्यवस्था को तुम ही चला रहे हो."

उसने हँसते हुए कहा था, "हाँ, मैं ऊपर से पर्ची न लेकर आऊँ, तो नीचे से गेट न छूटे."

पीछे से उसके दोस्त ने कहा था, "मत भूलो, दूसरी तरफ से पर्ची मैं लाता हूँ."

दोनों की पीठ पर शाबाशी की थपकी देकर सात्त्विक ने वापस आकर गेट-व्यवस्था का ब्यौरा सुकर्मा को समझाया, "इकहरा रास्ता होने पर यातायात को नियन्त्रित करना पड़ता है. दुर्घटना से बचने के लिए प्रतीक्षा करने में ही समझदारी है."

आखिरी आठ किलोमीटर की खड़ी चढ़ाई से कुन्ती दी डर गई थी. सुकर्मा सहज है, सुदीप चिन्तित है. पहाड़ी सफर से पहली बार उसे डर लगा.

उसने सोचा, 'कभी मेघ की नियुक्ति इधर होगी, तो सबसे पहला काम सड़क को चौड़ा करवाना होगा. चार धाम की यात्रा में सुरक्षा की उपयुक्त व्यवस्था तो होनी ही चाहिए.'

हलके धुँधलके में नर-नारायण पर्वत के बीच स्थित सुरम्य श्री बद्री विशाल मन्दिर के कपाट दिखाई दिए. सुकर्मा ने यह चित्र अनेक बार देखा है. चमकते रंगों से सजे इस द्वार के इतने समीप आ जाने पर मन-आत्मा में रोमांच हो जाता है, यह तथ्य अभी जाना।

पचास

गढ़वाल मण्डल द्वारा संचालित अतिथि-गृह में मुँह-हाथ धोकर वे सब मन्दिर की देहरी पर मस्तक नवाने के लिए चले गए.

"यहाँ अलकनन्दा का अनन्य रूप है." सुदीप ने कहा.

"अभी तो तुमने तप्तकुण्ड की ऊर्जा नहीं देखी है." सात्त्विक ने लहराते हुए कहा.

यहाँ आकर तन-मन में अजीब लय आ जाती है. इनसान स्वत:स्फूर्त गति से चलता है, झूमकर पूजा-आराधना में तल्लीन हो जाता है.

"भीड़ में खो जाने से जीवन की निस्सारता का भान होता है," सुकर्मा ने सात्त्विक के साथ-साथ चलते हुए कहा.

"भीतर चलो, धन के पैमाने से दर्शन-क्रम के सिलसिले में मनुष्य के अपने से बड़े होते अहं को देखना भी दूभर नहीं है यहाँ," सुदीप ने कहा.

सात्त्विक नि:संग भाव से बोला, "कोई भी पूर्वग्रह लेकर मत चलो. प्रकृति के सामने सिर झुकाने का नैसर्गिक सुख शुद्ध भाव से महसूस करो. जन-समूह के बीच में एकाकी हो जाने का अद्‌भुत अनुभव है यह."

सात्त्विक ने प्रात: बेला की आरती के लिए व्यवस्था की. सुकर्मा नहीं जानती थी कि देवता के घर में भी सिफारिशी पत्र चलता है. "सात्त्विक को जोशीमठ में पण्डितजी ने खत लिखकर दिए हैं," सुदीप ने कुन्ती दी के कान में कहा.

सुकर्मा ने मुड़कर कहा, "जिनके पास कोई खत नहीं होगा, वे दर्शन कैसे करेंगे...?"

"पैसे के बल पर, रसीद कटाकर..." सुदीप ने कहा.

सात्त्विक ने प्यार से कहा, "पंक्तिबद्ध होकर..."

सुकर्मा की समझ में कुछ नहीं आ रहा है. कुन्ती दी कुछ समझना ही नहीं चाहती है. वह और सुदीप तो सुकर्मा की मन्नत पूरी करवाने के लिए उसके साथ कर्त्तव्यवश आए हैं. मेघ-वत्सला की शादी ठीक होने से राहत उनको

भी मिली है. लोकापवाद से डर रहे थे वे दोनों. देवता का 'धन्यवाद' कहना ही चाहिए. सिर नवाकर चलना अपने-आपमें सुखकर है।

सात्त्विक को जीवन में जोखिम उठाना अच्छा लगता है. वह प्राकृतिक दृश्यों में इस तरह खो जाता है कि उसे खतरे का एहसास नहीं होता है. वह पहाड़ पर सफर करते-करते पहाड़ी हो गया है. उसे थकान भी महसूस नहीं होती है. अगले दिन सुबह तीन बजे उठकर वह तप्तकुण्ड में नहाने के लिए चला गया. लोग बालटी से नहाते हुए भी डर रहे हैं और सात्त्विक सीधे कुण्ठ में उतर गया. लोगों ने उसे हैरानी से देखा, "पानी बहुत गर्म है न!"

सात्त्विक ने मुस्कराकर 'हाँ' में सिर हिलाया और मन को स्थिर करते हुए शरीर को गर्मी के अनुकूलन के लिए ढीला छोड़ दिया. जब सुदीप-कुन्ती दी और सुकर्मा नहाने के लिए पहुँचे, तो वह पुल से अलकनन्दा को निहार रहा था.

सुदीप ने पूछा, "तुम नहा चुके क्या? हमें क्यों नहीं जगाया?"

सात्त्विक ने मुस्कराकर कहा, "अभी देर नहीं हुई है. जल्दी से नहाकर आओ. सूर्योदय होने पर पहली किरण के स्पर्श से नीलकण्ठ की बर्फीली चोटी सुनहरी हो जाती है. उस दृश्य को देखना अद्भुत अनुभूति है. मैं कमरे से कैमरा लेकर पहुँचता हूँ, तुम लोग वहीं आओ."

नीलकण्ठ के प्रथम दर्शन से सुकर्मा रोमांचित हो गई. देव-दर्शन के समय रावलजी द्वारा शृंगार-दर्शन का कोमल एवं सरस वर्णन सुनकर सुकर्मा की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी. सात्त्विक के लिए सुकर्मा का यह नया रूप सुखद है. वह हमेशा सोचता था, 'यह स्त्री सदैव चट्टान की तरह कठोर क्यों बनी रहती है?'

आज चट्टान की मोटी सतह को तोड़कर सहज भाव-प्रवाह देखना सात्त्विक के लिए पर्वतीय झरने की शीतलता के स्पर्श जैसा है. उसकी आँख की कोर में चमकते बिन्दु को कुन्ती दी और सुदीप ने गौर से देखा, और देवता के आगे सिर झुका दिया.

दिव्य धरती के जादू से सबकी मनोदशा में परिवर्तन हो रहा है. शरीर में नई स्फूर्ति और मन में उत्साह जाग रहा है. नाश्ते के बाद चारों ने भीम पुल जाने का फैसला किया. सरस्वती नदी के इन्द्रधनुषी छींटों से मन-प्राण में संगीत के स्वर गूँजने लगे. कुन्ती दी और सुदीप ने वहीं कुछ देर बैठने का फैसला किया.

सुकर्मा और सात्त्विक ने माणा गाँव के लोगों से मुलाकात का निश्चय किया. रास्ते में केशव प्रयाग की जानकारी मिलते ही सुकर्मा ने जिद की,

"मुझे संगम का स्पर्श करना है." केशव प्रयाग के बारे में बात करते हुए पण्डित जी ने गाइड की भूमिका अपना ली. तीनों जन लम्बे-लम्बे डग भरते हुए ऊबड़-खाबड़ रास्ते से केशव प्रयाग तक पहुँचे. सात्त्विक ने सुकर्मा को हाथ पकड़कर गिरने से बचाया.

प्रथम सीढ़ी पर पैर रखते ही सुकर्मा हिरणी की तरह दौड़ी और ठण्डे पानी में स्थित पत्थर पर बैठ गई. पण्डित जी ने हैरानी से देखा, हड्डियों को काट देने वाली शीतलता को कैसे सहन कर रही है यह शहरी लड़की...?

उन्होंने सात्त्विक से कहा, "वापस बुला लो. यहाँ पानी बहुत अधिक ठण्डा है. मैं तो अभी सतो पथ की दुर्गम यात्रा से लौटा हूँ. इतने ठण्डे जल में आचमन करने की हिम्मत मुझमें भी नहीं है और यह लड़की नहा रही है."

सात्त्विक ने देखा, सुकर्मा जल्दी से डुबकी लगा रही है. वह उसे ऊपर लाने के लिए अलकनन्दा के पास पहुँचा, तो ठण्डे जल के स्पर्श से 'सीऽऽ' की आवाज़ निकली. सुकर्मा ने घूमकर देखा और सात्त्विक का हाथ पकड़कर चौड़ी चट्टान पर चढ़ गई. पण्डितजी उन दोनों को वहीं छोड़कर वापस चले गए. सात्त्विक ने चिन्तित स्वर में कहा, "यह तुमने क्या किया ? यहाँ तो और कपड़े भी नहीं हैं. तुम्हें सर्दी हो जाएगी."

सुकर्मा ने अपना कुर्ता निचोड़ते हुए कहा, "आप मेरी चिन्ता न करें. खुली धूप है, अभी सूख जाएँगे."

शॉल और स्वेटर एक तरफ करते हुए वह चौड़ी चट्टान के सीने पर लेट गई. सात्त्विक ने उस सद्यःस्नाता को कैमरे में कैद कर लिया. सुकर्मा ने मुस्कराकर प्यार की झिड़की दी, "यह क्या किया आपने ? नाहक लोगों को बात बनाने का मौका मिलेगा."

"लोगों की परवाह कब से होने लगी आपको ?" सात्त्विक ने बिना सोचे कह दिया.

सुकर्मा ने आहत स्वर से कहा, "यह सही है कि मैंने लोगों की परवाह कभी नहीं की...लोक-मर्यादा का उल्लंघन भी मैंने कभी नहीं किया."

सात्त्विक निरर्थक बहस में उलझना नहीं चाहता है. बात का उपसंहार करने के लिए उसने कहा, "लोगों की परवाह करना पागलपन है. लोक-मर्यादा की बात मेरी समझ से परे है. मेरा उसूल है, वह करो जिससे अपने-आपको आईना देखने में मुश्किल न हो. दुनिया तो दूसरे में अवगुण ढूँढ़ने की ताक में रहती है."

सुकर्मा ने आसमान की ओर देखकर कहा, "गुण को भी अवगुण में बदलने की कारीगरी भी उन्हें खूब आती है. किसी को सिर उठाकर खुशी

से जीते हुए देखना लोग कहाँ सह सकते हैं!"

सात्त्विक ने उसे प्यार से देखा. वह सुकर्मा के जख्मों से छलनी हृदय पर प्यार का मलहम लगाना चाहता है. वह कुछ कहे, इससे पहले ही सुकर्मा ने कहा, "मुझे किसी का दयाभाव नहीं चाहिए. कुछ भी हो जाए, मैं बेचारी और असहाय नहीं बनना चाहती हूँ." सात्त्विक की मौन दृष्टि ने उसकी दृढ़ता की सराहना की. सुकर्मा ने सकपकाकर नेत्र मूँद लिए.

सात्त्विक ने तनिक नज़दीक आकर कहा, "नर-नारायण पर्वत को साक्षी मानकर कुछ कहना चाहता हूँ..." सुकर्मा ने सवालिया निगाह से देखा।

"मैं विष्णु भगवान की पवित्र धरा पर कह रहा हूँ. सुकर्मा! मैं आजीवन तुम्हारे साथ रहना चाहता हूँ."

सुकर्मा एक ही झटके में उठकर बैठ गई, "विवाह के बिना यह कैसे सम्भव है? खड़े होकर उसने ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर एकाकी चलना शुरू कर दिया.

सात्त्विक ने पीछे से करीब आकर कहा, "फैसला करने से पहले मेरी पूरी बात सुन लें. मैं आपसे विवाह करना चाहता हूँ."

सुकर्मा ने मुड़कर सात्त्विक की आँख में देखते हुए कहा, "आपने मुझे समझा ही नहीं. बसन्त के प्रति मेरी प्रतिबद्धता को शिथिल करने का अधिकार किसी को नहीं है, आपको भी नहीं."

सात्त्विक ने दबी आवाज़ में कहा, "बसन्त अब नहीं है, सुकर्मा!"

"आपके लिए बसन्त नहीं हैं. मेरे लिए बसन्त हैं, सदैव रहेंगे. वह मेरे बच्चों के पिता हैं. जब तक मेरे बच्चे हैं, तब तक वह हैं." सुकर्मा की तीखी आवाज़ से सात्त्विक घायल हो गया.

"बच्चे अपनी-अपनी राह पर जा चुके हैं. वत्सला मेघ की पत्नी है और सौरभ ने भी अपने लिए कान्ति को चुन लिया है. सुकर्मा! तुम ठण्डे दिमाग से सोचकर जवाब देना।" सात्त्विक ने कहा.

गिरते-गिरते बचने के लिए सुकर्मा ने सात्त्विक के कंधे का सहारा लिया. सात्त्विक ने प्यार से कहा, "मुझे कोई जल्दी नहीं है. मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकता हूँ."

सुकर्मा ने खड़े होकर कहा, "सात्त्विक! आपमें कोई दोष नहीं है. आपने जैसा मेरा साथ दिया है, अन्य कोई दे भी नहीं सकता है. आपके संयम की मैंने हमेशा कद्र की है. मैं आपकी इज्जत करती हूँ और मैं सात जन्म तक आपका इन्तजार कर सकती हूँ..."

सात्त्विक पूछना चाहता है, 'इस जन्म में बाधा क्या है? इस जन्म का

ही अता-पता नहीं है, तो अगला जन्म किसने देखा?' सुकर्मा की दृढ़ता को देखकर उसकी आवाज़ गुम हो गई...सुकर्मा सात्त्विक की बाँह छोडकर सीढ़ी पर बैठ गई. सात्त्विक ने गर्दन घुमाकर उसे देखा. सुकर्मा को सात्त्विक की आँखों में चमकती चिंगारी दिखी, सुकर्मा ने पलकें झुका लीं. सात्त्विक के अन्तरमन ने उसकी पलकों पर चुम्बन अंकित कर दिया. सुकर्मा ने प्रतिरोध नहीं किया.

सात्त्विक को श्री बद्री विशाल पर विश्वास है, 'इस धरा से कोई खाली हाथ कभी नहीं गया.' पहली बार सुकर्मा उसके स्पर्श की ऊष्मा को भीतर तक महसूस करती रही. पाप-पुण्य की परिभाषा की परवाह किए बिना तथाकथित परपुरुष के बाहुपाश में पिघल गई.

सूर्यास्त की किरणें दोनों को सुनहरी आभा से एकाकार रूप में रंग गईं. कौन जाने इस निश्छल प्रेम को कोई कभी समझ सकेगा क्या या इसे मानवीय कमजोरी का क्षण कहकर उन दोनों के दामन को दागदार समझ लेगा? अपनी-अपनी तरह से व्याख्या-विवेचना का हक सबको है. इस हक से उन्हें कौन रोक सकता है? कुछ भी कहें, निश्चित रूप से यह न तो बरसों से दबा दैहिक गुबार है, न ही प्रेम का वाणिज्यपरक आदान-प्रदान, न कोई शर्तों पर आधारित अनुबन्ध.

सात्त्विक ने सोचा, 'सहज प्रेम-सम्बन्ध के लिए किसी को साक्षी करना ज़रूरी क्यों हो? बिना किसी प्रमाण-पत्र के मन का रिश्ता उन तमाम रिश्तों से अधिक पुख्ता है, जो ढोल-धमाके और भीड के बीच स्थापित होकर भी बार-बार टूटने की कगार पर खड़े होते हैं या टूट ही जाते हैं.' सोचते-सोचते उसने सुकर्मा का हाथ पकड़कर कहा, "मैंने सुमेधाजी के जुड़वाँ बच्चों की पहली लोहड़ी की अग्नि-परिक्रमा करते हुए मन्नत माँगी थी. आज इस पवित्र धरा पर वह पूरी हो गई."

सुकर्मा को पाने की सन्तृप्ति उसके चेहरे पर दिव्य रोशनी की तरह अंकित है. सुकर्मा लाज से अरुणाभ है. दोनों ने मन-ही-मन इस नई छवि को मन के कैमरे में गहरे उतरने दिया. दूर कहीं माता देवी के मन्दिर की घंटियों ने उनकी एकनिष्ठ तन्द्रा को भंग किया.

सात्त्विक ने सुकर्मा की साड़ी का छोर पकड़कर अपनी अँगुली पर लपेट लिया. उसके लिए यह सात फेरों की गाँठ से कम नहीं. उसने पूरे विश्वास के साथ सुकर्मा को पुनः गौर से देखा, "हम जानते हैं कि यह होगा. हम उससे बचना चाहते हैं. उसके लिए अपने-आपसे भागते हैं. भागकर फिर अपने-आपसे ही मिलते हैं... होता वही है, जो होना है."

सुकर्मा को याद आया, 'यह तो मेघ के दोस्त संजीव का डायलॉग है.' अकस्मात् उसके भीतर से कोई जहरीला फन उग आया. उसका चेहरा डर से पीताभ हो गया या सूर्यास्त के बाद के धुँधलके से, सात्त्विक नहीं जानता.

सुकर्मा ने उठते हुए कहा, "सात्त्विक, यह सब ठीक है. मन से होते हुए देह का जुड़ना मेरे लिए पाप भी नहीं है."

सात्त्विक के मन में खुशी की सौदामिनी कौंध गई. उसने सुकर्मा के कान को होंठों से छूते हुए फुसफुसाया, "मुझे तुम पर विश्वास है, सुकर्मा, हम दोनों विकास की राह पर साथ-साथ चल सकेंगे."

सुकर्मा ने सीढ़ियाँ चढ़ते हुए कहा, "हम साथ-साथ चल सकते हैं. साथ-साथ रहना मुनासिब नहीं होगा."

सात्त्विक के पैर केशव-प्रयाग की चुम्बकीय शीत-लहर से जकड़ गए।

इक्यावन

गार्टर के पुल पर खड़े होकर अलकनन्दा को महसूस करना सुकर्मा को अच्छा लगने लगा है. कुन्ती दी उसके साथ खड़ी है. वह जानती है कि सात्त्विक और सुदीप पितृतर्पण के लिए ब्रह्मशिला की ओर गए हैं. उसने सुकर्मा को इसकी जानकारी देना उचित नहीं समझा.

सफेद साडी में सुकर्मा का धवल चेहरा चमक रहा है. पानी से परावर्तित सफेदी उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर रही है. वह शान्तचित्त से विष्णु सहस्रनाम का पाठ कर रही है. आते-जाते लोग उन दोनों को मुड़कर देख रहे हैं. कल वापस जाने का दिन है. वे दोनों पुण्यदर्शन का लोभ सॅवरण नहीं कर सकीं.

भागकर देव-दर्शन की पंक्ति में खड़ी हो गईं. दर्शन के बाद सुकर्मा ने कहा, "पंक्तिबद्ध होकर दर्शन करना ही असली उपासना है. श्रम के बाद सुलभ देवता का दर्शन और भी अनुपम हो जाता है."

कुन्ती दी ने सहमति जताते हुए कहा, "ठीक कह रही हैं आप, सुकर्मा भाभी! पूजा का अन्तिम क्षण तो बहुत छोटा है. उस क्षण तक पहुँचने का समय जितना दीर्घ और दुरूह हो, उतना ही दर्शन का क्षण सार्थक हो जाता है."

बात-बात में ही दोनों ने साकेत में जाकर नींबू-चाय पीने का निश्चय किया. गोल दानोंवाली चाय-पत्ती को उछालकर खौलते पानी में डालना, भाप को ढक्कन से बन्द करना और गिलासों में नींबू का रस निचोड़कर गर्म पानी को उड़ेलना सधे हाथों का कमाल है.

कुन्ती दी ने नींबूवाली चाय का पहला घूँट भरते हुए कहा, "कमाल है! अब तक मैंने इतने बरस नींबूवाली चाय के बगैर ही गुज़ार दिए."

सुकर्मा ने कहा, "नींबू-चाय तो छोटी बात है. हम जिन्दगी को न जाने किस-किस अमूल्य चीज़ के बगैर खाक कर रहे हैं."

सुकर्मा के चेहरे पर खिंची विषाद की रेखा का प्रतिबिम्ब कुन्ती दी के

चेहरे पर भी उभर आया. दोनों के मन में बसन्त की असमय मृत्यु की टीस है. कुन्ती दी जानती है कि सुकर्मा ने आवरण ओढ़कर जीना सीख लिया है. वह खुश एवं सामान्य दिखाई देती है. भीतर बिछा हुआ खालीपन उसे कचोटता है.

कुन्ती दी कहना चाहती है, 'सुकर्मा भाभी ! बच्चे अपनी-अपनी जगह चले गए हैं, तुम अपने लिए कुछ सोचो...' न जाने क्यों, उसकी जुबान ने उसका साथ नहीं दिया. वह बाहर सड़क पर चलती हवा को महसूस करते हुए बोली, "हवा कितनी ठण्डी है!"

सुकर्मा ने कहा, "आपने कल माणा में नहीं देखा. हवा का ऐसा वेग और घोर नाद मैंने अन्यत्र नहीं सुना." कुन्ती दी में उसके उछाह से ईर्ष्या जागी. उसकी ओर देखे बिना ही सुकर्मा ने कहा, "अलकनन्दा का पानी तो इतना ठण्डा है. ऐसा लगा था कि हड्डियाँ कट गई हैं और शरीर बर्फ की तरह जम गया है."

कुन्ती दी चुपचाप उसे देखती रही.

सुकर्मा को महसूस हुआ कि उससे कुछ गलती हो गई है. इतने दिन से ढका-दबा सब कुछ न जाने कैसे खुलने लगा है. चाय का खाली गिलास रखकर उसने पूछा, "चलें क्या?"

कुन्ती दी चुपचाप चलने को उद्धत हो गई. सामने से आते हुए सात्त्विक और सुदीप ने एक स्वर में कहा, "बैठो अभी, हम भी नींबू-चाय पीएँगे."

दोनों के सामने रखी कुर्सियों पर वे दोनों बैठ गए. सुकर्मा को सात्त्विक का निःश्वास स्पर्श कर रहा है. वह अपने-आपमें सिमट रही है. सुदीप ने कनखियों से उसे देखा और कुन्ती दी को आँख के इशारे से बताया, "पिण्डदान ठीक हो गया है." अप्राकृतिक मृत्यु के बाद आत्मा की शान्ति के लिए पितृतर्पण का महत्त्वपूर्ण स्थल है यह.

वे चारों सड़क पर खड़े होकर नर-नारायण पर्वत को प्रणाम करते हुए होटल की तरफ चल दिए. अचानक सुकर्मा ने कहा, "मैं सामनेवाले गाँव में जाना चाहती हूँ."

सात्त्विक उसके साथ चलने को तैयार हो गया. सुकर्मा को अच्छा लगा. उसे इस बात की तसल्ली मिली कि सात्त्विक ने कल की बातों का बुरा नहीं माना है. वह नहीं जानती थी कि ब्रह्मशिला के समीप बैठकर सात्त्विक का रूपान्तरण हो गया है. क्षणांश में ही अतीत की झाँकियों से गुजरकर पसीने से तरबतर सात्त्विक सांसारिक भय से मुक्त हो गया. अब उसे न मृत्यु का डर है, न रोग का, न ही एकाकीपन का।

वह सात्त्विक उस आत्मशोधन के क्षण से अभिभूत है. वह भीतर से उठती लहर में निमग्न गीत गुनगुना रहा है. चलते-चलते उसने सुकर्मा से कहा, "मैं कल आपके साथ वापस नहीं जा रहा हूँ."

शिकारी के तीर से भयभीत हिरणी की तरह कुलाँच मारकर सुकर्मा ने पूछा, "क्यों?"

"मैं सतोपथ की पदयात्रा के लिए जा रहा हूँ," सात्त्विक ने सानन्द कहा.

"किसके साथ...?" सुकर्मा ने पूछा, जैसे कि वह साथ जाएगी.

सात्त्विक ने उसे छेड़ते हुए कहा, "आपके साथ..."

"यह फैसला आपने मुझसे पूछे बिना..." सुकर्मा का क्रूर स्वर सुनकर हँसने लगा सात्त्विक.

"मैं उन पण्डितजी के साथ जा रहा हूँ, जो कल हमें केशव प्रयाग ले गए थे," सात्त्विक ने खिलखिलाते स्वर में कहा.

सुकर्मा गाँव की सँकरी राह पर एकाकी हो गई।

बावन

गरजते बादलों के बीच सात्त्विक की आवाज गुम हो गई. भारी मन से सुकर्मा ने टैक्सी में सामान रखा और सात्त्विक से आग्रह किया, "आप अपना ध्यान रखना..."

सुदीप ने सात्त्विक के गले लगकर विदा ली. कुन्ती दी ने हाथ जोड दिए. उसने मन-ही-मन सोचा, 'अब सुदीप की जिम्मेदारी बढ़ जाएगी.'

उसका सोचना गलत सिद्ध हुआ. सुकर्मा ने अपने-आपको लौह-पर्दे से आवृत्त कर लिया. घर से दफ्तर और दफ्तर से घर... सुबह अखबार के साथ और साँझ किताबों के साथ बीतने लगी. वत्सला का खत सम्बल है जीने के लिए. सौरभ बीच-बीच में फोन करता है. इस सबके बीच मेघ के साथ संवाद-हीनता की स्थिति असह्य है सुकर्मा के लिए.

गुलाबी लिफाफे को अनगिनत बार खोलकर पढ़ा उसने. कई बार जवाब सोचा, लिखा भी...भेजा कभी नहीं.

उस दिन भी मानसून की ठण्डी हवाओं ने उसके सीने की आग को छेड़ दिया है. वह मेघ के खत का जवाब लिखने के लिए ताकत जुटाना चाहती है... इनसान किसी काम को दो ही कारण से टालता है : या तो वह उस काम से डरता है या उस काम को सर्वोत्तम रूप में करना चाहता है.

सुकर्मा आदतन पर्फेक्शनिस्ट है. खत लिखने में निपुण भी है वह. वह चाहे तो एक बार में सत्रह खत लिख सकती है. फिर भी, न जाने क्यों मेघ के खत का जवाब देने में उसने दस बरस का समय ले लिया. आज उसने सोचा, वह खत का जवाब लिखने के बाद ही खाना खाएगी.

सुकर्मा ने स्टडी-टेबल के दराज़ को खींच कर गुलाबी लिफाफे के पास पड़े कागज़ को फिर उठा लिया.

'सुकर्मा जी,

आपका गोवा आना अच्छा लगता मुझे. जानता हूँ कि आपने कभी किंसी दूसरे की परवाह नहीं की. आप वही करती हैं, जो आपको अच्छा लगता है.

बाहर से आप कठोर चट्टान-सी दिखाई देती हैं. मैं जानता हूँ कि आपके भीतर स्नेह की असीम रसधार है. मैं देखना चाहता हूँ, आप उसे कब तक बाँधकर रख सकेंगीं ?

आपने मुझे अस्वीकृति के साथ तिरस्कृत किया, फिर एक दिन वत्सला के लिए मुझे चुनकर इंगित कर दिया कि आप मुझे पसन्द करती हैं. मैं जानता हूँ कि आप मुझे प्यार करती हैं. आप अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने से डरती हैं. मैं आपको स्वत्व की सत्यता को स्वीकार करते हुए देखना चाहता हूँ. उसके लिए सात जन्म तक प्रतीक्षा करूँगा.

—मेघ'

खत पढ़कर उसने कागज़ निकालने के लिए दराज़ खोला, तो एक और लिफाफा घुमड़कर सामने आ गया. सुकर्मा ने हैरानी से उस लिफाफे को गौर से देखा. लिफाफा बन्द है, ऊपर सुन्दर अक्षरों में लिखा है : 'बसन्त'

सुकर्मा ने दिमाग पर जोर डालकर याद करने की कोशिश की, 'यह क्या है, कहाँ से आया, बसन्त ने पढ़ा क्यों नहीं होगा...!'

वह काफी देर तक लिफाफे को उलट-पलटकर देखती रही. क्या करे वह इस लिफाफे का? खोलकर पढे, तो पाप होगा क्या ? किसी और के नाम का खत पढ़ना तो बहुत बुरी बात है. उसने कई बार वत्सला को समझाया है, 'कभी किसी का खत नहीं पढना. दो लोगों की आपसी बात को तुम कभी समझ नहीं सकोगी. दूसरे का खत पढ़ना गलतफहमी का सबसे बडा कारण बन जाता है.'

सोचते-सोचते न जाने कब उसने लिफाफा खोल लिया. रागिनी का हस्तलेख है यह तो... उसने पढ़ना शुरू किया :

'प्रिय बसन्त,

तुमसे दुबारा मिलना कैसा लगा, नहीं जानती. मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि हम दुबारा मिलेंगे. सुकर्मा अच्छी लड़की है, तुम्हारे प्यार से और सँवर गई है. क्या कहूँ, 'ये न थी हमारी किस्मत...' न चाहते हुए भी कहना चाहती हूँ कि मैंने तुमको अपना कौमार्य दिया. बदले में कुछ नहीं चाहा. यह नहीं कहूँगी कि तुम गलत हो. हाँ ! निश्चित रूप से, यह नहीं सोचा था कि तुम मेरे प्रेम-समर्पण को ही मेरा अपराध बना दोगे और कहोगे, 'तुमने शादी से पहले ही सब कुछ दे दिया, इसलिए शादी नहीं कर सकूँगा.' उस समय मैंने सोचा, 'तुम इसकी पुष्टि सात्त्विक से कर सकते हो कि सात्त्विक के लाख चाहते हुए भी वह मेरी त्वचा का स्पर्श भी नहीं कर सका.' उस समय ऐसा करना मेरे लिए और अधिक अपमानजनक होता. बसन्त ! तुमने मुझे 'ईज़ी

कैच' समझ कर छोड दिया. आज यह सुनहरा मौका है मेरे पास सिद्ध करने के लिए कि तुम्हारी धारणा गलत थी.

आज तुम्हारी आँख के सामने सात्त्विक के साथ शादी करना चाहती हूँ. अपनी शादी के समय भी मेरे दिल से एक ही दुआ निकलेगी, तुम सुकर्मा के साथ खुश रहो. ...यही प्यार है.

प्यार
–रागिनी'

सुकर्मा के हाथ-पैर शिथिल हो गए, माथे पर पसीने की बूँदें चमकने लगीं. गिलास-भर पानी पीने के बाद भी उसकी प्यास नहीं बुझी. शॉल ओढ़कर भी उसकी ठण्ड नहीं मिटी, मुँह धोकर भी उसकी आग नहीं बुझी.

वह बरामदे में आकर बैठ गई. मेज पर रखी टोकरी में फूलों की माला रखी है. आज सुबह बसन्त के चित्र पर माला बदलना भूल गई. इतने बरसों में पहली बार ऐसा हुआ. 'क्यों हुआ...?' वह नहीं जानती. सच बात तो यह है कि इस समय वह कुछ भी नहीं जानती. पूरी जिन्दगी बेमायने हो जाए तो कैसे जिए कोई? ...क्यों जिए? किसके लिए जिए? ...प्यार का दावा करनेवाले इन आदमियों में से किसको चुने? क्यों चुने?

औरत अकेली रह सकती है।

दूर आसमान में चाँद चमक रहा है. तारे अभी दिखाई नहीं दे रहे हैं. मोटरसाइकिल की घरघराहट से चौंककर देखा उसने, 'मेघ कैसे आ सकता है?'

किसी छाया ने घंटी बजाई. सुकर्मा ने झुककर पूछा, "कौन है...?"

"जी, गौरव..."

सुकर्मा को कुछ सुनाई नहीं दिया. उसने दुबारा झुककर पूछा, "कौन है दरवाजे पर...?"

पंजों के बल उचककर गौरव पीछे की ओर झुका और जोर से बोला, "गौरव...! ग फॉर गोवा...! गौरव...!"

और झुककर सुकर्मा ने पूछा, "कौन गौरव...?"

गौरव ने एक साँस में कहा, "मैं पुणे से आया हूँ. मेघ के साथ मसूरी से ट्रेनिंग की थी मैंने."

"ओह, याद आया..." होंठों में हरकत-सी हुई. सुकर्मा मशीन की तरह सीढ़ियाँ उतरकर आई. दरवाज़ा खुलते ही गौरव ने उसके पैर छुए और घुटने झुकाकर कंधे पर सर रख दिया. सुकर्मा ने भीतर की बर्फ से आग पैदा की और उसके सिर पर हाथ रखा.

गौरव ने हाथ में पकड़े पैकेट की ओर देखते हुए कहा, "मेघ ने कहा था कि सुकर्माजी के लिए बटर-बिस्किट ज़रूर लेकर जाना," कहकर उसने पैकेट सुकर्मा के हाथ में दिया और जेब से एक और लिफाफा निकाला.

सुकर्मा घूमकर दरवाजे से भीतर चली गई.

गौरव की ऊष्मा ने उसके भीतर जिजीविषा का अंकुर जगाया. उसने मुस्कराकर पूछा, "क्या पिएँगे आप...? कॉफी, चाय या नींबू-पानी...?"

"मैं नींबू-पानी बहुत अच्छा बनाता हूँ. आप बैठें, मैं बनाकर लाता हूँ." विद्युत की फुर्ती से रसोई की ओर चला गया वह.

दरवाजा बन्द करते हुए सुकर्मा ने मोटरसाइकिल पर अटके बैग को देखा और रसोईघर में आकर गौरव के पीछे खड़ी होकर पूछा, "चीनी मिल गई क्या? काली मिर्च इधर है..."

"मुझे सब मालूम है. जब आप सात्त्विक के पास बम्बई गई थीं, मैं मेघ के साथ यहाँ आकर रहा था... मेरी फिक्र न करें. आप यह अपनी अमानत सँभालें," कहकर उसने लिफाफा मेज पर रख दिया.

सुकर्मा कहना चाहती है, 'मुझे अकेला छोड़ दो.' गौरव ने कुछ नहीं सुना और सन्नाटा तोड़ते हुए कहा, "आप बर्फ लेंगी क्या...?"

भीतर की बर्फ को पिघलाने के लिए उसने कहा, "हाँ, बर्फ...? बहुत-सी बर्फ...मुझे बर्फ में रोशनी का परावर्तन अच्छा लगता है. बर्फ का जल में घुल जाना अच्छा लगता है."

"यही नियति है उसकी, सुकर्मा जी !" गौरव ने कहा, "...उसके लिए विश्रान्ति है यह. ठीक वैसे, जैसे लम्बे सफर के बाद गंगा का समुद्र में विलीन हो जाना..."

खिडकी से बाहर देखते हुए सुकर्मा ने सोचा, 'ऊँचे पर्वतशिखरों पर फैली बर्फ को देखते हुए मैंने जीवन शुरू किया था. रुई के फाहों की तरह गिरती बर्फ से अठखेलियाँ की थीं. कैसी विडम्बना है, आज मेरा जीवन गिलास की बर्फ में सिमट रहा है.' शरीर में छूटती कँपकँपी को छुपाते हुए उसने गिलास मेज पर रख दिया और बन्द खिड़कियों को खोलना शुरू किया. गौरव की दृष्टि उसके असामान्य व्यवहार का पीछा कर रही है. वह कुछ कहे, इससे पहले ही सुकर्मा ने अपने दोनों हाथ सिर के ऊपर फैला दिए और पाप-पुण्य की परिभाषा से परे पाखियों के मानिन्द पेड़ों की छाया में उड़ चली उन्मुक्ति की ओर।

गौरव ने पीछे से आवाज दी, "आप अपना खत ले लें, तो यह कुरियर वाला खादिम अपनी राह ले."

सुकर्मा ने बिना मुड़े पूछा, "खत... ? खत कहाँ है ? किसका है ?"

गौरव ने सुकर्मा के सामने लिफाफा फैला दिया. सुकर्मा ने लिफाफे को देखकर हैरानी से कहा, "सात्त्विक का खत...? यह कहाँ से मिला आपको? किसने दिया ?"

"मेघ ने," गौरव ने कहा.

"मेघ को कहाँ से मिला ?" सुकर्मा ने स्टडी की ओर जाते हुए पूछा.

"हम तो कोरियर वाले कबूतर हैं, हमारा काम सिर्फ पैकेट देना है," कहते हुए गौरव बाहर की ओर चला गया. मोटरसाइकिल को किक मारते हुए उसने ऊँचे स्वर में कहा, "फिर मिलेंगे सुकर्माजी ! बाय !"

उसकी ओर ध्यान दिए बिना सुकर्मा ने लिफाफे को पलटकर मेघ की हस्तलिखित पंक्तियों को गौर से देखा, 'सुकर्मा जी ! आपके नाम का खत मेरे पते पर मिला है. आपको भेज रहा हूँ.'

सुकर्मा ने माथे से पसीने की बूँदों को पोंछते हुए लिफाफे को खोला.

'प्रिय सुकर्मा जी,

अनुमान लगाएँ, मै कहाँ हूँ ...? ठीक सोचा आपने, मैं धवल हिमशिखरों पर हूँ. यूँ समझ लीजिए, मैं हिम मानव बन गया हूँ. कहते हैं, श्री बद्री विशाल सच्चे मन की इच्छा-पूर्ति जरूर करते हैं. उन्हीं से माँग रहा हूँ कि आप बम्बई जाकर मेरे अधूरे कामों को पूरा करें. अपने सब अधिकारों का हस्तान्तरण मैं आपके नाम कर रहा हूँ, मेरा वकील आपसे सम्पर्क करेगा. आप अपना ध्यान रखें. मेरी साधना की ऊर्जा आपके साथ रहेगी.

—सात्त्विक'

चारों ओर फैले लावे और बर्फ के बीच दोलायमान सुकर्मा को दिलासा देनेवाला कोई नहीं था आसपास।

कुन्ती दी और सुदीप दिल्ली में कंकरीटनुमा बस्ती में तथाकथित माटी-घर बनाकर मशीनी जिन्दगी से लड़ रहे हैं.

रागिनी और सिद्धान्त यू.एस.ए. के लाँग-आइलैण्ड में स्थायी निवासी हैं.

तापस गाहे-बगाहे सुकर्मा से अमेरिकी हिन्दी में फोन पर बात करता है.

तिरेपन

सुकर्मा ने बसन्त के नाम लिखी डायरी के पन्ने पलटते हुए अपनी पुरानी नज़्मों को पढ़ा. दराज़ से दस बरस पहले खरीदा केसरिया लेटरपैड निकाला और मेघ के नाम लिखना शुरू किया :

'प्रिय मेघ,

सात्त्विक का खत भेजने के लिए शुक्रिया!

दस बरस की यह दूरी खतम कर दो, तो बेहतर. मैं नहीं समझती कि कोई व्याख्यान देकर अपने दोष को छुपाऊँ. एक बात ज़रूर कहूँगी कि तुम्हारी हर बात सच है. अपने-आपको बचाने के लिए मैंने ऐसी दीवार खड़ी की, जिसे लाँघना इम दोनों के वश में नहीं है. इसके लिए मै तुम्हारी अपराधिनी हूँ. माफी नहीं माँगूँगी. सिर झुकाकर दण्ड स्वीकार कर रही हूँ.

मै सात्त्विक की सम्पत्ति की न्यासी बनकर बम्बई जा रही हूँ!

—सुकर्मा'

पुनश्च: सम्भवतः 'त्यक्तेन् भुञ्जीथा' की भावना सजीव हो सके.

खत को खुला छोड़कर उसने गुलाम अली की गज़लें लगाईं. आज बाहर की आवाजें उसके भीतर नहीं उतर सकीं. उसकी आँख में न आँसू हैं, न होंठों पर मुस्कराहट. उसके ज़हन में कोई नाम नहीं उभर रहा, जिससे वह सलाह कर सके. बसन्त का चित्र भी आज मौन है. वह अपने निजी कोने को किसी के भी सामने खोलने को तैयार नहीं है. उसने संगीत बंद कर दिया. घर के सब खिड़कियाँ-दरवाजे बंद करके पर्दे खींच लिए. वह खुद नहीं जानती कि वह क्या कर रही है? क्यों कर रही है? कमरे में तेजी से चहलकदमी करते हुए अचानक वह रौकिंग-चेअर पर बैठ गई. साइड टेबल पर रखी डायरी उठाकर लिखना शुरू किया :

घर की चौखट पर इक दस्तक की गूँज,
उस आवाज़ को अक्स में बदलने के लिए,
कोई क्या करे!

काम से तो सभी बात किया करते हैं,
बेवजह बात करने की बात हो,
कोई क्या करे!
साँझ और सुबह किसी के नाम गुम,
दिन और तारीख का हिसाब रखने के लिए,
कोई क्या करे!

इस लम्बे सिलसिले में रात कब गुज़र गई. सुकर्मा को मालूम ही नहीं हुआ. सुबह होते ही उसने स्वैच्छिक अवकाश-प्राप्ति के लिए आवेदन-पत्र लिखा और बम्बई के लिए अपनी सीट बुक कराई.

जीवन की भागमपेल में वे सब समुद्र की लहरों की तरह एक-दूसरे को छूते रहे, बिछुड़ते रहे. समय के घोड़े पर सवार मेघ ने बार-बार पीछे लौटना चाहा, सपनों को मुट्ठियों में कैद करना चाहा. इस सबसे अनभिज्ञ वत्सला स्वाध्याय में निमग्न रही.

उसने पर्वतीय जीवन और संस्कृति पर शोध किया. उत्तरांचल राज्य बनने के बाद उसने हिमालय की संस्कृति एवं विरासत के संरक्षण हेतु संस्थान स्थापित किया. मेघ ने भी चयन-क्रम में उत्तरांचल को चुना.

अपने क्षेत्र का दौरा करते हुए उसने व्यास-गुफा के पास सात्त्विक को देखा.

मेघ ने तुरन्त सुकर्मा को सूचित किया. सुकर्मा चौड़ी होती सड़कों के सीने पर ताजा बिछे तारकोल की गर्मी को रौंदते हुए श्री बद्री विशाल पहुँची. सुकर्मा और मेघ ने सात्त्विक को तलाश करने की पूरी कोशिश की.

सात्त्विक की गुफा में सिर्फ कोरे कागज़ मिले।

सुकर्मा ने कोरे कागज़ पर पेट से उठते लावे से लिखा :

सदाएँ देते हो और सजाएँ भी,
आपके इस काबिलेतारीफ हुनर की,
क्या कहिए!
आपके दिल की बात खुदा जाने,
आपका मिलना हमारी खुशकिस्मत,
क्या कहिए!
ख्वाबों की ऊँचाइयाँ, ख्यालों की गहराईयाँ,
खुदाया खुदा सी किसकी मौजूदगी,
क्या कहिए!

सुकर्मा जानती है, मिलकर खो जाना, खोकर मिल जाना सात्त्विक का

पुराना खेल है.' सोचते-सोचते उसने ड्राइवर से कहा, "जरा कार रोको."

ड्राइवर ने पहाड़ के कोने में चट्टान की ओट में कार रोकी. सुकर्मा ने कार से उतर कर मेघ को फोन किया, "क्या आप केशव-प्रयाग पर सादा वर्दी में दो सिपाहियों की ड्यूटी लगा सकते हैं ?"

मेघ को सुकर्मा पर झुँझलाहट हुई. अपने-आपको नियन्त्रित करते हुए उसने कहा, "क्या आपको यकीन है, सात्त्विक वहाँ ज़रूर आएँगे ?"

सकर्मा ने भर्राये स्वर में कहा, "गॉड ब्लैस !" और फोन बन्द कर दिया. वापस आकर आँखें बन्द कर लीं.

स्मृतियों के ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर हिचकोले खाते हुए सफर बीत गया. अनजान शहर में भरी भीड़ के बीच अकेली सुकर्मा के गुण-अवगुण के बहीखाते में रिक्तियाँ भरने के लिए कोई जानकार नहीं है दूर-दूर तक।

केशव-प्रयाग पर सिर्फ सिपाही नहीं, पूरा कस्बा सात्त्विक का इन्तजार करने लगा. भीम पुल पर सरस्वती दर्शन के लिए आनेवाले लोग केशव-प्रयाग के तट पर स्थित उस विशाल शिला की परिक्रमा करना नहीं भूलते. कहते हैं, 'वहाँ अपने प्रेम की मनौती मानने से बिछडे प्रेमी मिलते हैं.'